करुणा और क्रान्ति

अनुक्रम

1. करुणा के फूल..2
2. शून्य के क्षण...18
3. आनंद का झरना..27
4. प्रेम के प्रतिबिंब...42
5. अरूप की झलक..57
6. अंतहीन यात्रा..73
7. पूर्ण का द्वार...89

करुणा और क्रान्ति
पहला प्रवचन

करुणा के फूल

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक पहाड़ी रास्ते पर सुबह से ही बड़ी भीड़ है। सूरज बाद में निकला है। उस रास्ते पर लोग पहले से निकल पड़े हैं। भीड़ बहुत है। सारा गांव, आस-पास के छोटे गांव, पहाड़ी की तरफ भागे चले जाते हैं। लेकिन भीड़ बड़ी उदास है। कोई खुशी का त्यौहार नहीं मालूम पड़ रहा है। लोग आंखें नीचे झुकाए हुए हैं और लोगों के प्राणों पर बड़े पत्थर रखे हुए मालूम पड़ रहे हैं। इस भीड़ में तीन लोग और थे, जो अपने कंधों पर सूलियां लिए हुए थे। वह भीड़ ऊपर पहुंच गई है। यह बड़े व्यंग्य की बात है कि किसी को अपनी सूली खुद ही ढोनी पड़े। वे सूलियां, खुद ही उन्हें ही गाड़नी पड़ी हैं! उन तीन लोगों ने अपनी-अपनी सूलियां गाड़ ली हैं। और उस उदास भीड़ में उन तीनों लोगों को सूली पर लटका दिया गया है। उनमें एक आदमी परिचित है, वह मरियम का बेटा है जीसस। लेकिन दो आदमी बिल्कुल अनाम हैं, उनका कोई नाम पता नहीं है कि वे आदमी कौन हैं? कहते हैं कि वे दोनों चोर थे। दो चोरों और बीच में जीसस को तीनों को सूली पर लटका दिया गया है। उनके हाथों में कील ठोक दिए गए हैं। जीसस के सिर पर कांटों का ताज पहनाया हुआ है। और जीसस की आंखों में जब भी कोई झांकेगा तो उसे पता चलेगा कि जैसे दुख, पीड़ा और उदासी साकार हो गई हो।
यह घटना घटे बहुत दिन हो गए हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि यह घटना बड़ी समसामयिक है। बड़ी कंटेम्प्रेरी है। कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए, नाचते हुए; सोचने में भी कठिनाई होती है। ऐसा लगता है कि ऐसा आदमी शायद कभी न हुआ हो। तो यह भी हो सकता है कि भविष्य में भी कोई न हो, क्योंकि आदमी के होंठ गीत गाने भूल चुके हैं। और बांसुरी बजाने की तो बात ही नहीं है। तो कृष्ण बहुत काल्पनिक और स्वप्निल मालूम होते हैं। बुद्ध की शांत प्रतिमा भी ऐसी लगती है, जैसे हमारी आकांक्षा हो। लेकिन जीसस बहुत समसामयिक मालूम पड़ते हैं। ऐसा नहीं लगता कि दो हजार साल पहले एक आदमी को सूली लगी हो, ऐसा लगता है कि हमारे पड़ौस में यह आदमी अभी भी सूली पर लटका हुआ है।
कुछ कारण है। जीसस की निकटता के पीछे कुछ कारण है। और वह यह है कि उस दिन एक आदमी सूली पर लटका था, आज पूरी मनुष्यता करीब-करीब धीरे-धीरे सूली पर लटक गई है। कुछ सूलियां दिखाई पड़ती हैं, कुछ दिखाई नहीं पड़तीं, अदृश्य हैं। दिखाई पड़ने वाली सूलियों से बचा भी जा सकता है, न दिखाई पड़ने वाली सूलियों से बचना भी बहुत मुश्किल है।
और उस दिन सुबह जो हुआ था, उससे कुछ और बातें मेरे ख्याल में आती हैं। पहली बात तो मेरे ख्याल में वह आती है कि जीसस खुद अपनी सूली को लेकर उस पहाड़ी पर चढ़े, हममें से हर आदमी अपनी सूली को खुद ही लेकर चढ़ रहा है। हम सब अपनी सूलियों का खुद ही निर्माण करते हैं। फिर उन्हें खुद ढोते हैं जीवन भर और अंत में अपनी-अपनी सूलियों पर लटक कर मर भी जाते हैं। ऐसा एकाध आदमी के साथ हो, तो बात समझ में भी आ सकती है, लेकिन ऐसा अगर पूरी मनुष्यता के साथ हो जाए तो बड़ा सवाल है।
आदमी इतना उदास और दुखी कभी नहीं था, जितना उदास और दुखी आज है। पक्षी
भी हमें देख कर विचार करते होंगे कि आदमी मालूम होता है, भटक गया है। पक्षी भी आकाश में उड़ कर हम पर दया करते होंगे, करुणा करते होंगे। निश्चित, पौधों में चर्चा होती होगी आदमी के बिगड़ जाने की, विकृत हो जाने की। इस सारी पृथ्वी पर चांद-तारों से लेकर छोटे-छोटे नदी के पड़े हुए कंकड़-पत्थरों तक में भी एक आनंद की धारा का प्रवाह मालूम होता है, सिर्फ आदमी के हृदय में मरुस्थल हो गया है। वहां कोई धारा आती नहीं कि सूख जाती है। आदमी अकेला विक्षिप्त प्राणी है। हम अकेले पागल हैं! और ऐसा नहीं है कि कुछ लोग पागल हैं। नहीं, हम सभी पागल हैं।
अपने पागलपन के हमने दो रूप बना रखे हैं--एक ऐसा पागलपन, जिसके रहते हुए भी हम जिंदगी के साथ किसी तरह का एडजेस्टमेंट, समायोजन कर लेते हैं।

और एक ऐसा पागलपन कि जिसके रहते फिर जिंदगी के साथ समायोजन करना मुश्किल हो जाता है।
दो तरह के पागल हैं--एक जो समाज के पागलपन में किसी तरह अपने को बिठा लेते हैं और चल जाते हैं। और एक वे, जो समाज के पागलपन में अपने को नहीं बिठा पाते और उनके लिए हमें अलग पागलखाने बनाने पड़ते हैं।
जमीन दो तरह के पागलखानों में बंट गई है। एक दीवालों के भीतर है पागलखाना, छोटा। एक दीवालों के बाहर है पागलखाना, बड़ा। वह सारी पृथ्वी पर फैल गया है।
एक-एक आदमी के भीतर अगर हम झांक कर देखें तो ख्याल में आएगा कि कैसी कठिन और कैसी चिंता से भरी हुई जिंदगी हम जी रहे हैं! ऐसा नहीं है कि हम मुस्कराते नहीं हैं। सुबह से सांझ तक बहुत बार मुस्कराते हैं। लेकिन हमारी मुस्कुराहटें अधिकतर हमारे आंसुओं को छिपाने के प्रयास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होती हैं। और ऐसा भी नहीं है कि हम गीत नहीं गाते, लेकिन हमारे हर गीत के भीतर हमारे रोने की प्रतिध्वनि के दबाने का उपाय होता है। और ऐसा भी नहीं है कि हम बाहर प्रसन्न न दिखाई पड़ते हों। लेकिन हमारी सारी प्रसन्नता ऊपरी सतह पर है और भीतर गहरे में बहुत उदास आत्मा बैठी हुई है।
एक-एक आदमी अपने भीतर झांक कर देखेगा तो अपने ही प्रति करुणा से भर जाएगा। और जब तक हम अपने प्रति करुणा से न भर जाएं, तब तक पड़ोसी के प्रति हम कभी भी करुणा से नहीं भर सकते हैं। जब तक हमें अपनी सूली न दिखाई पड़ने लगे, तब तक चारों तरफ सारे लोग सूलियों पर लटके हुए हैं, यह भी हमें दिखाई नहीं पड़ सकता है। जिसे अपनी सूली दिखाई पड़ती है, उसे पड़ोसी भी सूली पर लटका हुआ ही दिखाई पड़ता है।
लेकिन हम सब अपनी सूली की तरफ देखते ही नहीं, इसलिए पड़ोसी की सूली को देखने का कोई उपाय नहीं है। हम दूसरों के प्रति कठोर हो जाते हैं, क्योंकि हम अपने प्रति ही अभी करुण नहीं हो पाए हैं। हम दूसरे के प्रति करुणा से नहीं भर पाते हैं, क्योंकि अभी हम अपने प्रति ही करुणा से नहीं भर पाए हैं। अभी हमने अपनी ही स्थिति की ओर जैसे हम हैं, जो हम हैं, झांकने की हिम्मत नहीं जुटाई। शायद हम डरते हैं, शायद हमें भय है कि अपने को देखें तो शायद जीना और भी मुश्किल हो जाए। इसलिए अपने को भुलाने की कोशिश में रहते हैं। और बहुत लोगों ने अपनी सूलियों पर सोने-चांदी के जेवर पहना रखे हैं, और बहुत लोगों ने अपनी सूलियों पर रंग-बिरंगे फूल चिपका लिए हैं, और बहुत लोगों ने अपनी सूलियों पर इत्र छिड़क दिया है कि सूलियां भी ऐसी मालूम पड़ें कि बड़ी प्यारी हैं! हम सूलियों की, सूलियां हैं यह भुलाने की कोशिश में लगे रहते हैं! जंजीरों को आभूषण समझ लेते हैं और सूलियों को जिंदगी समझ रखा है, और आंसुओं को धीरे-धीरे हमने अपने को ही धोखा देकर ऐसा बना लिया है कि लगता है कि वे भी मुस्कराते हैं। अपनी सूली को भूलने के लिए हमने बहुत से आयोजन किए हैं। और जितनी सूली मजबूत होती जाती है, भारी होती जाती है और आदमी के हाथों में कीलें ठुकते जाते हैं, उतने सूली को भुलाने के हमारे उपाय भी तीव्र होते चले जाते हैं।
मनुष्य जैसे-जैसे सभ्य होता है, वैसे-वैसे मनोरंजन के साधन खोजता है। जैसे-जैसे सभ्य होता है, वैसे-वैसे नशे के नये उपाय खोजता है। जैसे-जैसे सभ्य होता है, वैसे-वैसे भूलने की नई व्यवस्थाएं, अपने आपको भुला लेने के नये मार्ग तलाश करता है। रोज मनोरंजन के, भूलने के, शराबों के नये-नये उपाय बढ़ते चले जाते हैं, ताकि हमें अपनी सूली का पता न चले। लेकिन सूली का पता लगे या न लगे, चाहे हम भूल जाएं, चाहे कोई सूली पर लटका हुआ आदमी शराब पीकर लटका हो, तो भी सूली के होने में कोई फर्क नहीं पड़ता है। सूली है और हम उस पर लटके हुए हैं।
जैसे-जैसे हम सभ्य होते हैं, वैसे-वैसे ऐसा लगता है कि हमारा पागलपन ब्वायलिंग पॉइंट के करीब, उबलने के बिंदु के करीब पहुंचता चला जाता है। और बहुत आश्चर्य न होगा कि पूरी मनुष्य-जाति ऐसा अनुभव करे कि अपने को समाप्त ही कर ले। अनेक लोगों ने अनेक बार ऐसा अनुभव किया है। कुछ लोगों ने आत्महत्याएं की हैं। धीरे-धीरे आत्महत्याएं करने वाले लोगों की संख्या

भी फैलती चली गई है, बढ़ती चली गई है। ऐसा भी हो सकता है कि एक दिन पूरी मनुष्य-जाति सामूहिक निर्णय करे कि हम अपने को समाप्त कर लें। वैसे हमारे पास... इंतजाम हमने कर लिया है, कभी भी हम निर्णय करें तो उसे व्यावहारिक रूप में बदला जा सकता है। पूरी मनुष्यता को समाप्त करने की व्यवस्था हमारे पास है।
यह आदमी आत्मघात की तरफ इतनी आतुरता से उत्सुक हो रहा है--क्या कभी आप सोचते हैं कि जरूर कहीं जीवन से हमारा संबंध टूट गया होगा? जीवन से कहीं हमारे नाते-रिश्ते, संबंध विदा हो गए हैं? हम कहीं जीवन से टूट गए हैं। जीवन के स्रोत से हमारा संबंध विच्छिन्न हो गया है। और सिर्फ हम मरे हुए जी रहे हैं--उदास, सूखे हुए, जैसे किसी पौधे की जड़ों का संबंध जमीन से टूट जाए तो पौधा रहे, उसकी पत्तियां कुम्हला जाएं, उसके फूल कुम्हला जाएं, उसकी कलियां फूल देना बंद हो जाएं। ऐसी ही मनुष्य की हालत हो गई है। किसी ने ये जड़ें हिला दी हैं।
कौन है जिम्मेदार?
और अगर हम उसके कारणों को न खोज पाएं तो शायद ऐसा न हो कि बहुत देर हो जाए और आदमी को बचाना मुश्किल हो जाए। इन तीन-चार दिनों में उन जड़ों के संबंध में, उन मूल कारणों के संबंध में आपसे बात करना चाहता हूं, जिसने मनुष्य की ऐसी दशा बना दी है--विपन्न, हारी हुई, पराजित, अर्थहीन। इसलिए मित्रों ने कहा कि मैं करुणा और क्रांति पर बात करूं।
करुणा और क्रांति ऐसा शब्दों का समूह मुझे अच्छा नहीं मालूम पड़ता है। मुझे तो लगता है करुणा यानि क्रांति। करुणा अर्थात क्रांति। कंपेशन एंड रिवोल्यूशन नहीं, कंपेशन मींस रिवोल्यूशन। ऐसा समझें कि करुणा होगी तो क्रांति होगी। अगर करुणा आ जाए तो क्रांति अनिवार्य है। क्रांति सिर्फ करुणा की परिधि, छाया से ज्यादा नहीं है। और जो क्रांति करुणा के बिना आएगी, बहुत खतरनाक होगी। ऐसी बहुत क्रांतियां हो चुकी हैं और वे जिन बीमारियों को दूर करती हैं, उनसे बड़ी बीमारियों को अपने पीछे छोड़ जाती हैं।
अब तक की सारी क्रांतियां असफल हो गई हैं।
आदमी ने बड़े प्रयास किए हैं आनंद के समाज को निर्मित करने के, बहुत प्रयास किए हैं कि मनुष्य खुश हो सके। बहुत प्रयास किए हैं कि जीवन में फूल खिल जाएं। लेकिन अब तक वे सफल नहीं हो सके। क्योंकि क्रांतियां वेध से पैदा हुईं, करुणा से नहीं। और जो भी क्रांतियां वेध से पैदा होंगी, वे क्रांतियां तोड़ सकती हैं, लेकिन निर्मित नहीं कर सकतीं। और जो क्रांतियां वेध से पैदा होती हैं, वे विध्वंस में तो ले जाती हैं, लेकिन सृजन में नहीं ले जा पाती हैं। और जो क्रांतियां वेध से पैदा होती हैं वे गहरे प्रवेश नहीं कर पातीं जहां मनुष्य की बीमारी की जड़ें हैं। वे ऊपर से पत्तों को काट डालती हैं, वृक्षों को हिला देती हैं, शाखाओं को तोड़ देती हैं, लेकिन जड़ों तक उनकी पहुंच नहीं हो पाती। और वे क्रांतियां समाप्त भी नहीं हो पाती हैं कि नये पत्ते निकल आते हैं, नई शाखाएं निकल आती हैं--बल्कि हर क्रांति कलम साबित हुई है, पुराना वृक्ष और सघन होकर बड़ा हो गया है, क्योंकि जड़ें जमीन के नीचे, जमीन के भीतर बरकरार हैं, वे नहीं मिटतीं।
हम धन बांट सकते हैं वेध में आकर। धन बंट भी सकता है, लेकिन लोगों ने
धन इकट्ठा करने का पागलपन क्यों पैदा कर लिया, अगर इसकी गहरी जड़ों में न जा सकें, तो शायद धन तो बंट जाएगा, लेकिन आदमी वही होगा, जो धन को इकट्ठा करने वाला था। और वह धन से जो इकट्ठा कर रहा था, दूसरी चीजों से वही इकट्ठा करने लगेगा। रूस में वैसा हो गया, चीन में वैसा होगा। सारी दुनिया में जहां भी क्रांति के नाम से घटनाएं घटी हैं, वहां वैसा हो रहा है।
जो आदमी धन इकट्ठा करके अहंकार अर्जित करता था, उसकी मूल बीमारी धन में न थी। उसकी मूल बीमारी अहंकार में थी। धन होता तो कह पाता कि मैं कुछ हूं। उस आदमी ने नये रास्ते खोज लिए। अब वह धन इकट्ठा नहीं करता, अब वह राज्य पर अधिकार कर लेता है। और अब भी उसकी पुरानी बीमारी अपनी जगह खड़ी है। अब भी वही अकड़ है, वही बात है, वही अहंकार है, "मैं कुछ हूं"। अब वह धन नहीं छीनता, लेकिन सत्ता छीन लेता है। अब वह दूसरे आदमी को गरीब नहीं

बनाता, लेकिन निर्बल बना देता है। और मामला वही है--गरीब अमीर के बीच का फासला, निर्बल और सबल के बीच का फासला बन जाता है। और कोई फर्क नहीं हो पाता है।
पिछले पांच हजार वर्षों में बहुत क्रांतियां हुई हैं, लेकिन सारी क्रांतियां वेध से निकली हैं, इसलिए असफल हो गई हैं। असल में वेध बहुत गहरे नहीं जा सकता क्योंकि वेध की स्थिति में गहरे जाना संभव ही नहीं है। करुणा ही गहरे जा सकती है। वेध बहुत ऊपर देखता है। ऊपर के कारणों को तोड़ देता है, लेकिन भीतर के कारण न उसे दिखाई पड़ते हैं, न उसकी सामर्थ्य होती है उतने गहरे उतरने की।
मेरी दृष्टि में करुणा ही क्रांति है--करुणा पैदा हो जाए तो क्रांति आएगी अपने आप।
और बड़े आश्चर्य की बात है, वह यह है कि अगर करुणा हो तो गरीब पर ही करुणा नहीं होगी, अमीर पर भी उतनी ही करुणा होगी। क्योंकि गरीब और अमीर एक ही बीमारी के दो हिस्से हैं। और अगर करुणा होगी तो बुरे आदमी पर ही करुणा नहीं होगी, अच्छे आदमी पर भी करुणा होगी, क्योंकि अच्छे और बुरे एक ही बीमारी के दो रूप हैं। और यदि करुणा होगी तो करुणा जाएगी गहरे पूरे मनुष्य के इतिहास में, मनुष्य की पूरी संस्कृति में, मनुष्य के पूरे अचेतन मन में और खोजेगी कि सारी बीमारियों की मूल जड़ें कहां से निकल आई हैं। और उनकी बदलाहट उसकी दृष्टि होगी। करुणा ऊपर से काटेगी नहीं, नीचे से जड़ों को बदलने की कोशिश करेगी। "करुणा और क्रांति" इस भाषा में इसलिए मैं सोचना पसंद नहीं करता।
करुणा ही क्रांति है। एक बार कम्पैशन पैदा हो तो हम वही नहीं हो सकते,
जो हम कल थे। और न हम जिंदगी को वही रहने दे सकते हैं, जो वह कल थी। अगर मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि आपके पैर गड्ढे में जा रहे हैं तो मैं सब कोशिश करूंगा कि आपके पैर उस गड्ढे में जाने से बच जाएं। और अगर मुझे यह भी पता चल जाए कि आप जब गड्ढे में गिरेंगे तो आप ही नहीं गिरेंगे, मैं भी आपके साथ ही गिरता हूं, क्योंकि यह जिंदगी संग और साथ है। यहां कोई अकेला नहीं है। यहां जब एक आदमी गड्ढे में गिरता है तो हम सब भी उसके साथ किसी न किसी अर्थों में गड्ढे में गिरते हैं। और जब एक आदमी अंधा होता है तो हम सब किसी न किसी अर्थों में अंधे हो जाते हैं। और जब एक आदमी कुरूप होता है तो हम सभी कुरूप हो जाते हैं। जब एक आदमी निर्धन होता है तो सारी मनुष्यता निर्धन हो जाती है। यह सारी जिंदगी इस पृथ्वी पर एक सहयोग है। जहां हम एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले हुए हैं। यहां हम अकेले-अकेले नहीं खड़े हुए हैं। जहां हम चाहें तो भी अकेले-अकेले खड़े नहीं हो सकते हैं। जहां जिंदगी एक सहयोग है और यहां जो भी घटित होता है, वह सबके लिए घटित होता है।
तो अगर मैं समझ पाऊं कि जिंदगी के रोग कहां से पैदा होते हैं, जिंदगी महारोग कैसे बन गई है, और आदमी खुद एक महारोग कैसे बन गया है, तो यह बोध, यह समझ एक गहरी करुणा ले आएगी। और उस करुणा के पीछे क्रांति वैसे ही आती है, जैसे आदमी के पीछे छाया आती है। छाया को लाना नहीं पड़ता है।
और जिस क्रांति को लाना पड़े, वह गलत होगी, क्योंकि लाई हुई क्रांति के पीछे अनिवार्य रूप से हिंसा होगी। और लाई हुई क्रांति कौन लाएगा, और किस प्रकार लाएगा? क्रांति आनी चाहिए। लाई हुई क्रांतियां काफी लाई जा चुकी हैं। उनसे कुछ भी ऐसा नहीं होता है। क्रांति आनी चाहिए। क्रांति एक हैपनिंग होनी चाहिए। क्रांति जिंदगी में विकसित होनी चाहिए। कैसे होगी? वह करुणा से विकसित हो सकती है। करुणा आए, तो क्रांति अपने आप आ जाती है। इसलिए करुणा पर पहले विचार कर लेना जरूरी है, फिर हम क्रांति पर भी सोच सकें।
मनुष्य एक रोग क्यों हो गया है?
जरूर कहीं कोई भूल हो गई है। आदमी के संगठन में ही भूल हो गई है। समाज
के संगठन में नहीं, आदमी के, मनुष्य के संगठन में ही भूल हो गई है। हमने मनुष्य को जिन आधारों पर खड़ा किया है, वे ही गलत हो गए हैं। एक-एक आदमी गलत हो गया है, इसलिए सारा जोड़ भी गलत हो गया है। और एक-एक आदमी जब तक गलत है, तब

तक सारे जोड़ को ठीक करना असंभव है। आदमी ही गलत हो गया है। समाज और संस्कृति गलत हुए आदमी के परिणाम हैं।
आदमी कहां गलत हो गया है... आज पहले इस सूत्र पर मैं बात करना चाहूंगा
कि आदमी कहां गलत हो गया है।
पहला सूत्र मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आदमी ने स्वाभाविक और प्राकृतिक होने की हिम्मत नहीं की है, वह उसकी बुनियादी गलती हो गई है। आदमी ने कुछ और होने की कोशिश की है जो यह है, पशु पशु है, पक्षी पक्षी है, पौधे पौधे हैं। अगर एक गुलाब में कांटे हैं तो वह इस परेशानी में नहीं पड़ा रहता कि मैं बिना कांटे के कैसे हो जाऊं। वह अपने कांटों को भी स्वीकार करता है, अपने फूल को भी स्वीकार करता है। उसकी स्वीकृति में कांटों से विरोध और फूल से प्रेम नहीं है। उसकी स्वीकृति में कांटे और फूल दोनों समाविष्ट हैं। इसलिए गुलाब प्रसन्न है, क्योंकि उसे कोई अंग काटने नहीं हैं। कोई पक्षी अपने एक पंख को इंकार नहीं करता है, एक पंख को स्वीकार नहीं करता है। और कोई पशु अपनी जिंदगी को आधा-आधा तोड़ कर स्वीकार नहीं करता है, पूरा ही स्वीकार कर लेता है।
आदमी ने जिंदगी को पूरा स्वीकार नहीं किया है, जैसी जिंदगी उसे मिली है। वह उस पर आरोपण करता है और कहता है, जिंदगी ऐसी होनी चाहिए तो स्वीकार करूंगा। आदमी कुछ और होने की पागल वासना से पीड़ित है। आदमी जो हो सकता है, वह होने को राजी नहीं है, कुछ और होना चाहता है। आदमी कहता है कि ये कांटे नहीं होने चाहिए मेरे भीतर। आदमी कहता है, वेध नहीं होना चाहिए। आदमी कहता है, काम नहीं होना चाहिए। आदमी कहता है सेक्स नहीं होना चाहिए। आदमी कहता है, यह सब इतने हिस्से नहीं होने चाहिए। प्रेम होना चाहिए, क्षमा होनी चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए। बाकी गलत, जिसे हमने गलत ठहराया हुआ है, वह नहीं होना चाहिए।
लेकिन आदमी एक जोड़ है, इकट्ठा एक टोटलिटी। उसमें कांटे भी हैं और फूल भी। और अगर हमने यह तय किया कि कांटे नहीं होना चाहिए तो हमारा सारा श्रम कांटों को तोड़ने में लग जाएगा। और कांटों को तोड़ने में लगा हुआ व्यक्ति कांटों को मिटा नहीं सकता, क्योंकि कांटे नये पैदा होते रहेंगे, वह उसके बीइंग से आते होंगे, अस्तित्व से आते होंगे। ऊपर से तोड़ेगा, भीतर से आ जाएंगे। और कांटों में उलझ गए व्यक्ति की जो चेतना है, वह फल पैदा करने में भी हो सकती है, हो सकता है कि असमर्थ हो जाए।
आदमी ने अस्वाभाविक, अननेचुरल होने की कोशिश की है। हम स्वाभाविक होने को राजी नहीं हैं। हमारी पूरी संस्कृति और सभ्यता अस्वाभाविक होने का प्रयास है। हम जैसे हैं, वैसे नहीं--हमें कुछ और होना है! इस कुछ और होने की दौड़ ने हमारे सारे स्वभाव को, सारी सहजता को नष्ट कर दिया है। हम सब रुग्ण हो गए हैं, हम सब बीमार हो गए हैं। इस रुग्णता को पहचानने की पहली तो जरूरत यह है कि क्या हम स्वाभाविक हुए बिना कभी भी शांत और आनंदित हो सकते हैं? क्या कोई भी आदमी कभी आनंदित हो सकता है, जब तक वह स्वाभाविक न हो जाए? जैसा सारे जीवन ने चाहा कि वह हो, तब वह वैसा न हो जाए, तो क्या वह शांत हो सकता है, आनंदित हो सकता है?
एक युवती मेरे पास आई। अब तो युवती कहना मुश्किल है। प्रौढ़ है, चालीस वर्ष उसकी उम्र होगी। उसने विवाह नहीं किया है। नहीं किया है विवाह, क्योंकि उसकी धारणा है कि प्रेम सिर्फ आत्मा का आत्मा से होना चाहिए, शरीर बीच में नहीं आना चाहिए। शरीर पाप है। चालीस साल से उसने अपने को रोका है, शरीर को बीच में नहीं आने दिया तो प्रेम भी उसके द्वार पर नहीं आया। क्योंकि अगर प्रेम आएगा तो शरीर के द्वार को ही कहीं से खटखटाएगा।
अगर कोई मेहमान आपके घर में आएगा तो आप उससे कहें कि सीढ़ियां मत चढ़ना
और मकानों की दीवालों को पार मत करना। सीधे घर में आमंत्रित हैं, भीतर आमंत्रित हैं, लेकिन बाहर की दीवालों को स्पर्श मत करना और द्वार से प्रवेश मत करना। तो मेहमान कैसे आएगा? मेहमान नहीं आएगा।
चालीस वर्ष तक मेहमान नहीं आया, लेकिन अभी दुर्भाग्य से, या सौभाग्य
से उसका किसी व्यक्ति से प्रेम हो गया है। तो वह बहुत कठिनाई में पड़ गई है। वह मेरे पास आई और मुझसे कहा मैं बड़ी मुश्किल में हूं। मैं आत्महत्या कर

लूंगी। क्योंकि मैं तो मानती हूं कि प्रेम आत्मिक होना चाहिए, शरीर बीच में नहीं होना चाहिए। अब प्रेम आया है और शरीर बीच में आता है। मैं प्रेमी को स्पर्श भी करना चाहती हूं। और यह तो इतना पाप है, जिसका कोई हिसाब नहीं। मैंने उस स्त्री से पूछा कि तू भोजन आत्मिक रूप से करती है कि शारीरिक रूप से? उसने कहा, भोजन तो शारीरिक रूप से ही करना होता है। तो मैंने कहा, आत्मिक भोजन शुरू करो, शारीरिक भोजन बंद कर दो, क्योंकि शरीर पाप है। और वस्त्र तुम शरीर पर पहनती हो या आत्मा पर? उसने कहा, वस्त्र तो शरीर पर पहनने पड़ते हैं। मैंने कहा, व्यर्थ तू शरीर को बीच में लाती है, वस्त्र आत्मा पर ही पहनने चाहिए। उसने कहा, लेकिन वस्त्र तो शरीर पर ही पहनने होंगे। खाना शरीर खाएगा, खून शरीर बनाएगा। जिंदगी शरीर के आधार पर खड़ी होगी, लेकिन नासमझी से भरे हुए सिद्धांत कहते हैं कि शरीर को प्रेम में स्वीकार मत करना।
अब उसकी, उस स्त्री की जिंदगी बड़ी मुसीबत में पड़ गई, क्योंकि उसने अपने दो हिस्से कर लिए--एक हिस्सा जिसे इंकार करना है और, एक हिस्सा जिसे स्वीकार करना है। जिसको वो दो हिस्से कर रही है वह एक ही व्यक्तित्व के दो हिस्से हैं। शरीर और आत्मा कोई दो चीजें ऐसी नहीं हैं कि एक-दूसरे की दुश्मन हों।
सच तो यह है कि आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में आ जाता
है, वह शरीर है। और आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में नहीं आता है, वह आत्मा है। इसे यों भी कह सकते हैं कि आत्मा का जो हिस्सा अदृश्य है और दिखाई नहीं पड़ता है, वह आत्मा है। लेकिन वे एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं।
लेकिन उस स्त्री की बड़ी परेशानी है। उसने कहा, यह मैं स्वीकार ही नहीं
कर सकती। शरीर को मैं बीच में नहीं ला सकती, शरीर पाप है। तो मैंने उससे कहा कि जीना भी पाप है, क्योंकि बिना शरीर के जीया नहीं जा सकता है। एक क्षण भी नहीं जीया जा सकता बिना शरीर के। उसे बहुत देर तक समझाया, उसे मैंने कहा कि दोनों जुड़े हैं, दोनों इकट्ठे हैं। और जब कोई प्रेम से किसी के शरीर को स्पर्श करता है तो शरीर को ही स्पर्श नहीं करता--जब कोई प्रेम से किसी के शरीर को निकट कर लेता है तो शरीर का पता ही नहीं चलता है। और अगर शरीर का पता चलता है तो उस व्यक्ति के मन में रोग है और उसने दो हिस्सों में तोड़ रखा है अपने को।
उसे मेरी बात समझ में आनी शुरू हुई। उसने मुझसे कहा, यह भी मैं समझ सकती हूं कि शरीर और आत्मा एक है। लेकिन, शरीर के ऊपर का हिस्सा शुद्ध है और शरीर के नीचे का हिस्सा अशुद्ध है। तो मैंने उससे कहा, वह सीमा-रेखा कहां है, जहां से शरीर का ऊपर का हिस्सा शुरू होता है और नीचे का। वह सीमा- रेखा कहां है? वह किस जगह शरीर से अलग होता है--शुद्ध शरीर अलग और अशुद्ध शरीर अलग? शरीर तो इकट्ठा है, कोई फिक्र नहीं करता। वह पूरे शरीर में दौड़ रहा है। श्वास फिकर नहीं करती, वह पूरे शरीर में दौड़ रही है। हाथ पैर और सिर शरीर के लिए सब बराबर हैं। वहां कोई सुचि और कोई अशुचि नहीं, कोई शुद्ध अशुद्ध नहीं।
लेकिन उस स्त्री ने एक नया विभाजन किया। उसने कहा, कि नीचे का हिस्सा अपवित्र है। अगर ज्यादा से ज्यादा मैं स्वीकार भी कर सकती हूं तो ऊपर के हिस्से के शरीर को स्वीकार कर सकती हूं। उसने एक नया विभाजन किया। एक विभाजन था, शरीर और आत्मा अलग-अलग है। इसमें आत्मा को स्वीकार करना है, शरीर को अस्वीकार करना है। यह रुग्ण होने के लक्षण हैं शीजोव्ेनिक होने के लक्षण हैं। ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे पागल हो जाएगा और दो हिस्सों में टूट जाएगा। अब वह बमुश्किल किसी तरह राजी हुई शरीर आत्मा को स्वीकार करने को, तो वह शरीर को भी दो हिस्सों में तोड़ लेती है--नीचे का शरीर अलग है, ऊपर का शरीर अलग है! अब यह स्त्री अगर पागल न हो जाए तो क्या होगा?
लेकिन हमने भी अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ ऐसा ही किया हुआ है। हमने पूरे मनुष्य को स्वीकार नहीं किया है। जैसा नैसर्गिक मनुष्य है, वैसा हमने स्वीकार नहीं किया है। इसका मतलब यह नहीं है कि अस्वीकार करने से हम कुछ बदल गए हैं। अस्वीकार करने से सिर्फ इतना हुआ है कि वह जो नैसर्गिक

मनुष्य है, भीतर छिप गया है और वह जो झूठा मनुष्य है, जिसे हमने स्वीकार किया है, वह ऊपर आ गया है। हम सब पाखंडी हो गए हैं। हमारे चेहरे पर यह बात आ गई है जो हमने थोप ली है। और हमारे अचेतन मन के कोने में, अंधेरे में वह आदमी चला गया है, जो हम हैं। वह आदमी भीतर से धक्के दे रहा है--पूरे क्षण भीतर से वह कह रहा है, पूरे क्षण वह भीतर से संलग्न है काम में। पूरे समय, भीतर जिसको हमने दबा लिया है, वह काम कर रहा है, उससे छुटकारा मुश्किल है। वह नये-नये उपाय खोजता है, अपने काम जारी रखता है। क्योंकि नैसर्गिक को कभी तोड़ कर अलग नहीं किया जा सकता है। जो स्वाभाविक है, उसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता है। वह रहेगा। उसका रहना अनिवार्यता है। सिर्फ छिपकर रहेगा, और छिप कर रहेगा तो आप दो हिस्सों में टूट जाएंगे। एक आपका चेतन, कांशस दुनिया हो जाएगी। एक आपकी अनकांशस दुनिया हो जाएगी। बीच में एक बड़ी दीवाल खड़ी हो जाएगी। उस दीवाल के आर-पार हमारा जाना ही बंद हो जाएगा। हम पीछे कभी लौट कर देखेंगे नहीं कि हमने अपने कितने हिस्से पीछे दबा रखे हैं। और अगर मैंने अपना एक हाथ भीतर दबा रखा है और दूसरा हाथ बाहर रखा है, तो क्या आप समझते हैं कि मैं दबे हुए हाथ से कभी मुक्त हो सकता हूं? दबे हुए हाथ के साथ मेरा खुला हुआ हाथ भी बंधा रहेगा। मैं एक कारागृह में बंद हो जाऊंगा, जहां से निकलना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और जिंदगी की इसीलिए सारी स्फुरण, सारा आनंद, सारा ब्लशफुल जो कुछ भी है, वह सब खो गया है। क्योंकि आदमी ने अपने को ही टुकड़ों में तोड़ लिया है।
आदमी पूरा हो तो आनंदित हो सकता है। आदमी टुकड़ों में हो तो उदास हो जाएगा। आदमी टुकड़ों में हो तो चिंतित हो जाएगा।
चिंता का मतलब क्या है? एंग्जायटी का मतलब क्या है?
चिंता का एक ही मतलब है कि आपके भीतर ही आपने ऐसे टुकड़े बांट लिए हैं,
जो आपस में लड़ रहे हैं। चिंता का और कोई मतलब नहीं है। चिंतित आदमी का मतलब है, खुद के भीतर विरोधी टुकड़ों में बंटा हुआ आदमी, जो अपने से ही लड़ रहा है। अब कोई आदमी अगर अपने से ही लड़ने लगेगा; अपने को ही खंडों में बांटकर अपने ही साथ शत्रुता करने लगेगा--मैं अपने ही दोनों हाथ लड़ाने लगूं तो कौन जीतेगा, कौन हारेगा? सिर्फ मैं टूटता जाऊंगा और नष्ट होता जाऊंगा।
हम सब चिंतित हो गए हैं, तनाव से भर गए हैं, क्योंकि पूरा मनुष्य हमने स्वीकार नहीं किया है। जैसा प्रकृति ने आदमी को बनाया है, जैसा परमात्मा ने आदमी को जन्म दिया है, हमने उसे स्वीकार नहीं किया है। हमने कुछ हिस्सों को इंकार कर दिया है, कुछ का विरोध किया है, कुछ को दबा दिया है, कुछ को रिप्लेस कर दिया है, कुछ को ऊपर कर लिया है। और हम अपने भीतर ही एक बड़ी बेचैनी की स्थिति में खड़े हो गए हैं। इससे हम उदास, इससे हम विक्षिप्त, इससे हम पागल हुए जा रहे हैं। इससे हमारे भीतर की दुनिया हमारे खिलाफ खड़ी है और हम पूरे वक्त अपने ही भीतर की दुनिया के खिलाफ खड़े हैं! हम पूरा समय अपने से ही लड़ रहे हैं--उठने से लेकर सोने तक हम अपने से ही लड़ते चले जा रहे हैं।
एक आदमी अच्छी बातें बोल रहा है, उसे शराब पिला दें, वह आदमी गाली बकने लगता है। कोई पूछे कि शराब में ऐसी कौन सी केमिकल्स हैं, जो आदमी के भीतर गालियां पैदा कर देती हैं। शराब में ऐसी कोई ताकत नहीं है कि किसी आदमी में गालियां पैदा कर दे। लेकिन आदमी ऊपर से अच्छी बातें कर रहा था, भजन गा रहा था, और शराब पिला दी तो गाली बकने लगा है। भीतर उसके गालियां भरी हैं। भजनों से गालियों को दबा रहा है। शराब ने भजन के मन को शिथिल कर दिया है, सुला दिया है। भीतर का गाली वाला मन बाहर आ गया है और उसने बकवास शुरू कर दिया है।
इसलिए सज्जन आदमी शराब पीने से बहुत डरता है। उसके डरने का एक कारण यह
भी है। उसके भीतर जो दुर्जन छिपा बैठा है, वह प्रगट हो सकता है। सज्जन आदमी बहुत भयभीत है। सज्जन आदमी कभी रिलैक्स नहीं करता, क्योंकि वह जरा भी रिलेक्स करे तो भीतर जो आदमी है, वह बाहर आ जावे। इसलिए सज्जन आदमी हमेशा तना हुआ रहता है। हमेशा डरा हुआ रहता है। हमेशा अपने को बचाए रखता है कि कोई क्षण न आ जाए कि जहां मेरे भीतर का दबा हुआ कुछ निकल आए।

इसलिए सज्जन आदमी को फिर दूसरी तरकीबें निकालनी पड़ती हैं। अगर उसको गालियां देनी हैं, तो वह होली की ईजाद करता है, होली को धार्मिक त्योहार बनाता है फिर वह गालियां बक सकता है, क्योंकि गालियों को उसने अब सेंकटिटी दे दी, अब गालियां बक रहा है। और आप कहते हैं, होली का त्योहार है, कोई बुरा मानने की जरूरत नहीं है। सज्जन आदमी ने होली का त्योहार ईजाद किया है। दुर्जन को उसकी कोई जरूरत नहीं है।
फिर सज्जन आदमी और-और नई तरकीबें ईजाद करता है, जहां कि वह अपने भीतर छिपे हुए रोगों को प्रकट करने के रास्ते खोजता है। वह मजाक करेगा, वह व्यंग्य करेगा। अगर दुनिया भर के सारे मजाकों का साहित्य उठा कर देखा जाए तो सौ में से निन्यानबे मजाक सेक्स से संबंधित होंगे। और सज्जन आदमी मजाक करेगा, और सिवाय सेक्स के मजाक की कोई और बात न होगी। लेकिन वह मजाक है, इसलिए उसे कोई गंभीरता से न लेगा।
लेकिन सेक्स की बात को मजाक में उठा कर चर्चा करनी भीतर की किसी बीमारी की खबर है। फिर सज्जन आदमी सेक्स से भरी हुई फिल्में देखेगा, मर्डर से भरी हुई, हत्याओं से भरी हुई फिल्में देखेगा, उपन्यास पढ़ेगा, डिटेक्टिव कहानियां पढ़ेगा। तब इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि इसमें कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ती। लेकिन फिल्म में वह क्या देख रहा है? वह देख रहा है, जो वह करना चाहता है। वह उसे पर्दे पर दिखाई पड़ रहा है। उसके भीतर उसे बड़ी राहत मिल रही है। वह यह जो राहत उसको भीतर से मिल रही है--वह नये रास्ते खोज रहा है। इसलिए सज्जन आदमी का सारा साहित्य कामुकता से भरा हुआ होगा। सारी कविताएं घूम फिर के वहां लौट आएंगी, जिनसे सज्जन आदमी भागा है। सारे गीत वहां जाएंगे जिनसे आदमी ने इंकार किया है।
और सज्जन आदमी लड़ने के नये-नये उपाय खोजेगा--हिंदू मुस्लिम को लड़ाएगा, क्योंकि सज्जन आदमी को सीधा लड़ना बड़ा बुरा मालूम पड़ता है। वह सीधा नहीं लड़ सकता है कि वह आपसे कहे कि आओ, मेरा लड़ने का मन होता है, निपट लें। ऐसा वह नहीं कहेगा। वह कोई उपाय खोज लेगा कि गऊ माता का अपमान हो गया है--सज्जन आदमी अब लड़ने आ सकता है कि कुरान को किसी ने चोट पहुंचा दी है, तो रामायण को किसी का पैर लग गया है, कि मंदिर की कोई मूर्ति टूट गई है। सज्जन आदमी को लड़ने के लिए भी श्रेष्ठ और सज्जनोचित कारण चाहिए, तब वह लड़ने के लिए बाहर आएगा। फिर वह लड़ सकता है मजे से, क्योंकि अब उसने एक धार्मिक वजह ले ली, एक धार्मिक आड़ ले ली। सज्जन आदमी फिर अच्छी आड़ें खोजेगा अपने भीतर के व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए, और अगर न प्रकट कर पाया तो पागल हो जाएगा।
पागल होने का मतलब यह कि जो प्रकट नहीं हो सका, और जिसने प्रकट होने की इतनी मांग की कि उस आदमी को सिवाय पागल होने के कोई रास्ता नहीं रह गया। फिर एक आदमी पागल हो जाता है तो हम उस पर दया करते हैं। फिर हम यह नहीं कहते कि यह बुरा आदमी है। अगर एक आदमी पागल होकर सड़कों पर गालियां बकता है तो हम कहते हैं, बेचारा पागल है। लेकिन यह आदमी पागल कैसे हो गया है? क्या हम सब भी उसी रास्ते से नहीं गुजर रहे हैं, जहां इसकी ही जगह पहुंच जाएं? क्या हम सबके भीतर भी यही सब रोग नहीं पाले जा रहे हैं?
और पांच हजार साल से ज्ञात इतिहास से शिक्षा दी जा रही है आदमी को अच्छा बनाने की। क्या आदमी अच्छा बन गया है? कौन सी अच्छाई आदमी में आ गई है? कारागृह कैदियों से भरे हुए हैं। पागलखाने पागलों से भरे हुए हैं। बीमार रोगियों से अस्पताल भरे हुए हैं। और एक-एक घर कलह और उपद्रव से भरा हुआ है। और अगर हम आदमी की पूरी जिंदगी को खोल कर देख सकें, जो कि बहुत मुश्किल हो गया है, क्योंकि हमने जिंदगी को बहुत-बहुत पर्दों से छिपाया हुआ है। अगर हम एक दिन के लिए भी तय कर लें कि सारे आदमी वैसा ही व्यवहार करेंगे, जैसा करना चाहते हैं तो हमें दिखाई पड़ेगा कि यह तो जिंदगी बहुत और है, जो दिखाई पड़ती थी, वह बात कुछ और है। हम सबने अपने को छिपा रखा है। लेकिन यह छिपा हुआ आदमी भीतर से अपने काम जारी रखे हुए है, इसलिए हर दस पंद्रह साल में एक युद्ध की जरूरत पड़ जाती है। और दो चार साल में दंगा-फसाद चाहिए। रोज कोई छोटा-मोटा उपद्रव होता रहना चाहिए, ताकि हमारे भीतर वह जो छिपा आदमी है, उसकी तृप्ति भी होती रहे--उसकी तृप्ति भी होती रहनी चाहिए।

अगर हम मनुष्य का पूरा इतिहास देखें तो ऐसा लगता है कि हम कह सकते हैं कि आदमी एक लड़ने वाला जानवर है। कोई जानवर इतना नहीं लड़ता। जानवर भी लड़ते हैं, लेकिन जानवर इस भांति नहीं लड़ते हैं, और लड़ते ही रहते हैं, ऐसा नहीं है। और कम से कम लड़ने की कोई पूरी तैयारी तो नहीं करते हैं। आदमी या तो लड़ता है या लड़ने की तैयारी करता है।
दो ही तरह के काल खंड हैं इतिहास में--युद्ध और युद्ध की तैयारी। शांति का कोई काल खंड नहीं है। पूरे मनुष्य के इतिहास में शांति का कोई समय ही नहीं है। या तो युद्ध चल रहा है, या युद्ध की तैयारी चल रही है। वह जब युद्ध की तैयारी चलती है, उसको हम कहते हैं, अभी शांति का दिन चल रहा है। वह शांति का दिन नहीं है। क्योंकि पिछला युद्ध हमारी शक्ति को तोड़ जाता है, उसकी तैयारी करनी पड़ती है। तो जब हम शांति का समय बिता रहे हैं, उस वक्त युद्ध की तैयारी चल रही है, फिर नये युद्ध की तैयारी हो रही है।
सुबह पति नाराज होकर गया है, दोपहर बड़ा शांत है। सावधान रहना, शांत वगैरह कुछ भी नहीं है। क्योंकि फिर वह तैयारी कर रहा है वेध की, सांझ फिर वह वेध करेगा। सुबह मां बेटे को डांटी है, दोपहर बड़ा प्रेम प्रकट कर रही है! यह सुबह का पश्चात्ताप हो रहा है, लेकिन वह फिर वापस लौट रही है अपनी जगह पर। जब पश्चात्ताप--हमने जो भूल की है, उसे पोंछने के उपाय होते हैं कि हम फिर पुरानी जगह खड़े हो जाएं और फिर से वही कर सके जो पश्चात्ताप के पहले करना संभव था। अगर मैं आपको गाली दे आया हूं तो क्षमा मांगने जाऊंगा। इसका यह मतलब है कि दोस्ती जारी रखिए, ताकि कल फिर गाली दे सकूं। क्योंकि दोस्ती टूट जाए तो गाली देने का भी कोई उपाय नहीं है। तब, इसलिए क्षमा भी मांगूंगा, कल फिर वही करूंगा। पश्चात्ताप करूंगा, कल फिर वही वेध होगा, कल फिर वही घृणा होगी, कल फिर सब वही होगा!
यह आदमी की क्या स्थिति है, इसे सोचना और समझना जरूरी है। इसके पीछे क्या कारण है? यह आदमी इतना रुग्ण, इतना डिसीज्ड क्यों है? इसके प्रेम के पीछे घृणा खड़ी रहती है। यह जिसे प्रेम करता है, उसे ही घृणा भी करता है। यह जिसे प्रेम करता है, उसकी भी हत्या का विचार करता है, उसके भी मर जाने का विचार करता है!
एक स्त्री के पति की कुछ वर्ष हुए मृत्यु हुई। वह मेरे पास आई थी, बहुत रोने लगी। मैंने उन्हें कहा, रोओ मत, क्योंकि तुम्हारे पति को मैं पहले से भी जानता हूं और तुम्हें भी जानता हूं। और मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूं, जो बहुत कठोर मालूम पड़ेगा, लेकिन फिर भी मुझे पूछना जरूरी है। मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि जब तुम्हारा पति जिंदा था, तब तुम उसके जिंदा होने से खुश थी? और अगर उसके जिंदा होने से खुश नहीं थी तो उसके मरने से रोने का क्या कारण? उस पत्नी के आंसू एकदम सूख गए, जैसे बहुत शॉक लगा, लगने की बात थी, क्योंकि उसका पति मर गया है और उससे मैं यह कहूंगा--कि तुम सोच के नहीं आई। वह सोच के आई थी कि मैं सांत्वना दूंगा। कहूंगा बहुत बुरा हो गया। उसने यह सोचा भी नहीं था कि मैं उससे यह पूंछूंगा कि तेरा पति जिंदा था तो तू उसके जिंदा होने से खुश थी? और अगर उसके जिंदा होने से खुश न थी तो उसके मरने से रोने का क्या संबंध है?
उसके आंसू सूख गए थे। उसने मुझे पहले बहुत वेध से देखा है फिर वह विनम्र हो गई और फिर दुबारा रोने लग गई। अब उसका रोना बहुत दूसरा है। और उसने मुझसे कहा रोते हुए कि आप यह क्या पूछते हैं, यह तो मुझे ख्याल भी नहीं था। लेकिन आप ठीक ही मेरे घाव को छू दिए। जब तक मेरे पति जिंदा थे, मैं जरा भी खुश न थी। और आप ठीक कहते हैं, ऐसे कई मौके रहे होंगे, तब मैंने सोचा होगा कि यह आदमी मर ही जाए तो बेहतर है, या मैं मर जाऊं तो बेहतर है। लेकिन अब मैं क्यों रो रही हूं। मैं आपसे पूछती हूं कि मैं क्यों रो रही हूं? अगर मैं जिंदा रहने से खुश न थी, तो मैं मरने से रो क्यों रही हूं?
यह स्त्री क्यों रो रही है पति के मर जाने से? यह पति के मरने का दुखःहै? यह तभी हो सकता था जब पति के जीने का कोई आनंद रहा हो। लेकिन वह नहीं था। तब क्या है? तब कौन सी कठिनाई इसे रुला रही है?
इसके भीतर कोई जगह खाली हो गई है। दुश्मन भी हमारे भीतर जगह भरे रहते हैं, और अगर एक दुश्मन भी मर जाता है तो आपके भीतर थोड़ी जगह खाली हो जाती

है। मित्र के मरने से तो होती ही है, दुश्मन के मरने से भी आपकी दुनिया वही नहीं रह जाती है जो कल तक थी। सब रोबदल हो जाता है। पति के मरने से सब बदल गया है। कल तक की जो जिंदगी थी, अब आगे नहीं होगी। न, कल के दुख भी अब नहीं होंगे। सुख तो थे ही नहीं, कल के दुख भी अब नहीं होंगे। कल की चिंताएं अब नहीं होंगी। कल की परेशानियां भी अब नहीं होंगी। कल का सब्र टूट गया। पति के साथ कल की एक दुनिया गिर गई, और नई दुनिया बनाने की हमारी हिम्मत इतनी कम है कि हम रो रहे हैं। लेकिन यह किसी आनंद के खो जाने के आंसू नहीं हैं। आनंद तो था ही नहीं।
क्या आपको पता है कि आपको पहली दफा ही पता चलता है कि किसी आदमी की जिंदगी से हमें आनंद था--तभी पता चलता है, जब वह आदमी मर जाए। उसके पहले आपको कभी पता नहीं चलता है। जब तक वह आदमी जिंदा है, आपके साथ है, आपको पता नहीं चलता है। मित्र जब छूट जाता है, तब याद आती है। जब तक साथ होता है, तब तक आप कहीं और देखते रहते हैं। पत्नी जब तक साथ है, तब प्रीतिकर नहीं है। कल मर जाएगी, तो हो सकता है जिंदगी भर रोते रहें। पति जब तक साथ है, तब तक उसमें कोई अर्थ नहीं है। हो सकता है कल जिंदगी भर उसकी मूर्ति रखकर पूजा करें।
यह आदमी को हो क्या गया है?
आदमी जिसे प्रेम करता है, उसे ही घृणा भी कर रहा है। और आदमी जिसे बचाना चाहता है, उसे मार भी डालता है। लेकिन मारने की भी तरकीबें हैं और बचाने की भी तरकीबें हैं। एक मां अपने बेटे को बचाना चाहती है, एक मां अपने बेटे के लिए इतना काम कर रही है, इतना श्रम कर रही है, लेकिन साथ ही बेटे को मार भी रही है। बेटे की स्वतंत्रता बरदाश्त नहीं है। बेटे को बचाना चाहती है--उसको भोजन दे रही है, उसकी सेवा कर रही है। लेकिन उसकी स्वतंत्रता को बिल्कुल मार डालना चाहती है। और जिंदगी भर चाहेगी कि बेटा उस पर निर्भर रहे, डिपेंडेंट रहे, और जब भी तकलीफ में आए तो उसकी गोद में सिर रख ले। कभी भी बेटा इतना बड़ा न हो जाए कि उसकी गोद बेकार मालूम पड़ने लगे। यह भी आकांक्षा साथ चल रही है।
अब ये दोनों आकांक्षाएं बड़ी विरोधी हैं। वह बेटे को बड़ा करना चाहती है, और बड़ा करने का अनिवार्य हिस्सा यह है कि बेटा उससे स्वतंत्र हो जाए। लेकिन साथ ही वह बेटे को छोटा भी बनाए रखना चाहती है, ताकि वह निर्भर भी रहे। और वह बेटे को मार भी रही है और बेटे को जिला भी रही है। वह बेटे को मिटा भी रही है और बेटे को बना भी रही है। और उसे ख्याल भी नहीं है। और बेटा इसका बदला भी लेगा, क्योंकि बेटे को वह जो मिटाने की कोशिश चल रही है, वह भी उसे पता है। इसलिए बेटे में भी दोहरे भाव अपनी मां के प्रति पैदा हो रहे हैं एक साथ--वह उसको प्रेम भी करता है और घृणा भी करता है। वह उसे प्रेम भी करता है, क्योंकि वह उसे जिंदगी दे रही है, दूध दे रही है, उसे बड़ा कर रही है। और उसे घृणा भी करता है, क्योंकि उसकी सारी स्वतंत्रता छीन रही है। उसका व्यक्तित्व वह पीछे डाल रही है। उसको वह अलग से खड़े नहीं होने देना चाहती। वह दोनों काम एक साथ उसके भीतर पैदा हो रहे हैं। वह उसे घृणा भी करेगा, वह उसे प्रेम भी करेगा। और बाद में उसकी घृणा भी प्रकट हो सकती है। आज उसका प्रेम है, कल बुढ़ापे में उसकी घृणा वापस प्रकट हो सकती है।
एक बाप अपने बेटे को बड़ा भी कर रहा है, और डर भी रहा है, क्योंकि बाप अपने बेटे में अपना पोटेंशियल इनिमी को भी देखता है, अपने बुनियादी दुश्मन को भी देखता है। क्योंकि आज नहीं कल, यही बेटा उसकी सब तिजोड़ियों और सब चाबियों का मालिक हो जाएगा। इसलिए बहुत गहरे में वह इससे डरा भी हुआ है। इसलिए वह पूरा निश्चित कर लेना चाहता है कि बेटा ठीक मेरी इच्छा के अनुसार चले। ताकि चाबियां भले इसके हाथ में हों लेकिन इच्छाएं मेरी हों भीतर। तब चाबियों की तिजोड़ियां मेरी इच्छाओं से ही खुलें और तिजोड़ियां मेरी इच्छाओं से ही बंद हों। इसलिए बेटे को वह ओबेडिएंट और आज्ञाकारी बनाने की चेष्टा में लगा हुआ है। इसके पहले कि बेटे के हाथ में चाबी आ जाए, वह पूरा आज्ञाकारी हो जाना चाहिए। तब चाबी उसके हाथ में होगी, लेकिन हाथ हमारी आज्ञा से चलते होंगे। इसलिए वह पूरा इंतजाम भी कर लेना चाह रहा है। वह डरा भी हुआ है कि

बेटा अगर बगावती हो जाए, तो कल सारी ताकत उसके हाथ में चली जाएगी! तो बाप बेटे से डरा भी हुआ है, प्रेम भी कर रहा है--एक ही साथ भयभीत भी है और प्रेम भी कर रहा है! और प्रेम और भय दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं? बेटे को भी दोनों बातें पता चल रही हैं कि बाप प्रेम भी कर रहा है--इसलिए बेटा भी बाप को प्रेम करता है और वह यह भी देख रहा है कि बाप भयभीत भी है। और भयभीत होने की वजह से बेटे को डरा रहा है ताकि बेटे को भयभीत कर दे। इसके पहले कि बाप भयभीत किया जा सके, बाप बेटे को भयभीत कर देना चाहता है। ताकि बेटा डरा रहे जिंदगी भर और कभी ऐसा न हो कि बाप को डराने लगे। वह बेटे को डरा दे रहा है तो बेटा घृणा भी कर रहा है। जो डराता है, उससे घृणा भी पैदा हो जाती है। हमने सारी जिंदगी एक जाल बना रखी है। हम जिसे प्रेम कर रहे हैं, उसे मुट्ठी में बांध लेना चाहते हैं, उसे बिल्कुल पजेस कर लेना चाहते हैं, उसके मालिक बन जाना चाहते हैं। पति का मतलब ही होता है मालिक! इसलिए पत्नी उसको स्वामी कहती भी है और जब उसको स्वामी लिखती है तो वह बहुत प्रसन्न होता है। वह उसको दस्तखत में नीचे लिखती भी है आपकी दासी।
हम जिसे प्रेम करते हैं, उसे गुलाम बना लेना चाहते हैं। और गुलामी में कभी प्रेम संभव है? जो हमारा गुलाम हो जाएगा, वह हमें प्रेम कर सकेगा? और जिसकी गर्दन मैं पकड़ लूंगा वह मुझे प्रेम कर सकेगा? प्रेम एक स्वतंत्रता का दान है। सिर्फ उन लोगों से मिल सकता है, जो स्वतंत्र हैं। अगर मेरी गर्दन कोई दबाए और कहे कि मुझे प्रेम दो, तो मैं वह सब दे सकता हूं, प्राण दे सकता हूं, लेकिन प्रेम देना असंभव हो जाएगा। क्योंकि प्रेम छीना नहीं जा सकता। लेकिन पति, पत्नियों से छीन रहे हैं। पत्नियां पतियों से छीन रही हैं। बाप बेटों से छीन रहे हैं, बेटे मां से छीन रहे हैं। मित्र मित्रों से छीन रहे हैं।
हम सब प्रेम छीन रहे हैं और इसलिए हर आदमी एक दूसरे पर कब्जा किए हुए है, कि कोई और न छीन ले, इसलिए मैं पूरा का पूरा निचोड़ लूं। जब हम एक दूसरे को इस बुरी तरह दबाए हुए हों, पजेस करते हों, मालिक बन गए हों, तो क्या आपको पता है कि जिसके हम मालिक बनने की कोशिश करते हैं, वह आदमी नहीं रह जाता है, वस्तु हो जाता है। वस्तुएं परचेज की जा सकती हैं। मैं एक कुर्सी का मालिक हो सकता हूं, एक आदमी का मालिक नहीं हो सकता। मैं एक मकान का मालिक हो सकता हूं, लेकिन एक स्त्री का मालिक नहीं हो सकता। लेकिन अगर मैंने स्त्री का मालिक होने की कोशिश की, तो ध्यान रहे, स्त्री संपत्ति हो जाएगी। स्त्री फिर आदमी नहीं रह जाएगी। और इसलिए स्त्रियां संपत्ति हो गई हैं। हम तो अपने मुल्क में कहते भी हैं कि स्त्री संपत्ति है। हमने उसे संपत्ति का हिस्सा मान लिया है। हमने उसे संपत्ति मान रखा है। हम जिसको भी दबा कर कब्जा कर लेंगे वह संपत्ति हो जाएगी, उसकी आत्मा खो जाएगी, क्योंकि जहां आत्मा है, वहां स्वतंत्रता है। हम कैसा पागलपन कर रहे हैं! अगर हम प्रेम चाहते हैं तो पजेशन की बात छोड़ देनी चाहिए। अगर प्रेम चाहते हैं तो कभी किसी के मालिक मत बनना। अगर प्रेम चाहते हैं तो कभी किसी को वस्तु और सामग्री मत बना देना, चीजें मत बना देना। व्यक्ति को आत्मा देना है। लेकिन हम जिसको प्रेम करते हैं, उसी को कस के पकड़ लेते हैं। बल्कि हम प्रेम पीछे करते हैं, कसके पकड़ लेने का इंतजाम पहले करते हैं। इसलिए प्रेम पीछे आता है, विवाह पहले आ जाता है। विवाह है कस के पकड़ लेने का पहले इंतजाम--पीछे प्रेम, पहले विवाह। विवाह इस बात की खबर है कि अब भाग नहीं सकते हो। अब कब्जा पूरा है और कानूनन। और अगर कोई भागेगा तो कानून और समाज गवाह होगा। इसलिए इतना शोर गुल मचाना पड़ रहा है, इतने बैंड-बाजे बजाने पड़ते हैं, ताकि पूरे गांव को पता चल जाए। इतने इंवीटेशन छापने पड़ते हैं। यह खबर है इस बात की कि हम बंध गए हैं, पूरे गांव को पता है। भाग नहीं सकते हो। पूरी दुनिया को पता है। भाग नहीं सकते हो--रजिस्टर पर लिखवाना पड़ता है दफ्तर में, या पंडित पुजारी शोरगुल मचा कर गांव में खबर कर देते हैं। सारे समाज को इकट्ठा कर लेना पड़ता है। सारे मित्र, प्रियजन इकट्ठे हो जाते हैं, ताकि सब जान लें कि ये दो व्यक्ति बंध गए हैं, अब ये भाग नहीं सकते। दुनिया अच्छी होगी तो यह शोरगुल बहुत पागलपन मालूम पड़ेगा। दुनिया अच्छी होगी तो प्रेम दो आदमियों के बीच की बात है, इसमें समाज को शोरगुल मचाने की जरूरत

नहीं है। इसमें बैंड बाजे बहुत बेहूदा हैं। इनका मतलब नहीं है, इनकी क्या जरूरत है? लेकिन इनकी जरूरत अब तक रही है, क्योंकि बंधन को सोशल कांट्रेक्ट बनाना है, उसको सामाजिक इकरारनामा बनाना है कि समाज उसकी गवाही दे दे कि हां यह बात पूरी हो गई है, अब भाग नहीं सकोगे, अब दोनों बंध गए हो--कसम खिलवा ले समाज अपने सामने।
हम प्रेम के लिए उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने विवाह के लिए उत्सुक हैं, क्योंकि विवाह में हम एक दूसरे के मालिक बन जाते हैं। और प्रेम में कोई किसी का मालिक नहीं बनता है।
प्रेम में दो व्यक्ति स्वतंत्र होते हैं।
स्वतंत्रता में ही प्रेम के फूल खिल सकते हैं।
आदमी का समाज प्रेम से क्षीण और हीन हो गया है, क्योंकि हमने प्रेम को जबरदस्ती छीन कर पैदा करना चाहा है, वह पैदा नहीं हो सका है। और जब तक आदमी की जिंदगी में प्रेम का फूल न खिले तब तक आदमी स्वस्थ नहीं हो सकता है, और न आनंदित हो सकता है और न प्रसन्न हो सकता है। इसलिए छोटे बच्चों में थोड़ी बहुत प्रसन्नता दिखाई पड़ती है। लेकिन धीरे-धीरे जिंदगी जैसे आगे बढ़ती है, प्रसन्नता खोती चली जाती है। धीरे-धीरे बूढ़ा होता आदमी करीब-करीब बहुत पहले मर चुका होता है। हमारा बहुत सा अस्तित्व पोस्टमार्टम के बाद का है। मर चुके हैं, उसके बाद लाश चलती चली जाती है।
ऐसी यह जो रुग्ण चित्त दशा है आदमी की, इसके पीछे एक कारण जो मैं आज आप
को कहना चाहता हूं, वह यह है कि हमने जीवन की सहजता को, वह जो नेचुरल, वह जो स्वाभाविक प्रकृतिगत मनुष्य है उसको स्वीकार किया है, उसे हमने स्वीकृति नहीं दी है। और मैं आस्तिक आदमी का पहला लक्षण मानता हूं कि जो प्रकृति ने दिया है, उसे पूरी तरह स्वीकार करता है। स्वीकृति उसका पहला लक्षण है। टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, वह जो मेरे भीतर है, उसका पूर्ण स्वीकार! इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि आपको हत्या करनी है तो आप हत्या करें। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि मकान में आग लगाना है तो आप आग लगाएं। सच तो यह है कि आपने चूंकि अपने भीतर के हिस्सों को अस्वीकार किया है, इसलिए आप हत्या भी करते हैं और आग भी लगाते हैं। अगर आपने अपने भीतर के कोई हिस्से अस्वीकार नहीं किए होते तो आप उस लयबद्धता को उपलब्ध हो जाते, जिसके लिए आग लगाना और हत्या करना असंभव है। उस हार्मनी को, उस संगीत को आप उपलब्ध हो सकते थे, जिसको आप उपलब्ध नहीं हो पाए हैं।
कोई आदमी आग लगा रहा है--यह इस बात की खबर है, कि यह आदमी विक्षिप्त है।
और कोई आदमी किसी की हत्या कर रहा है, यह इस बात की खबर है कि यह आदमी होश में नहीं है। इसके कोई ऐसे हिस्से काम कर रहे हैं, जिनका इसे खुद ही नहीं पता है, जिनकी इसकी मालकियत नहीं है। इसने अपने ही कुछ हिस्सों को इतने भीतर दबा दिया है कि वे ही किसी दिन इसके ऊपर हावी हो जाएंगे और आग लगवा देंगे, हत्या करवा देंगे।
अदालतों में न मालूम कितने हत्यारे यह कहते हैं कि हमें यह पता नहीं
कि हमने यह कैसे किया। हमें यह याद ही नहीं आता है कि हमने यह किया। पहले तो मजिस्ट्रेट सोचते थे कि ये झूठी बातें हैं, लेकिन अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यह झूठ नहीं है, कुछ हत्यारे हत्या करने के बाद भूल ही जाते हैं कि उन्होंने यह हत्या की है। क्योंकि उनका वह हिस्सा हत्या करता है, जिससे उन्होंने अपने संबंध ही बहुत पहले तोड़ लिए। उनकी आइडेंटिटी ही टूट गई है, उनके भीतर के उस हत्यारे से उन्होंने बहुत पहले संबंध ही तोड़ लिया है, इसलिए उन्हें याद भी नहीं आता है कि यह हत्या उसने की है। यह हत्या न मालूम कैसे हो गई है। यह हत्या हमने नहीं की है। जब वे होश में आते हैं, जब आप रात सपने में किसी की हत्या कर देते हैं तो सुबह आप यह थोड़े ही कहेंगे कि मैंने हत्या की है। आप कहते हैं कि सपना था। सपने में हो गई है यह बात।
अगर आपने भीतर ऐसे हिस्से दबाए रखे हैं तो वे हिस्से कभी प्रकट हो सकते हैं--अभी अहमदाबाद में वे हिस्से प्रगट हुए हैं। नाम और बहाने कुछ भी हो सकते हैं। मेरे एक मित्र ने कहा कि उन्होंने अपनी आंख के सामने पांच-छह लोगों को इकट्ठे जलाए जाते देखा। उनमें एक छोटा बच्चा भी है। वह बच्चा आधा जल गया है और भाग रहा है और भीड़ ने उस बच्चे को वापस धक्के देकर उस आग में

डाल दिया है। वे पांच छह लोग जिंदा जलाए गए हैं। भीड़ यह देखती रही कि कोई भाग न जाए, कोई अधूरा जला हुआ बाहर न निकल आए। फिर भीड़ गई, वे अधजली लाशें तड़फती, चिल्लाती, हाथ-पैर पटकती वहीं पड़ी रह गईं। उनको कोई देखने को भी वहां नहीं रह गया!
यह जो लोग कर रहें हैं--आप ऐसा मत सोचना कि आपसे अलग कोई और हैं या मुझसे अलग कोई और हैं। जब तक हम इस भाषा में सोचेंगे कि यह कोई और लोग हैं-- गुंडे और बदमाश हैं, तब तक हम गलत नतीजे पर पहुंचते रहेंगे। यह हम ही हैं और हमारे भीतर का कोई हिस्सा यह कर सकता है। जरा अपने भीतर सोचना कि कभी ऐसा करने का मन अपने भीतर भी आ सकता है। किसी मौके पर भीतर से यह बात उभर सकती है। हो सकता है, आपको पता भी न चले और आप कहें, मैं ऐसा कभी भी नहीं कर सकता हूं। जिन लोगों ने यह किया है--करने के पहले वे भी यही कहते थे और करने के बाद भी अगर आज कोई उनसे पूछेगा तो वे कहेंगे, हमारी समझ में नहीं आता, भीड़-भड़क्के में हम कैसे साथ हो गए, यह हमारी समझ में नहीं आता। लेकिन हम सिर्फ साथ थे, हमने खुद कुछ भी नहीं किया है।
मैं भी साथ हो सकता हूं, आप भी साथ हो सकते हैं। हम भी यह कर सकते हैं। हमारे भीतर अधूरा, कटा हुआ आदमी पड़ है--बिल्कुल अपरिष्कृत, बिल्कुल ही आदिम, बिल्कुल ही जंगली आदमी हमारे भीतर पड़ है और उसको हमने अंधी दीवालें बना कर पीछे छोड़ दिया है। और उसको बदलने का उपाय भी नहीं आया, उसको बनाने का उपाय भी नहीं आया, उसको संवारने का उपाय भी नहीं आया, क्योंकि हमने इंकार ही कर दिया है कि वह हमारा हिस्सा है।
जब आप किसी से कहते हैं कि मुझे वेध आ गया, माफ कर दें, भूल हो गई। तब ऐसे कहते हैं, जैसे वेध कोई बाहर से चीज थी, जो आ गई। आप कहते हैं, मुझे वेध आ गया है। लेकिन कभी आप ने ख्याल किया है कि वेध बाहर से कभी भी नहीं आया है। कोई ऐसी चीज नहीं है, जो आसमान से आपके पास आ गई है और आप भूल से उसके चक्कर में पड़ गए हैं। लेकिन कहते हम ऐसे ही हैं कि मुझे वेध आ गया, माफ कर दें।
नहीं, जब वेध आता है तो बाहर से नहीं, भीतर से आता है। और अगर और गहरे उतर कर देखेंगे तो यह वाक्य ही गलत है कि मुझे वेध आता है--चाहे भीतर से चाहे बाहर से। जब आप वेध में होते हैं, तब सच्चाई यह है कि आप वेध ही होते हैं। ऐसा नहीं कि आप वेध करते हैं। हम वेध ही हो जाते हैं। तो हमारा भीतर कोई पड़ा हुआ हिस्सा पूरी तरह फैल कर हमें घेर लेता है और हम वेध ही हो जाते हैं। जब घृणा पकड़ती है तो हम घृणा ही हो जाते हैं। जब हत्या पकड़ती है तो हम हत्या ही हो जाते हैं। यह हम हो सकते हैं, हममें से कोई भी हो सकता है। सारी मनुष्यता इस खंड-खंड बंटे हुए आदमी से पीड़ित है। इसलिए पहला सूत्र, इस पर हम बातें करेंगे कि कैसे मनुष्य अखंड हो सके।
खंड-खंड मनुष्य रुग्ण मनुष्य है। अखंड मनुष्य स्वस्थ हो सकता है। टुकड़े-टुकड़े में टूटा हुआ मनुष्य चिंतित रहेगा। सब टुकड़े इकट्ठे हो जाएं, समग्र हो जाएं तो आदमी चिंता के बाहर हो सकता है। बंटा हुआ आदमी, उदास, बीमार, परेशान रहेगा। अनबंटा आदमी इंटीग्रेटेड, समग्र आदमी, आनंदित प्रफुल्लित, प्रसन्न हो सकता है। और ध्यान रहे, अखंड आदमी ही प्रभु के द्वार पर दस्तक भी दे सकता है, क्योंकि जो पूरा है, वही उस पूरे से मिलजुल भी सकता है। जो अधूरा है वह उस पूरे से मिलने की यात्रा पर भी नहीं जा सकता है। यह पहला सूत्र है।
इस संबंध में जो भी प्रश्न हों, वह आप लिख कर दे देंगे। और कल सुबह के संबंध में दो तीन सूचनाएं हैं, क्योंकि कल सुबह आठ से नौ बिड़ला क्रीड़ा केंद्र में ध्यान के लिए मित्र इकट्ठे हो रहे हैं। वहां ध्यान का कुछ प्रयोग करेंगे कि ध्यान घटित हो जाए। तो वहां वे ही लोग आएंगे जो सुनने में उत्सुक नहीं हैं, कहीं जाने में उत्सुक हैं। वहां कोई बात नहीं होगी ज्यादा। कुछ प्रयोग ही होगा। सुनने के लिए उत्सुक लोग वहां नहीं आएंगे। वहां कहीं जाने की आतुरता जिनकी हो, केवल वे ही लोग आएं। बिना स्नान किए न आएं, स्नान करके ही आएं ताकि शुद्ध, ताजे हो जाएं। ताजे कपड़े पहन कर आएं और घर से निकलते ही करीब-करीब मौन साध लें। थोड़ा बहुत बोलना पड़े तो बोलें, अन्यथा चुप हो आएं ताकि वहां आते-आते मौन का एक भाव बन जाए। आंखों का भी

बहुत उपयोग न करें। घर से आते वक्त बन सके उतनी देर आंखों बंद करते हुए आएं, लेकिन थोड़ी आंख खोले आएं, पूरी आंख न खोलें। और रास्ते के किनारे लगे हुए सब तरह के पोस्टर पढ़ते हुए मत आएं। आंख धीमी कर लें, आंख बंद ही रखें तो बहुत अच्छा, थोड़ा बहुत खोलें तो अच्छा। आंख बंद किए हुए, ओंठ बंद किए हुए न बोलें तो अच्छा है। चुपचाप आएं। वहां आकर कोई बात न करें, चुपचाप बैठ जाएं। जो सूचनाएं मैं दूंगा, उसके अनुसार सुबह हम प्रयोग करेंगे।
आपके जो भी प्रश्न होंगे, लिख कर दे देंगे। ध्यान के संबंध में जो प्रश्न होंगे, वह सुबह लिख कर देंगे। सांझ की चर्चाओं के संबंध में जो प्रश्न होंगे, वह सांझ लिख कर देंगे।

मेरी वार्ता को इतनी प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

करुणा और क्रान्ति
दूसरा प्रवचन

शून्य के क्षण

मेरे प्रिय आत्मन्!
ध्यान का अर्थ हैः समर्पण, टोटल लेट-गो।
ध्यान का अर्थ हैः अपने को पूरी तरह छोड़ देना।
और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरी तरह छोड़ देता है, वह परमात्मा के हाथों में गिर जाता है। जब तक हम अपने को पकड़े हुए हैं, तब तक परम शक्ति से हमारा मिलन नहीं हो सकता। हमें अपने को छोड़ना ही पड़ेगा। हमें अपने को खो ही देना होगा। हमें मिटना ही होगा, तभी हम उसके साथ एक हो सकते हैं, जो सच में है। जैसे कोई लहर अपने को जोर से पकड़ ले तो फिर सागर में ही हो सकती है, और लहर अपने को छोड़ दे, बिखर जाए, खो जाए, तो वह सागर है ही।
ध्यान कोई क्रिया नहीं है, जो आपको करनी है। ध्यान है, सब क्रियाओं का छोड़ देना। ध्यान है, बस रह जाना--जैसे हम हैं, जो हम हैं। और कुछ भी न करना। इस ध्यान की स्थिति को समझने के लिए पहले दो-तीन छोटे प्रयोग हम करेंगे, ताकि आपको भीतर से ख्याल में आ सके कि ध्यान क्या है। फिर उसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
और ध्यान को शब्द से समझाना कठिन है। कोई क्रिया होती, अभ्यास होता,
तो शब्द से बताया जा सकता था। लेकिन ध्यान का थोड़ा सा अनुभव ख्याल में ले आना आसान है, तो हम तीन छोटे से प्रयोग करेंगे, जिनसे ख्याल आ सके कि ध्यान का भाव क्या है। फिर उसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
पहला प्रयोग है, वह समझ लें, फिर पांच मिनट हम उसका प्रयोग करेंगे। फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर चौथा प्रयोग हम ध्यान का करेंगे।
पहला प्रयोग है, उसे समझना ही है भीतर प्रयोग करके। तो मैं इधर कहूंगा, आप उधर प्रयोग करेंगे। एक तो थोड़े-थोड़े फासले पर बैठें, कोई किसी को छूता हुआ न हो। किसी को भी कोई छू न रहा हो। थोड़े आगे आ जाएं, या थोड़े घास पर हट जाएं, लेकिन कोई किसी को स्पर्श न करता हो। फिर आंख पर भी जोर न पड़े बहुत धीमे से आंख बंद करनी है। जैसे पलक गिर आती है, आंख बंद हो गयी है। आंख पर भी जोर नहीं होना चाहिए, और अपने को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें और ढीला छोड़ दें। और किसी तरह की शरीर पर कोई स्ट्रेन न रह जाए।
अब भीतर सिर्फ मैं एक कल्पना करने को कहता हूं, ताकि ख्याल आ सके कि ध्यान से क्या मतलब है। भीतर देखें कि एक बड़ी नदी बही जा रही है। भीतर देखें कि दो पहाड़ों के बीच में एक बड़ी नदी तेजी से बही जाती है। जोर का बहाव है, जोर की आवाज है, लहरें हैं, तेज गति है, और नदी बही जा रही है। देखें, उसे स्पष्ट देखें। नदी तेजी से बही जा रही है। वह साफ दिखाई पड़ने लगे। इस नदी में आपको उतर जाना है, लेकिन तैरना नहीं है, बहना है, जस्ट फ्लोटिंग। इस नदी में आप उतर जाएं और बहना शुरू कर दें। पैर न चलाएं, सिर्फ बहे जाएं, बहे जाएं,। हाथ पैर चलाएं ही मत। तैरना नहीं है, सिर्फ बह जाना है।
नदी में हमने अपने को छोड़ दिया है और नदी भागी चली जा रही है और हम उसमें बहे जा रहे हैं, बहे जाते हैं, बजे जाते हैं। कहीं पहुंचना नहीं है, किसी किनारे पर नहीं जाना है। कोई मंजिल नहीं है, इसलिए तैरने का कोई सवाल नहीं है। बस सिर्फ बहना है। छोड़ दें, और बहें। नदी में बहने की जो अनुभूति होगी, वह फिर ध्यान को समझने में सहयोगी होगी। एक पांच मिनट के लिए उस नदी में छोड़ दें और बहते जाएं। नदी का कोई अंत नहीं है, वह बही ही चली जा रही है। आप भी उसमें बहने लगे हैं। कुछ करना नहीं है, हाथ पैर भी नहीं चलाना है, सिर्फ बहते जाना है, बहते जाना है। देखें, नदी बह रही है, आप भी उसके साथ बहने लगे हैं। जरा भी तैरते नहीं हैं, बस बहे जा रहे हैं।
पांच मिनट मैं चुप हो जाता हूं, आप बहने का फ्लोटिंग का अनुभव करें।
बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं, नदी में छोड़ दिया है--जरा भी तैरना नहीं है, हाथ पैर भी नहीं हिलाना है। बहे जा रहे हैं। जैसे एक सूखा पना नदी में तैरता चला जाता हो, ऐसे ही छोड़ दें। देखें, बहते चले जा रहे हैं, बहते

चले जा रहे हैं, बहते चले जा रहे हैं। और बहने के साथ ही साथ एक अनुभव होना शुरू हो जाएगा--समर्पण का, सरेंडर का। नदी के साथ छोड़ दें अपने को। लैट गो का एक अनुभव होना शुरू हो जाएगा। बहें, बहते चले जाएंघ नदी तेजी से बही चली जा रही है, लहरें तेजी से भागी जा रही हैं। आप भी नदी में छूट गये हैं और बहे जा रहे है। कुछ करना नहीं है, बहते चले जाना है।
बिल्कुल छोड़ दें, और बह जाएं। नदी और तेजी से बही जाती है, और तेजी से बही जा रही है। इसको ठीक से अनुभव कर लें--बहने की इस प्रतीति को। बहने के इस अनुभव को ठीक से समझ लें कि क्या है। फिर ध्यान में वह सहयोगी होगा। ठीक से समझ लें कि यह बह जाने का अनुभव क्या है, जब हम हाथ पैर भी नहीं चला रहे हैं और नदी हमें लिये जा रही है, लिये जा रही है। सब कुछ नदी कर रही है, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। इसे ठीक से देख लें, ताकि यह ख्याल में आ जाए। सब कुछ नदी कर रही है, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हम सिर्फ बहे चले जा रहे हैं।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें, और दूसरा प्रयोग समझ लें, जो मैं कहता हूं,।
धीरे-धीरे आंख खोल लें।
ध्यान है समर्पण।
ध्यान है अपने को खो देना।
ध्यान है मिट जाना।
ध्यान है, सब भांति विसर्जित हो जाना।
हमारा गिरना जरूरी है, हमारा मिटना जरूरी है। हमारा होना बाह्य है।
जैसे एक वृक्ष को कोई काट दे और वृक्ष गिर जाए, जैसे एक बीज जमीन में पड़ा हो और वह टूटे और मिट जाए, ठीक ऐसे ही हमें भी भीतर से बिखर जाना और मिट जाना है।
दूसरा प्रयोग इस मिटने की दिशा में समझें। आंख बंद कर लें और अपने को ढीला छोड़ दें।
पहली बात हमने समझी बहने की। अब दूसरी बात मिटने की समझ लें कि बिल्कुल मिट गये हैं। आंख बंद करें, बहुत आहिस्ता से आंख बंद कर लें और शरीर ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर ली है, शरीर ढीला छोड़ दिया है। देखें, सामने ही एक चिता जल रही है। लकड़ियां लगी हों, जोर से आग की लपटें पकड़ गयी हैं, चिता जोर से जल रही है। चिता को जलता हुआ देखें। लकड़ियों में आग पकड़ गयी है, चिता का जलना शुरू हो गया है। ठीक से देखें, चिता को। आग पकड़ गयी है, लपटें जोर से ऊपर भाग रही हैं आकाश की तरफ। चिता जल रही है।
दूसरी बात ख्याल से देखें कि इस चिता को आप देख नहीं रहे हैं, इस चिता
पर आप चढ़े हुए हैं। आप ही इस चिता पर चढ़ा दिये गये हैं। सब मित्र, प्रियजन आपके चारों तरफ खड़े हैं। आग लगा दी गयी है, इस चिता पर आप चढ़ा दिये गये हैं। लकड़ी ही नहीं जल रही आप भी जल रहे हैं। लकड़ियों में लपटें लगी हैं, आप भी जले जा रहे हैं।
थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा--लकड़ियां भी और आप भी। अपने को ही अपनी चिता पर चढ़ा हुआ अनुभव करें। देखें सामने, अपना ही शरीर उस चिता पर चढ़ा है और आग में जल रहा है।
एक पांच मिनट इस अनुभव को करें, ताकि मिटने का बोध ख्याल में आ सके। एक दिन तो चिता जलेगी ही कभी, एक दिन आप उस पर चढ़ेंगे ही। सभी को उस पर चढ़ जाना है। तो आज अपने मन के सामने ठीक से देख लें, चिता की जलती हुई लपटें, आकाश की तरफ भागती हुई अग्नि शिखाएं, और आप चढ़े हैं। लकड़ियां ही नहीं जल रही हैं, आप भी जले जा रहे हैं। देखें, जोर से लपटें बढ़ती चली जाती हैं। आपका शरीर भी जला जा रहा है, सब मिटा जा रहा है, सब समाप्त हुआ जा रहा है, सब मिटा जा रहा है, सब समाप्त हुआ जा रहा है। थोड़ी देर में आग भी बुझ जाएगी, राख रह जाएगी। लोग विदा हो जाएंगे, मरघट खाली सुनसान हो जाएगा।
अब देखें चिता पर चढ़े हुए हैं आप मैं चुप हो जाता हूं। लपटें जलती रहेंगी। आपको कुछ करना नहीं है। लपटें जलेंगी, जला देंगी, सब राख हो जाएगा। थोड़ी देर भीड़ खड़ी रहेगी मित्रों की, प्रियजनों की आसपास, फिर वे भी विदा हो जाएंगे। फिर राख ही पड़ी रह जाएगी। मरघट सुनसान हो जाएगा।

देखें, शुरू करें, लपटें साफ देखें--उन पर आप भी चढ़ें हैं और जल रहे हैं। कुछ करना नहीं है, जलने में क्या करना है, जल जाना है। आग काम कर देगी, लपटें काम कर देंगी। आपको कुछ नहीं करना है, जल जाना है, मिट जाना है। पांच मिनट के लिए आप बस चिता पर अपने को चढ़ा हुआ देखते रहना। फिर धीरे-धीरे लपटें बुझ जाएंगी, सब शांत हो जाएगा।
यह मिट जाने के अनुभव को ठीक से स्मरण रख लेना वो ध्यान में काम कर सकेंगे।
लपटें बढ़ती जा रही हैं, शरीर जलता जा रहा है, आप भी जलते चले जा रहे हैं। लपटें बढ़ती चली जा रही हैं, आप भी मिटते चले जा रहे हैं--सब धुआं हो जाएगा, सब राख हो जाएगी, मरघट शांत हो जाएगा। जरा भी अपने को बचाने की कोशिश मत करना, छोड़ देना लपटों में, ताकि सब जल जाए, सब मिट जाए, सब शांत हो जाए।
देखें, लपटें बढ़ती चली जा रही हैं, धुआं बढ़ता चला जाता है, सब जला जा रहा है, आप भी जले जा रहें हैं, मिटे जा रहे हैं।
इसे बहुत साफ देख लें, ताकि ध्यान में सहयोगी हो जाए, क्योंकि ध्यान
भी एक तरह की मृत्यु है। देखें, साफ देखें, सब जल रहा है, सब मिट रहा है, सब समाप्त हो रहा है। और आपको कुछ भी नहीं करना है, बस जल जाना है, मिट जाना है। आग सब काम कर लेगी। आप को क्या करना है! आग सब काम कर रही है, जलाये दे रही है। लपटें भागी चली जा रही हैं, सब मिटता चला जा रहा है।
नदी में तो तैर भी सकते थे, यहां तो तैर भी नहीं सकते हैं। यहां तो तैरने का उपाय भी नहीं है। सब मिटा जा रहा है, लपटें सब समाप्त किये दे रही हैं! देखें, धुआं रह जाएगा, राख रह जाएगी, मरघट सुनसान रह जाएगा, लोग विदा हो जाएंगे।
हवाएं चल रही हैं, लपटें और भी जोर से बढ़ी जा रही हैं, हवाएं लपटों को बढ़ाए दे रही हैं, सब जला जा रहा है, जला जा रहा है। सब जला जा रहा है, थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा।
हवाओं ने लपटें और जोर से कर दी हैं। देखें, सब जल गया है। लपटें बुझती
जा रही हैं, राख पड़ी रह गयी है, लोग विदा हो रहे हैं। मरघट पर सन्नाटा छा गया है। हवाएं फिर भी चलती रहेंगी, राख उड़ती रहेगी, मरघट पर कोई न होगा, लोग विदा होने लगेंगे।
सब सन्नाटा हो गया है। आप मिट गये हैं, राख ही पड़ी रह गयी है। इसे ठीक
से देख लें--यह ध्यान से देखना अत्यंत जरूरी है। ठीक से देख लें, सब पड़ा हुआ रह गया है। राख ही पड़ी रह गयी है, बुझे हुए अंगारे रह गये हैं, लोग जा चुके हैं, अब मरघट पर कोई नहीं है। आग भी बुझ गयी है, आप भी मिट गये हैं।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें और तीसरे प्रयोग को समझें और फिर उसे करें। धीरे-धीरे आंख खोल लें और ठीक बैठ जाएं।
पहली बात है, यह समझ लेना, कि बहने का क्या अर्थ है। दूसरी बात है, यह समझ लेना कि मिटने क्या अर्थ है। और अब तीसरी बात का नाम है--तथाता, सचनेस।
यह तीसरी बात इन दोनों से ज्यादा आगे ले जाने वाली है। और यह तीन सीढ़ियां ठीक से समझ लेंगे। तथाता या सचनेस का मतलब है, "चीजें ऐसी हैं"। रास्ते पर आवाज आ रही है, क्योंकि रास्ते पर आवाज आयेगी ही। पक्षी शोरगुल कर रहे हैं, क्योंकि पक्षी शोरगुल करेंगे ही। समुद्र की लहरें किनारे से टकरा रही हैं, आवाज आ रही है, क्योंकि समुद्र की लहरें और क्या कर सकती हैं। जो हो रहा है, वैसा हो रहा है, वैसा है। वैसा हो ही सकता है, अन्यथा कोई उपाय ही नहीं है। तथाता का मतलब है कि कोई विरोध का कारण नहीं है। कुछ अन्य हो जाए, इसके अपेक्षा की जरूरत नहीं है। जैसा है, वैसा है। घास हरा है, आकाश नीला है, समुद्र की लहरें शोर कर रही हैं, पक्षी आवाज मचा रहे है, कौवे चिल्ला रहे हैं, सड़क पर लोग जा रहे हैं, कारों की आवाज हो रही है, हार्न बज रहे हैं--ऐसा है। इस होने की स्थिति में हमारा कोई विरोध नहीं है। इस होने की स्थिति से हम राजी हो गये हैं। हम पूरी तरह राजी हैं कि ऐसा है। न हम चाहते हैं कौवे आवाज बंद कर दें, न हम चाहते हैं कि सड़क पर लोग हार्न न बजाएं, न हम चाहते हैं कि समुद्र की लहरें शोरगुल न करें। ऐसा है, जगत ऐसा है।

जगत के संबंध में भी यह बात ध्यान रखनी है कि ऐसा है और हम इसके लिए पूरी तरह राजी हैं। हमारा कोई विरोध नहीं है। और अपने संबंध में भी ध्यान रखना है भीतर कि ऐसा है। पैर में चींटी काट रही है तो दर्द हो रहा है--ऐसा है। चींटी काट रही है और पैर में दर्द हो रहा है। इसमें, कुछ विरोध नहीं है, ऐसा हो रहा है ऊपर से धूप आ रही है और पसीने की बूंदें बह रही हैं। ठीक है, धूप आयेगी तो पसीना बहेगा ही। इसमें कुछ विरोध नहीं है, इसमें कुछ करना नहीं है, इसे स्वीकार कर लेना है, ऐसा है।
और जैसे ही हम इसे स्वीकार करते हैं, हमारा विरोध चला जाता है, रेसिस्टेन्स चला जाता है, वैसे ही भीतर कुछ शांत होना शुरू हो जाता है, जो सदा से अशांत है। वह अशांत इसी लिये रहा है कि उसने चाहा है कि ऐसा हो। उसने कभी ऐसा नहीं माना है कि ऐसा है। सूरज पड़ रहा है, किरणें आ रही हैं, तो पसीना बहेगा, धूप लगेगी, ऐसा उसने स्वीकार नहीं किया है। कभी सूरज नहीं होना चाहिए, किरणें गर्म नहीं होनी चाहिए, पसीना नहीं बहना चाहिए, ऐसा मन ने चाहा है। जिसे ध्यान में जाना है, उसे ऐसी आकांक्षा बड़ी बाधा बन जाएगी। कैसा होना चाहिए, नहीं--जैसा है, है। शांत होने का एक ही अर्थ है कि जैसा है, है। और हम उसके लिए पूरी तरह राजी हो गये हैं। यह तीसरा बिंदु है तथाता।
तो पांच मिनट, चीजें ऐसी हैं, हमें कुछ करना नहीं है। करने का कोई उपाय
भी नहीं है। हम नहीं थे, तब भी चीजें ऐसी थीं। समुद्र तब भी इसी तरह शोर करता रहा, कौवे बोलते रहे, पक्षी चिल्लाते रहे, रास्ता चलता रहा। हम नहीं होंगे, तब भी चीजें ऐसी होंगी। तो जब हम हैं, तब भी चीजें ऐसी ही रहें तो अड़चन क्या है, कठिनाई क्या है। हमारे होने न होने से इस सारे होने का क्या संबंध है?
आंख बंद करें, आहिस्ता से आंखें ढीली छोड़ दें, शरीर को आराम में छोड़ दें, शरीर को ढीला, रिलैक्सड छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें, और अब तीसरे प्रयोग में उतरें--तथाता--चीजें ऐसी हैं।
हमें कुछ करना नहीं है, चीजें ऐसी हैं नहीं। जगत ऐसा है ही। फिर कौन अशांति है, फिर कौन सी तकलीफें हैं, चीजें ऐसी हैं। बच्चा बच्चा है, बूढ़ा, बूढ़ा है, स्वस्थ स्वस्थ है, बीमार बीमार है। पक्षी आवाज कर रहे हैं, घास हरी है, आकाश नीला है, कहीं धूप पड़ रही है, कहीं छाया है--ऐसा है।
अब ख्याल करें--चीजें ऐसी हैं, हमारा कोई विरोध नहीं हैं। अविरोध, नो रेसिसस्टेंस। हमारा कोई विरोध नहीं है। हम इन चीजों के बीच में, हम भी हैं। एक पांच मिनट ऐसा ख्याल करें--कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं। जो है, जैसा है, हम उससे राजी हैं।
न हम कुछ बदलना चाहते हैं, न कुछ हम मिटाना चाहते हैं, न कुछ हम बनाना चाहते हैं। जैसा है, वैसा है, हम उससे राजी हैं।
एक पांच मिनट के लिए इस राजी होने की स्थिति में अपने को छोड़ दें-- देखें, ये कौवे की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी। इससे कोई विरोध नहीं है। तो हमारे और इसके बीच की दीवाल, टूट जाएगी। सुनें।
सड़क की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी। अगर हमारा कोई विरोध नहीं है तो सड़क की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी। सुनें।
समुद्र का शोर अब दुश्मन की तरह मालूम नहीं पड़ता है। एक डिस्टरबेंस मालूम नहीं पड़ता है। सुनें। हमारा कोई विरोध नहीं है। जैसा है, है।
पांच मिनट के लिए जो है, उससे राजी होकर डूब जाएं।
देखें, धूप अब वैसी नहीं मालूम पड़ती है। जो है, है। अब कुछ भी वैसा मालूम नहीं पड़ता है, हम शत्रु की तरह नहीं हैं, एक मित्र की तरह हैं, जो है उससे राजी हैं।
इस तीसरे सूत्र को भी ध्यान में रख लेना--तथाता, सचनेस; चीजें ऐसी हैं। इसे ठीक से समझ लेना कि चीजें ऐसी हैं।
चीजें ऐसी हैं, कोई विरोध नहीं, कोई शत्रुता नहीं, कुछ अन्यथा हो, इसकी आकांक्षा नहीं--चीजें ऐसी हैं। धूप गर्म है, छाया सर्द है, समुद्र अपने काम में लगा है, रास्ते पर चलने वाले लोग अपने काम में लगे है--जरा भी विरोध न

रखें--बस ऐसा हो रहा है, हो रहा है, हो रहा है और हम जान रहे हैं, कुछ बदलना नहीं, कुछ मिटाना नहीं, कुछ परिवर्तन नहीं।
इस तीसरे सूत्र को ठीक से समझ लेना, क्योंकि ध्यान की गहराई में ले जाने के लिए अत्यंत जरूरी है। चीजें ऐसी हैं।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें।
अब ध्यान के संबंध में दो-तीन बातें समझें, और फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे। ये मैंने तीन सूत्र आपको समझाने की अलग-अलग कोशिश की, क्योंकि ये ध्यान में तीनों जरूरी होंगे।
एक तो बहना, तैरना नहीं।
हम जीवन भर तैरते हैं बहते नहीं। कुछ चीजें हैं, जो तैरने से कभी भी नहीं मिल सकतीं, सिर्फ बहने से ही मिल सकती हैं। अस्तित्व, सत्य या परमात्मा कभी तैरने से नहीं मिल सकता। सिर्फ बहने से मिल सकता है। जो भी बहने को राजी है, वह सागर तक पहुंच जाएगा। नदी खुद ही ले जाती है। जो बहने को राजी है, जीवन उसे खुद ही ले जाता है, उसे कहीं जाना नहीं पड़ता है। जो तैरा, वह भटक जाएगा। तैरने वाला ज्यादा से ज्यादा इस किनारे से दूसरे किनारे पहुंच जाएगा, लेकिन सागर तक नहीं। तथा सागर तक जिसको जाना है, उसे तैरने की जरूरत ही नहीं। उसे नदी से लड़ने की जरूरत ही नहीं, वह तो बह जाए। नदी तो खुद ही सागर की तरफ जा रही है।
जीवन स्वयं ही परमात्मा की तरफ जा रहा है, अगर हम न रोकें तो जीवन अपने
आप परमात्मा तक पहुंचा देता है। हम रोक लेते हैं जगह-जगह और वह नहीं पहुंच पाता है। इसलिए बहने का अनुभव पहला।
दूसरा मिटने का अनुभव।
हम जीवन भर अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं। इसी तरह अपने को बचा लें। इससे ज्यादा भ्रामक और कोई बात नहीं हो सकती। हम बचने वाले नहीं हैं। और जो बचने वाला है, उसे बचाने की कोई जरूरत नहीं है, वह बचा ही हुआ है। जिसे हम बचाने की कोशिश में लगे हैं वह मिटने वाला ही है, इसलिए हम बचाने की कोशिश में लगे हैं। और हमारी कोई कोशिश काम में न आयेगी, वह मिट ही जाएगा। और जो बचने वाला है, वह हमारी कोशिश से न बचेगा, वह बचा ही हुआ है, उसके मिटने का उपाय ही नहीं है। हमारे भीतर जो बचने वाला है, वह सदा बचा हुआ है। और जो मिटने वाला है, वह मिटेगा ही। हमारे बचाने की कोशिश में सिर्फ हम परेशान हो जाएंगे और कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए दूसरा सूत्र मैंने आप से कहा--मर जाने का, मिट जाने का, मिट जाने की तैयारी का।
और ध्यान रहे, जो मरने को तैयार है, वह पूरे जीवन का अधिकारी हो जाता है। क्योंकि जो मरने से भयभीत न रहा, उसके सब द्वार खुल जाते हैं। जीवन सब द्वारों से प्रवेश कर जाता है। भय के कारण मृत्यु न आ जाए, मिट न जाएं, हमने सब दरवाजे बंद कर लिये हैं और भीतर छिपकर बैठ गये हैं। जीवन भी नहीं आ पाता, क्योंकि दरवाजे वही हैंः जिनसे मृत्यु आती है, उन्हीं से जीवन भी आता है, उन्हें हमने बंद कर रखा है।
हमने दरवाजे बंद कर दिये हैं कि कोई शत्रु न आ जाए, लेकिन मित्र भी उन्हीं दरवाजों से आते हैं। वह दरवाजे बंद हो गये हैं, मित्रों का आना भी बंद हो गया है। हम भीतर हैं, अपने को बचाने में लगे हैं। सब दरवाजे छोड़ दें। मिटने को राजी जो हो जाता है, वह सब दरवाजे छोड़ देता है खुले। जो ओपनिंग है, ओपननेस है, वह सिर्फ उसी को मिलती है, जो मिटने को राजी हो। उसको क्लोज करने का कोई सवाल ही नहीं रहा। उसे बंद करने का कोई सवाल न रहा। वह मिटने तक को राजी है, अब और क्या डर है? वह खुद ही मिटने को राजी है, अब कौन उसे मिटा सकता है!
तो इसलिए दूसरा सूत्र मैंने कहा कि मिटने को राजी हो जाएं, क्योंकि ध्यान की गहरी प्रक्रिया मरने की प्रक्रिया है। और जो मरना सीख जाता है, वह जीने की कला भी सीख जाता है।
और तीसरी चीज मैंने कही कि चीजें ऐसी हैं, आप लड़ें मत। जीवन को शत्रुता से न लें, एक दुश्मन की तरह खड़े न हो जाएं। हम सब दुश्मन की तरह खड़े हो गये हैं। हर चीज से लड़ रहे हैं। हर चीज ऐसी होनी चाहिए। जैसी है, वैसी हमें स्वीकार नहीं है तब हम पूरे जीवन के साथ दुश्मनी में खड़े हो गये हैं।

उससे कुछ जीवन बदल नहीं जाता है। उससे सिर्फ हम टूटते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
तो ध्यान की गहराई तो तभी उपलब्ध होगी, कि जीवन जैसा है, हम उसे परिपूर्णता से स्वीकार कर रहे हैं। ऐसा है। हमें कांटा भी स्वीकार है। अगर वह गड़ता है तो हम कहते हैं कांटा है, गड़ेगा ही। हमें फूल भी स्वीकार है, अगर वह नहीं गड़ता है तो हम कहते हैं, फूल है, गड़ेगा कैसे। कांटा है तो गड़ेगा, फूल है तो नहीं गड़ेगा। लेकिन हमें दोनों स्वीकार हैं, कांटे का कांटापन स्वीकार है, फूल का फूल होना स्वीकार है। न हमें कांटे से विरोध है, न हमें फूल की आकांक्षा है। जैसा है, वह हमें स्वीकार है। ऐसी स्वीकृति से ही कोई शांत हो सकता है। शांति अंततःः परिपूर्ण स्वीकार का फल है। अगर आप अशांत हैं तो अपनी अशांति को भी स्वीकार कर लें कि मैं अशांत हूं। और आप पाएंगे, यह स्वीकृति आपको शांति में ले जाती है।
एक फकीर के पास एक आदमी गया और उसने कहा कि आप तो बड़े शांत हैं और मैं बड़ा अशांत हूं। उस फकीर ने कहा, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। मैं शांत हूं, तुम अशांत हो, बात खत्म हो गयी। अब और क्या कहना है। उस आदमी ने कहा, नहीं बात खत्म नहीं हो गयी। मुझे भी शांत होना है। उस फकीर ने कहा, यह बहुत मुश्किल है। क्योंकि जो अशांत है, वह शांत कैसे हो सकता है। तुम अशांत होने में राजी हो जाओ। तुम कहो कि मैं अशांत हूं बात ठीक है। अशांत हूं, इसका विरोध छोड़ दो। उस आदमी ने कहा, लेकिन मुझे शांत होना है। उस फकीर ने कहा, फिर तुम जाओ क्योंकि मैं तुम से यह कह रहा हूं कि अगर तुम्हें शांत होना है तो तुम अशांत होने की व्यवस्था कर रहे हो, क्योंकि जिसे कुछ भी होना है, वह अशांत हो जाएगा। तुम अशांत हो, तो राजी हो जाओ कि अशांत हो। फिर देखो कि शांति कैसे नहीं आती है। वह चली आयेगी। अगर कोई आदमी अशांत होने में भी राजी हो जाए, तो क्या शांति उसके द्वार से बहुत दिन तक दूर रह सकती है? कैसे रहेगी दूर? जो अशांत होने में भी राजी हो गया है, उसके लिए शांति भागी चली आयेगी, क्योंकि कोई उपाय न रहा रुकने का अब। इसलिए जो है, उसकी परिपूर्ण स्वीकृति से क्रांति आती है, जो सहज है। और सब सहज ही आता है।
ये तीन सूत्र मैंने कहे, इन तीन को ध्यान में रखना, क्योंकि अभी जब हम ध्यान में जाएंगे, तो इन तीनों का ही प्रयोग करके गहरे उतर जाना है।
अब हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
तो इसमें दो तीन बातें समझ लेनी हैं। हो सकता है ध्यान में जब कोई अपने को पूरी तरह छोड़े तो गिर जाए। इसलिए जितना फासले पर हट सकें थोड़ी भी जगह न छोड़ें, फासले पर हट जाएं। कोई गिर सकता है, वह आपके ऊपर गिर जाए तो आपको परेशानी होगी, उसको परेशानी होगी। थोड़ी दूर हट जाएं। और या फिर किसी को पूरा ख्याल रखना पड़े पूरे वक्त कि कहीं मैं गिर न जाऊं। क्योंकि अगर किसी ने अपने को सच में नदी में पूरी तरह छोड़ दिया है तो वह यह भी कहां ख्याल रख पायेगा कि शरीर आगे गिर गया, पीछे गिर गया, गिर गया कि नहीं गिर गया। अगर इतना भी ख्याल रखना पड़ा तो वह फिर बह नहीं पायेगा। अब जिसकी चिता पर लाश चढ़ गई है, उसे अब कहां ख्याल रह जाएगा कि कौन पड़ोस में बैठा हुआ है। अगर ख्याल रहा तो चिता पर लाश चढ़ नहीं पाएगी।
लेकिन अगर कोई आपके ऊपर भी गिर गया है, या आप किसी के ऊपर गिर गये हैं,
तो इसे भी स्वीकार कर लेना है। ठीक है कि कोई गिर गया है, अब इसमें इतना परेशान होने की जरूरत नहीं है। गिरा रहने देना है। जो गिर गया है, उसे भी गिरे रहना है। जिसके ऊपर गिर गया है, उसे भी गिरा रह जाने देना है। इसकी भी क्या बात है, चीजें ऐसी हैं, कि कोई गिर गया है। इसमें कुछ बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है।
तो थोड़े फासले पर हट जाएं और फिर हम ध्यान के लिए बैठें।
इसलिए मैंने कहा--ध्यान यानी समर्पण। पूरी तरह छोड़ देना है, जो होगा, होगा। हमें न यह सोचना है कि क्या होगा, न हमें दिशा देनी है कि यह हो। न हमें चेष्टा करनी है। हमें तो छोड़ देना है। छोड़ देना है। छोड़ देना है, जो हो, हो।
अब आंख बंद कर लें, बहुत धीमे से आंख बंद कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। जैसे शरीर में कोई प्राण ही न

हो, ऐसा ढीला छोड़ दें। और तीन मिनट तक मैं सुझाव दूंगा। मेरे साथ अनुभव करें। तीन मिनट तक मैं सुझाव दूंगा, सजेशन दूंगा--कि शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, रिलेक्स हो रहा है, रिलेक्स हो रहा है, तो भीतर आपको अनुभव करते जाना है कि शरीर शिथिल हुआ, शिथिल हुआ, शिथिल हुआ, शिथिल हो रहा है। अनुभव ही नहीं करना, अनुभव के साथ शरीर को शिथिल छोड़ते चले जाना है। एक तीन मिनट में शरीर बिल्कुल मिट्टी की तरह हो जाएगा, बिखर जाएगा, गिर जाएगा, झुक जाएगा। तो आपको कोई बाधा नहीं देनी है। जो हो, हो जाए।
अब मैं शुरू करता हूं। अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल
हो रहा है। छोड़ें, छोड़ते जाएं और अनुभव करते जाएं, शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ते भी जाएं साथ-साथ और अनुभव करते जाएं, शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल छोड़ दें, आप नहीं हैं मालिक। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है।
अनुभव करें शरीर का रग-रग, रेशा-रेशा शिथिल होता जा रहा है, शरीर शिथिल होता जा रहा है, शरीर शिथिल होता जा रहा है। बिल्कुल छोड़ दें, जैसे शरीर है ही नहीं। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है शरीर का कण-कण शिथिल होता जा रहा है, रग-रग शिथिल होती जा रही है। छोड़ दें। शरीर शिथिल होता जा रहा है शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है शरीर शिथिल हो रहा है शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल होता जा रहा है शरीर शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है शरीर शिथिल हो रहा है।
छोड़ दें बिल्कुल, और दूसरे पर ध्यान न दें, अपने को ढीला छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें। दूसरे पर ध्यान न दें, दूसरा कोई नहीं है। आप अकेले ही हैं। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया है, जैसे हो ही नहीं। अपनी सारी पकड़ छोड़ दें। आप पकड़े हुए न रह जाएं। फिर शरीर का जो हो--गिरता हो, गिरे, न गिरता हो, न गिरे। आगे झुके, पीछे झुके--जो हो। आप पकड़े हुए न रह जाएं, इतना ध्यान रखें। आप शरीर को नहीं पकड़े हैं, आपने छोड़ दिया है। अब जो भी होगा, होगा। आप रोकें नहीं, जो भी हो, हो।
शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें, जैसे नदी में छोड़ दिया था, ऐसे ही छोड़ दें और बह जाएं। जैसे नदी में छोड़ दिया था, और बह गये थे, ऐसे ही बह जाएं। छोड़ दें, छोड़ दें। जीवन की सरिता ले जाए, जहां ले जाए छोड़ दें। बिल्कुल छोड़ दें, शरीर शिथिल हो गया है। गिरता हो गिर जाए, जरा भी रोकें नहीं। छोड़ दें, नदी ले जाएगी, बह जाएंगे, छोड़ दें, जीवन की सरिता में छोड़ दें सूखे पने की भांति और बह जाएं, बहें।
शरीर शिथिल हो गया है, शरीर शिथिल हो गया है, शरीर शिथिल हो गया है, शरीर शिथिल हो गया है, शरीर शिथिल हो गया है, जैसे है ही नहीं। शरीर जैसे है ही नहीं। छोड़ दें।
श्वास शांत हो रही है, अनुभव करें, श्वास शांत होती जा रही है, श्वास शांत होती जा रही है, श्वास शांत होती जा रही है। रोकनी नहीं है, अपनी तरफ से ढीला छोड़ दें, श्वास बिल्कुल शांत होती जा रही है। श्वास शांत हो रही है। छोड़ दें, श्वास बिल्कुल शांत होती जा रही है, श्वास शांत हो रही है। छोड़ दें, श्वास को भी छोड़ दें, श्वास शांत होती जा रही है, श्वास शांत हो रही है, श्वास शांत हो रही है। जैसे-जैसे श्वास शांत होती चली जाएगी, वैसे- वैसे लगेगा कि हम तो मिट गये, मिटे, मिटे, मिटे, क्योंकि हमारा होना श्वास से जुड़ा है। श्वास शांत होती जा रही है, शांत होती जा रही है, शांत होती जा रही है, श्वास बिल्कुल शांत होती चली जा रही है। ऐसा लगेगा कि गयी, गयी। श्वास बिल्कुल शांत हो गयी है। श्वास शांत हो गयी है, श्वास शांत हो गयी है, श्वास शांत हो गयी है, श्वास शांत हो गयी है, श्वास शांत हो गयी है। श्वास शांत हो गयी है।
अनुभव करें, जैसा चिता पर चढ़ गये थे और जल गये थे और राख रह गयी थी; सब मिट गया था, ऐसे ही श्वास विलीन होती जा रही है, धीरे धीरे सब विदा हो

जाएगा, कुछ भी न रह जाएगा, पीछे राख भी न छूट जाएगी। अनुभव करें, जैसे चिता पर चढ़ गये थे, ऐसे ही श्वास खोती जा रही है, खोती जा रही है, मरते जा रहे हैं, मरते जा रहे हैं। धीरे-धीरे सब मर जाएगा, पीछे कुछ भी शेष न रह जाएगा। छोड़ दें। श्वास को भी छोड़ दें।
और अब तीसरी बात अनुभव करें, पक्षियों की आवाज है, सूरज की किरणें हैं, सड़कों पर गति है, शोरगुल है, सागर की लहरें हैं, सब सुनाई पड़ रहा है। साक्षी होकर चुपचाप सुनते रह जाएं, सुनते रह जाएं, सुनते रह जाएं--ऐसा है, ऐसा है। चीजें ऐसी हैं। सिर्फ सुनते रहें, सुनते रहें, सुनते रहें--ऐसा है। जानते रहें, जानते रहें, ऐसा है। और कुछ भी न करें, बस जान रहे हैं, सुन रहे हैं, जान रहे हैं, सुन रहे हैं। कुछ भी करना नहीं है, जो है उसके साथ चुपचाप एक होकर जानते हुए रह जाना है।
अब दस मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं। शरीर शिथिल हो गया, श्वास शांत
हो गयी और आप तथाता में, साक्षी भाव में बैठे रह गये हैं। धीरे-धीरे धीरे- धीरे कुछ बदलता जाएगा, शांत हो जाएगा, शांत हो जाएगा। फिर भीतर कुछ शून्य हो जाएगा, भीतर कुछ मौन हो जाएगा। आप नहीं रह जाएंगे, कोई और उस शून्य में आ जाएगा।
अब मैं चुप हो जाता हूं, आप सुनते रहें, साक्षी भाव से देखते रहें, जानते रहें, जो भी हो रहा है। कोई विरोध नहीं--ऐसा है। देखें, भीतर देखें, बाहर सुनें, और चुपचाप साक्षी बने रह जाएं, दस मिनट के लिए सिर्फ साक्षी बने रह जाएं।
दस मिनट ध्यान की स्थिति।
मन शांत और शून्य हो गया है। सब मिट गया है। मन बिल्कुल शून्य हो गया है। मन शून्य हो गया है--देखते रहें, जानते रहें मन शून्य हो गया है, मन बिल्कुल शून्य हो गया है। सब मिट गया है। मन बिल्कुल शून्य हो गया है। मन शून्य हो गया है। देखते रहें, जानते रहें, मन शून्य हो गया है, मन बिल्कुल शून्य हो गया है। मन बिल्कुल शून्य हो गया है।
साक्षी बने रहें, देखते रहें, जानते रहें, अनुभव करते रहें नदी बहा के
ले गई है, चिता ने जला दिया है, अब चुपचाप जान रहे हैं, जान रहे हैं। इसी शून्य में किसी क्षण उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम आनंद है। उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम सत्य है। उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम परमात्मा है। सब शून्य हो गया है, सब शून्य हो गया है, द्वार खुले हैं प्रतीक्षा में, सब शून्य हो गया है।
अब धीरे-धीरे गहरी दो-चार श्वास लें, धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ बहुत ताजगी, बहुत शांति बहुत आनंद मालूम पड़ेगा। धीरे-धीरे दो-चार श्वास लें, धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास के साथ ताजगी, बहुत शांति बहुत आनंद मालूम पड़ेगा। धीरे-धीरे गहरी श्वास लें।
दो-चार गहरी श्वास--फिर धीरे-धीरे आंख खोलें, आंख न खुले तो जल्दी न करें, गहरी श्वास लें फिर आंख खोलें। हो सकता है किसी को आंख खोलने में तकलीफ हो तो हाथ आंखों से लगा लें, फिर धीरे-धीरे आंख खोलें।
जो लोग गिर गए हैं, वे पहले गहरी श्वास लें, धीरे-धीरे उठें, फिर आंख खोलें।
जो प्रयोग मैंने ध्यान के लिए कहा है, इसे रात सोते समय करें।

करुणा और क्रान्ति
तीसरा प्रवचन

आनंद का झरना

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटे से गांव में मैं कुछ दिनों के लिए ठहरा हुआ था। पहाड़ों की तलहटी में बसा हुआ वह गांव है। रोज सुबह उस पहाड़ के पास घूमने जाता था। रास्ते के किनारे एक झरने से दोस्ती हो गई। कुछ देर वहां बैठता, फिर लौट आता। छोटा ही झरना था, लेकिन बड़ा जीवंत था। गति थी, प्रवाह था, जिंदगी थी। फिर दो वर्ष बाद मैं उस गांव में गया, उस झरने की खोज में गया, लेकिन अब
वह झरना नहीं रहा। एक बड़ी चट्टान उस झरने के ऊपर गिर गई है। अब भी पानी बहता था, लेकिन झरना अब नहीं था। झरना खंड-खंड में टूट गया था। बहुत टुकड़े हो गए थे। छोटी-छोटी बहुत धाराएं हो गई थीं। न अब गर्जन था, न अब बहाव था। पानी रिसता था। पहाड़ अब भी उस पानी से गीला हो जाता था, लेकिन झरना अब नहीं था। उस चट्टान के पास बैठकर मैं सोचने लगा था, आदमी की जीवंत धारा पर क्या कोई चट्टान नहीं गिर गई है? आदमी की चेतना की धारा पर, उसके झरने पर भी तो कोई चट्टान नहीं गिर गई है?
मैं कल कह रहा था कि हमने मनुष्य के प्राकृतिक रूप को स्वीकार नहीं किया। दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि चूंकि हमने प्राकृतिक रूप को स्वीकार नहीं किया, झरने पर चट्टान रख करके हमने अप्राकृतिक स्वरूप का निर्माण किया है। गति चली गई, आवाज चली गई, झरना खो गया। अब पानी की छोटी- छोटी धाराएं रह गई हैं--खंड-खंड। मनुष्य के ऊपर दमन की चट्टान रख कर हमने उसे अप्राकृतिक बनाने की कोशिश की है। मनुष्य को अप्राकृतिक बनाने की जो प्रक्रिया है, वह रिप्रेशन है, वह दमन है। और मनुष्य का रूप जो दमित हो गया है, वह हजार-हजार छोटी-छोटी धाराओं में टूट कर नये-नये रास्तों को तोड़ कर अब भी पहाड़ को गीला करता है। झरने की शान नहीं रह गई है, लेकिन पानी बहुत तरफ से बहता है। अब झरने की जगह घाव मालूम पड़ता है। धारा की जगह सब बंध गया है। और जो झरना एक जिंदगी देता था, वह झरना अब छोटे-छोटे डबरों में बंध कर गंदगी दे रहा है।
आज दूसरा सूत्र मैं आप से बात करना चाहता हूं, क्योंकि मनुष्य के ऊपर
जो बड़ी करुणा की जरूरत है, यह करुणा उसे दमन से मुक्त की ही हो सकती है। क्योंकि दमन ने ही मनुष्य को क्रूर, कठोर, दुखी और पीड़ित कर दिया है। दमन ने ही मनुष्य को हिंसा से, प्रतिहिंसा से और न मालूम कितने रोगों से भर दिया है।
इसे थोड़ा समझना जरूरी होगा। क्योंकि एकदम से यह बात दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि हमने वह झरना ही नहीं देखा। मैं तो उस गांव में दो बार गया था--एक बार जब वह झरना था और दूसरी बार चट्टान गिर गई थी। हम जिंदगी के जिस गांव में आए हैं, वहां चट्टान गिरी हुई ही हमें मिली है। हमें झरने का कोई पता ही नहीं है। इसलिए हम तय भी नहीं कर पाते कि हम क्या हो सकते थे? हजारों साल, लाखों साल की लंबी कहानी है, उस चट्टान के गिर जाने की, इसलिए अब हमें पता नहीं है कि कोई चट्टान गिर गई है। उसने झरने को खंड-खंड कर दिया है, संगीत छीन लिया है, सौंदर्य छीन लिया है। शान छीन ली है, गरिमा छीन ली है, सब नष्ट कर दिया है। सिर्फ घाव और डबरे रह गए हैं, जिन पर गंदगी के सिवाय अब कुछ भी पैदा नहीं होता है। तो हम, इस दमन की चट्टान ने कैसे खंड पैदा किए, इसे थोड़ा समझें।
बहुत कठिन है समझना, लेकिन थोड़ी खोज बीन करें तो समझ में बात आ सकती है। मैं कल कह रहा था कि सारी दुनिया में धन को इकट्ठा करने का पागलपन है, लेकिन क्या आपने सोचा कि धन को इकट्ठा करने का पागलपन किस मूल झरने के टूटने और खंडों से पैदा हुआ है? तो मैं आप से कहना चाहता हूं कि जो आदमी जीवन में प्रेम देने और लेने में असमर्थ रह जाते हैं, जिनके प्रेम की धारा पर चट्टान गिर जाती है, वह आदमी धन इकट्ठा करने में लग जाता है। जब प्रेम की धारा पर दमन की चट्टान गिरती है तो धन इकट्ठा करने का पागलपन पैदा हो जाता है। इसके पीछे गहरे कारण हैं।

कभी देखा होगा अनाथ बच्चों को तो उनके पेट बहुत बढ़े हुए मालूम पड़ेंगे। अनाथ बच्चों का पेट बड़ा हो जाएगा, क्योंकि अनाथ बच्चों को मां के प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। जब वह रोएगा, तभी दूध मिलेगा, इसका कोई पक्का भरोसा नहीं है। तो जब उसे दूध मिलता है, तो वह ज्यादा से ज्यादा दूध इकट्ठा कर लेना चाहता है। खाना मिलता है तो ज्यादा से ज्यादा खाना इकट्ठा कर लेना चाहता है। अनाथ बच्चे के मन में संग्रह की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है क्योंकि प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। लेकिन मां के पास बड़ा हो रहा बच्चा है, वह कभी ज्यादा दूध नहीं पी लेता है, बल्कि मां कोशिश भी करे ज्यादा दूध पिलाने की, तो इंकार करता है। उसे पक्का भरोसा है, जब रोएगा, तब प्रेम मौजूद है। वह उसके लिए भोजन बन जाएगा। लेकिन अनाथ बच्चे का मन ऐसा नहीं रह जाता। जब भोजन मिलता है, तब जितना ले सकते हो, ले लो इकट्ठा कर लो, क्योंकि प्रेम का कोई भरोसा नहीं है। भूख लगे, और प्रेम न हो तो कठिनाई हो जाएगी। जिन बच्चों को जीवन में प्रेम नहीं मिल पाया है, वे भोजन को इकट्ठा करने की प्रवृत्ति से भर जाते हैं! धन तो बहुत बाद में आया, पहले तो भोजन था, लोग भोजन इकट्ठा कर रहे थे। फिर पीछे धन आया और धन ने और इकट्ठा करने के हमारे रास्ते खोज लिए, क्योंकि गेहूं कितना इकट्ठा करिएगा? वे सड़ जाएंगे, खराब हो जाएंगे। लेकिन रुपया न सड़ता है न खराब होता है, रुपया इकट्ठा किया जा सकता है। रुपया बदली हुई शक्ल है भोजन की, और धन की आकांक्षा बदला हुआ प्रेम है, जो तृप्त नहीं हो पाया है।
इसीलिए जहां धन इकट्ठा करने का पागलपन होगा, उस आदमी में कभी प्रेम के दर्शन नहीं होंगे। और जिस आदमी की जिंदगी में प्रेम का जन्म होगा, धीरे- धीरे आप पाएंगे कि धन संग्रह करने की दौड़ वहां से विदा हो गई है। प्रेम और धन को इकट्ठा करने की दौड़ एक साथ अस्तित्व में नहीं होती, उनका कोई कोएक्जिस्टेंस, कोई सह-अस्तित्व नहीं है। धन इकट्ठा हुआ है, यह हमें दिखाई पड़ता है। लोग धन इकट्ठा कर रहे हैं, यह हमें दिखाई पड़ता है। कुछ लोग हैं, जो इस धन को बांटने के लिए आतुर हैं कि यह धन बांट दिया जाए, वह भी हमें दिखाई पड़ता है। लेकिन शायद हमें यह ख्याल नहीं है कि हम कितना धन बांटें, वह जो प्रेम की धारा टूट गई है, अगर फिर से अखंड और जुड़ नहीं जाती तो हम धन की जगह फिर दूसरी चीज कोई इकट्ठा करनी शुरू कर देंगे। लेकिन इकट्ठा करना जारी रहेगा। असल में जो प्रेम में जीता है, उसे इकट्ठा करने की फिक्र ही छूट जाती है। वह इकट्ठा नहीं करता है। मोहम्मद ने जिंदगी भर कुछ इकट्ठा नहीं किया। कोई दिन में भेंट कर जाता था, सांझ वे बांट देते थे। सांझ वे बिल्कुल ही नंगे फकीर होकर सो जाते थे। एक पैसा उनके पास नहीं होता था, एक दाना चावल का उनके पास नहीं होता था। उनकी पत्नी ने बहुत बार उन्हें कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं? कल फिर जरूरत पड़ सकती है। तो मुहम्मद कहते हैं कि मुझे प्रेम का इतना भरोसा है कि जिसने आज पहुंचाया है, वह कल भी पहुंचा दे सकता है। कल के लिए वे इकट्ठा करते हैं, जिन्हें प्रेम का भरोसा नहीं है। कल पता नहीं, आए न आए तो कल के लिए इकट्ठा करते हैं। कल की असुरक्षा उन्हें मालूम पड़ती है।
फिर मोहम्मद बीमार पड़े, और आखिरी रात, जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, उनकी पत्नी ने सोचा कि आधी रात है, हो सकता है, दवा की जरूरत पड़ जाए, चिकित्सक बुलाना पड़े--तो उसने सोचा कि आज तो पांच रुपये बचा लो। तो उसने पांच रुपये बिस्तर के नीचे छिपा कर रख दिए हैं। मोहम्मद कोई बारह बजे रात बड़ा तड़फ रहे हैं और उन्होंने कहा, मुझे ऐसा लगता है, अपनी पत्नी को, आज तेरी आंखों में मुझे प्रेम का भरोसा नहीं दिखाई पड़ता है। मुझे ऐसा लगता है कि जरूर तूने कुछ पैसे लिए हैं। उसने कहा, आपको कैसे पता चला? मुहम्मद ने कहा, जितनी स्वतंत्र तू रोज मालूम पड़ती थी, उतनी स्वतंत्र नहीं मालूम पड़ती है। आज कहीं कुछ है, जहां से बंध गई है। तूने कुछ रोका तो नहीं है? वह पत्नी घबड़ा गई। उसने कहा, मैंने पांच रुपये रोके हैं, इस डर से कि हो सकता है रात बीमारी बढ़ जाए तो चिकित्सक को बुलाना पड़े। दवा लानी पड़े तो हम कहां से लाएंगे। मुहम्मद ने कहा, पागल जिंदगी भर जहां से आता था, फिर भी तुझे उस प्रेम का कोई पता नहीं चल सका। फिर भी तूने रुपये रोक लिए। वह निकाल, रुपए कहां हैं? क्योंकि अगर मैं मर गया और भगवान मुझसे पूछेगा तो वह कहेगा कि

आखिरी वक्त तूने प्रेम खो लिया और रुपये पकड़ लिए। वह रुपए निकाल! उसने वह रुपये निकाल लिए, मुहम्मद ने कहा, यह बांट दे। मैं प्रेम को लेकर जीया हूं और प्रेम को लेकर ही जाना चाहता हूं। वे रुपये बांट दिए गए। उन्होंने चादर ओढ़ ली और, वह उनका आखिरी काम था। चादर ओढ़ी और वे समाप्त हो गए। बहुत संभावना इसी बात की है कि वे पांच रुपयों के लिए वे बड़ी देर तक रुके रहे और तड़फते रहे। शायद वे खोजबीन करते रहे कि बात क्या है, अड़चन क्या है?
लेकिन पांच रुपये इतना रोक लेते हों तो हमारी क्या हालत होगी? अगर पांच रुपये घर में बचा लेने से मनुष्य ऐसा बंध जाता हो कि मुहम्मद ने कहा कि मैं परमात्मा के सामने प्रेम लेकर हाजिर होना चाहता हूं, धन लेकर नहीं। तो हमारी क्या हालत होगी? और परमात्मा तो बहुत दूर है, जब हम आदमी को भी प्रेम करते हैं तो हम धन लेकर ही हाजिर होते हैं। प्रेम लेकर हम हाजिर नहीं होते। हम आदमी को भी धन से ही प्रेम करते हैं, हमने धन को ही प्रेम का सब्स्टीटयूट बनाया हुआ है। हम धन दे पाते हैं तो प्रेम है! हम धन नहीं दे पाते हैं तो मुश्किल हो जाता है। कहीं न कहीं धन प्रेम की जगह सब्स्टीटयूट, परिपूरक बन गया है। लेकिन प्रेम का परिपूरक धन कैसे बन सकता है? प्रेम तो एक आनंद है और धन तो सिर्फ एक बोझ है। और प्रेम तो एक मुक्ति है और धन तो सिर्फ एक भाव है। धन एक उपयोगिता हो सकती है, लेकिन प्रेम उपयोगिता नहीं, प्रेम तो एक खेल है। प्रेम की कोई युटिलिटी नहीं है। प्रेम का कोई उपयोग नहीं है, प्रेम तो एक निपट सहज आनंद है। और धन? धन एक उपयोगिता है। चाहे कितना ही धन इकट्ठा कर लें, वह जो प्रेम की कमी रह गई है भीतर, वह पूरी नहीं हो गई है। एक बच्चा कितना ही पेट भर ले, उसका पेट फूल जाए, शरीर छोटा हो जाए, और पेट बड़ा हो जाए, तो भी जो प्रेम छूट गया, नहीं मिल पाया, वह इस बड़े पेट से नहीं मिल जाने वाला है। धनी आदमी लोहे के बड़े पेट बनाकर बड़ा हो गया है, क्योंकि चमड़े के पेट में कितना भरा जा सकता है। इसलिए वे तिजोड़ियां बनाए हैं। वे लोहे के पेट हैं, जिनको मजबूती से भरा जा सकता है और जिनको तोड़ा भी नहीं जा सकता है। हमारी तिजोड़ियां हमारे पेट की शक्लों में ही बनी हैं। उनमें हम भोजन को इकट्ठा कर रहे हैं। इकट्ठा कर रहे हैं और रोज हम उसका हिसाब लगाए चले जा रहे हैं।
प्रेम का झरना था। टूट गई धार तो धन संग्रह बन गया है। हजार-हजार तरकीब से हम आदमी को जहां-जहां सप्रेश किए हैं, जहां-जहां दमन किए हैं, वहां-वहां आदमी कुछ गलत रास्ते चला गया, कुछ और हो गया, जो होने की उसकी नियति, उसकी डेस्टनि नहीं थी। लेकिन वह हमें ख्याल में नहीं है। हमने अब तक मनुष्य की पूरी जिंदगी सप्रेशन और दमन के आधार पर ही खड़ी करने की कोशिश की है। हमने जो आदमी बनाया है, वह हमने आदमी बनाया है, दबा दबा के बनाया है। वह ऐसा ही है जैसे किसी बीज के चारों तरफ हमने लोहे की जाली बिठा दी हो, या किसी पौधे को सब तरफ से बांध दिया हो। ऐसा हमने आदमी को खड़ा कर दिया है। तो आदमी जैसा हमें दिखाई पड़ता है, यह आदमी की नियति नहीं है, यह रुग्ण आदमी है, यह बीमार आदमी है। यह हजारों साल की संस्कृति का व्हिकटिम, शिकार, आदमी है। इस आदमी को आदमी मत समझ लेना, सिर्फ आदमी की शक्ल है। फेंटम है, प्रेत है आदमी का, यह आदमी नहीं है। आदमी कुछ और ही हो सकता था।
और इस पृथ्वी पर जहां साधारण सी झाड़ियों में फूल खिलते हैं, और जहां साधारण से पक्षी गीत गाते हैं आनंद के, और जहां साधारण से पशु भी एक सहज जीवन जीते हैं, वहां आदमी कितने आनंद के फूलों को और कितनी आनंद की सुगंधों को जन्म दे सकता था और कितना संगीत पैदा हो सकता था, उसकी तो कल्पना करनी कठिन है। लेकिन आदमी कुछ भी नहीं कर पाया, आदमी खो गया है। और रोग ही पैदा कर रहा है। सिर्फ रुग्णता ही हमने पैदा की है। और उस रोग का नाम हमने रखा है सभ्यता, और इस रोग का नाम हमने रखा है संस्कृति! तब फिर रोग से मुक्त होना भी मुश्किल हो जाता है।
मैं कुछ और दो चार बातें करना चाहूंगा, ताकि दिखाई पड़ सके कि चट्टान
ने हमारे झरने को कहां कैसा रूप दे दिया है। जब तक हम चट्टान नहीं हटा देते, तब तक किसी भी आदमी की जिंदगी में क्रांति नहीं हो सकती। ऐसा मालूम पड़ता है कि कोई भी आदमी अपने सुख में उतना उत्सुक नहीं है, जितना दूसरे को सुखी न होने देने में उत्सुक है। अगर हम आदमी के भीतर झांक कर देखें तो

आदमी के भीतर ऐसा नहीं मिलेगा कि वह अपने सुख की तलाश में है। वह इस तलाश में है कि कोई और सुखी न हो जाए।
मैं एक मकान में ठहरा था। उस मकान के मालिक बड़ी तारीफ करते थे उस मकान की। उन्होंने बनाया था, तबसे उसके ही गीत गाते रहते थे, सुबह से शाम तक उसकी ही बातें करते थे। जब मैं वहां गया तो कभी वह स्वीमिंग पूल दिखाते थे; कभी यह दिखाते थे, कभी वह दिखाते थे। दो साल बाद जब मैं वहां गया तो उन्होंने मकान की कोई भी बात न की, मकान वही था। मैंने पूछा कि क्या हो गया? आप मकान की बात नहीं करते हैं? उन्होंने कहा, आपने देखा नहीं? रात में आए इसलिए देखा नहीं, सुबह देखिएगा। बड़ी गड़बड़ हो गई। मैंने कहा, फिर भी क्या हो गया? मकान को नुकसान पहुंचा है? मकान वैसा ही दिखता है, बल्कि पौधे अब बड़े हो गए हैं, जो आपने लगाए थे। और पौधों में फूल आने लगे हैं, बगीचा हरा हो गया है, घास हरी हो गई है, लान तैयार हो गया है। तो उन्होंने कहा, वह सब ठीक है, उससे कोई ज्यादा मतलब नहीं। सुबह आप देखना। सुबह मैंने देखा तो पता चला, बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया है। उन्होंने कहा, यह मकान जब से बना है, मेरे मकान की खुशी खो गई है। मैंने उनसे पूछा, तब फिर आपको अपने मकान की खुशी न थी। बगल में जो छोटे-छोटे झोपड़े थे, उनको देखकर खुशी आती रही होगी। क्योंकि बगल में बड़े मकान को देखकर दुख आ गया।
ध्यान रहे, धनी आदमी अपने धन में उतना खुश नहीं है, जितना पड़ोसी की गरीबी में खुश है। और ध्यान रहे, आदमी अपने बड़े मकान में प्रसन्न नहीं है, पड़ोसी की झोपड़ियों के कारण प्रसन्न है। और बड़े मकान खड़े हो जाएं, तो उसका मकान वहीं पर है, लेकिन एकदम छोटा हो गया है, एकदम कहीं कोई बात खो गई है, वह कहीं कुछ नष्ट हो गया है। हम सारे के सारे लोग अपने सुख में उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने दूसरा सुखी न हो जाए इसमें हैं! यहां तक भी कि चाहे हमें दुखी होना पड़े, लेकिन हम दूसरे को सुखी न होने देंगे। जरूर कहीं कोई भूल हो गई है। यह बड़ी रुग्ण चित दशा है, यह तो बहुत डिसीज्ड माइंड है। जो दूसरे को सुखी न देख ले, इसमें उत्सुक है! सहज आदमी अगर होगा तो अपने सुख में उत्सुक होगा।
और ध्यान रहे, जो आदमी अपने सुख में उत्सुक होगा, वह कभी भी दूसरे के दुख की चेष्टा नहीं कर सकता। जो आदमी अपने सुख में सुखी होगा, वह सबके सुख में सुखी होगा, क्योंकि सुख के बीच ही मेरे सुख का फूल खिल सकता है। अगर सभी सुखी हों तो मेरे सुख के फूल खिलने की कोई संभावना नहीं है। जो आदमी अपना सुख चाहेगा, वह सबका सुख चाहेगा। और जो आदमी दूसरे को दुखी देखना चाहता है, किसी न किसी अर्थों में वह अपने को भी दुखी देखना चाहता है, अन्यथा वह दूसरे को दुखी न देखना चाहेगा। यह असंभव है कि पूरा गांव बीमार हो जाए और मैं स्वस्थ रह सकूं। यह कि पूरे गांव में रोग के कीटाणु फैल जाएं और मैं अकेला स्वस्थ रह सकूं--यह कैसे संभव है? हवाएं वे कीटाणु मुझ तक भी ले आएंगी और मैं भी दुखी हो सकूंगा। चाहे मैं कितना ही बड़ा परकोटा उठाऊं और लोहे की दीवालें बनाऊं, या तो मैं कब्र में बंद हो जाऊंगा, जिंदा ही मर जाऊंगा, बाहर न निकल सकूंगा। तब स्वस्थ रह सकता हूं, मर जाऊं तो, और या अगर मैं जिंदा रहा और बाहर निकला और दरवाजे खोले तो उन दरवाजों से रोग के कीटाणु भीतर आ जाएंगे, क्योंकि पूरा गांव बीमार है। अगर मुझे स्वस्थ रहना है और मैं अपने स्वास्थ्य में उत्सुक हूं, तो जाने अनजाने मुझे सबके स्वास्थ्य में उत्सुकता दिखानी चाहिए।
यह जितना शरीर के तल पर सही है, मन के तल पर और भी ज्यादा सही है। अगर पूरा गांव उदास है तो आप मुस्कुरा नहीं सकते, और अगर मुस्कुराएंगे तो आपकी मुस्कुराहट व्यंग मालूम होगी। अगर पूरा गांव उदास है तो आप कैसे मुस्कुरा सकते हैं? उदासी के भी कीटाणु हैं, जो और गहरे भीतर प्रवेश कर जाते हैं। और अगर पूरा गांव दुखी है तो आप कैसे सुखी रह सकते हैं। लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम दूसरे को सुखी नहीं देखना चाहते हैं। इसका अंतिम मतलब यही हो सकता है कि हम स्वीसाइडल हैं। हम अपने को ही सुखी देखने को तैयार नहीं हैं। और हमने यह तरकीब खोजी है कि सारे लोग दुखी हो जाएं, तभी हम सुखी हो सकेंगे! सारे लोगों के दुखी होने पर मैं कैसे सुखी हो सकता हूं? सारे लोगों के दुखी होने पर मैं सिर्फ और गहरे दुख में गिर जाऊंगा। लेकिन, तब एक

सांत्वना रहेगी कि मैं अकेला ही दुखी नहीं हूं, सारे लोग दुखी हैं। मैं कोई अकेला ही परेशान नहीं हूं, सारे लोग भी परेशान हैं। बस इतना एक कंशोलेशन हो सकता है, इतनी सांत्वना हो सकती है।
स्वस्थ मनुष्य अपने सुख की आकांक्षा करेगा। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि स्वस्थ मनुष्य बड़ा स्वार्थी होगा। लेकिन स्वार्थ ही परार्थ की बुनियाद है। और यह ध्यान में रखना कि स्वार्थ और परार्थ विरोधी चीजें नहीं हैं, जैसा कि धर्म गुरु समझाते हैं। असल में जो अभी स्वार्थी भी नहीं हो पाया है, उसके परार्थी होने का तो कोई सवाल ही नहीं है। और जिस आदमी ने अभी स्वयं का हित भी समझा नहीं है। और वह दूसरे के हित की तरफ तो एक कदम भी नहीं उठा सकता है। लेकिन यहां दो तरह के बीमार लोग हैं जमीन पर--एक वे हैं, जो दूसरे को हानि पहुंचाने में अपना स्वार्थ समझ रहे हैं। और एक वे हैं, जो दूसरे को लाभ पहुंचाने की चेष्टा में लगे हैं और उन्होंने अभी अपने को भी लाभ पहुंचाया नहीं है। जिसने अभी अपने को भी लाभ नहीं पहुंचाया है, वह किसी को लाभ नहीं पहुंचा सकता है। अगर दूसरे का दुख दूर करना हो तो पहली शर्त है कि अपने दुख से मुक्त हो जाना। क्योंकि जिसके पास आनंद है, वह आनंद बांट सकता है, जिसके पास दुख है, वह दुख ही बांटता है। वह चाहे बातें कुछ भी करे, वह चाहे अपने दुख के पैकेट के ऊपर सुख के नाम लिखे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन वह दुख ही बांटता है वह चाहे बातें कुछ भी करे, वह चाहे अपने दुख के पैकेट के ऊपर सुख के नाम लिखे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन वह दुख ही बांटता है। हो सकता है, वह आपके पास सुख देने ही आए, लेकिन घड़ी भर बाद आप पाएंगे कि अब यह जाए तो बहुत अच्छा है। उसने दुख देना शुरू कर दिया है। वह चाहे जाने भी न, लेकिन दुख ही पहुंचाएगा।
स्वस्थ व्यक्ति स्वार्थी होगा, यह बात बड़ी अजीब सी लगेगी, क्योंकि हमें तो निरंतर सिखाया गया है स्वार्थी कभी मत होना। स्वार्थ बड़ी बुरी चीज है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, कि स्वस्थ आदमी स्वार्थी होगा ही, यह बिल्कुल सहज बात है।
लेकिन स्वार्थ का अर्थ समझा है कभी?
उसमें दो शब्द हैं, स्व और अर्थ--स्वयं के लिए जो अर्थपूर्ण है। और जो व्यक्ति अभी स्वयं के लिए भी अर्थपूर्ण जीवन नहीं बना सका है, यह किसी के लिए अर्थपूर्ण हो सकता है, यह असंभव है। यह दिया जहां जल जाए मेरे भीतर प्रकाश का, तो मेरे मकान की खिड़कियों से रोशनी दूसरों के घरों तक भी जा सकती है। लेकिन मेरे घर का ही दिया बुझा हो तो यह रोशनी किसी के घर तक नहीं जा सकती है। और जिनके अपने घर का दिया बुझा है, वे दूसरों के घरों में दिया जलाने पहुंच गए हैं। बहुत संभावना यह है कि उनके शोरगुल में, उपद्रव में दूसरों के घर के थोड़े बहुत जले हुए दिए भी बुझ जाएं। जिनके अभी अपने घर अंधेरे हैं, वे किसके घर के दिए जला सकते हैं?
लेकिन यह आदमी को कौन सी बीमारी पकड़ गई है कि वह दूसरे को दुखी देखने में बड़ा उत्सुक है? इसको उसने बड़े अच्छे-अच्छे नाम दिए हैं और उन नामों में बात को छिपा दिया है। अगर एक आदमी अपने कपड़े छोड़कर सड़क पर नंगा खड़ा हो जाए तो कई लोग उसके पैर पकड़ने पहुंच जाएंगे। यह दुख की पूजा हो रही है। इसको हम कहेंगे, त्याग, तपश्चर्या, यह आदमी बड़ी तपस्वी है, इसलिए हम इसकी पूजा कर रहे हैं। एक आदमी अगर अपने को अपने हाथ से दुख में डाले तो उसकी इज्जत बढ़ती चली जाएगी। अगर एक आदमी अपने हाथ से अपने को परेशानी में डाल ले--अभी मैं एक गांव से गुजरता था तो एक आदमी काशी की तरफ जा रहा है, वह जमीन पर लेटकर यात्रा कर रहा है। वह जमीन पर सरक सरक कर काशी जा रहा है। उसके सब घुटने छिल गए हैं, उसके हाथ छिल गए हैं, लहू बह रहा है और सैकड़ों लोग उसकी पूजा करते हुए उसके साथ जा रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि तुम सब अपराधी हो, इस आदमी को तुम्हीं इस जमीन में घसिटवा रहे हो। क्योंकि तुम जो आदर दे रहे हो, उस आदर से उसको खून अब बेमानी मालूम पड़ रहा है, बल्कि खून बड़ा सार्थक मालूम पड़ रहा है। उसके हाथ पैर छिल गए हैं, कट गए हैं, लेकिन वह सरकता जा रहा है। यह तुम आदर दे रहे हो। तुम जो आदर दे रहे हो, इसमें बड़ी हिंसा है। तुम इस आदमी को दुखी देखकर इतने प्रसन्न क्यों हो गए हो? नहीं, उन्होंने

कहा, यह आदमी दुखी नहीं है। यह आदमी तपश्चर्या कर रहा। तप का मतलब है, स्वयं वरण किया हुआ दुख।
ऐसे ही दुख काफी है। बिना वरण किए दुनिया में दुख काफी है। अब और किसी
को वरण करने की जरूरत नहीं है। दुनिया वैसे ही तप में जी रही है। एक आदमी तपश्चर्या में पड़ा हुआ है। वह जो दूकान पर बैठता है, वह भी तपश्चर्या में है। वह जो दफ्तर में बैठा है, वह भी तपश्चर्या में है। और वे जो लोग दिल्ली में इकट्ठे हो गए हैं, उनकी तपश्चर्या का कोई अंत है? उनके दुख की कोई सीमा है? अब अलग से किसी को तपश्चर्या करने की जरूरत नहीं है। आदमी वैसे ही बहुत दुखी है।
लेकिन हम कहते हैं, और स्वेच्छा से दुख वरण करो! अगर जमीन ठीक हो तो उस
पर मत बैठो, दो चार कांटे और रखो, तब बैठो! तब फिर दस पच्चीस लोग आदर करने आ जाएंगे। जब तक दुनिया में दुख का आदर करने वाले लोग हैं, तब तक आदमी सुखी नहीं हो सकता है। सुख का आदर सीखना पड़ेगा, लेकिन सुख का हमारे मन में कहीं कोई विरोध हो गया है! कहीं धारा बदल गई है। सारे जगत में सारा जीवन सुख की तलाश में है, सिर्फ आदमी दूसरे को दुखी करने की तलाश में है। यह हमारे झरने की धारा कहां टूट गई है, कहां क्या बात आ गई है?
बचपन से ही हम किसी को सुखी नहीं देखना चाहते हैं। एक छोटा बच्चा है, उसे भी हम सब तरह से दुखी देखना चाहते हैं। अगर एक छोटा बच्चा चंचल है, तो दौड़ता है, भागता है, उछल-कूद करता है। तो घर भर परेशान हो जाएगा, मां-बाप परेशान हो जाएंगे। असल में जिंदगी तो सदा उछल-कूद करती है, चंचल होती है, भागती है, दौड़ती है। लेकिन मां-बाप एक छोटे बच्चे के साथ यह अपेक्षा करते हैं कि वह बूढ़े की तरह शिथिल होकर एक कोने में बैठ जाए। और कभी गोबर-गणेश बच्चा घर में पैदा हो जाए तो मां-बाप कहते हैं, बड़ा आज्ञाकारी है! अगर बिल्कुल गोबर की मूर्ति पैदा हो जाए तो फिर कहना ही क्या है। वह परम आज्ञाकारी है, मां-बाप उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। उनके चित्त को बड़ी राहत मिलती है--अगर मुर्दा बच्चा पैदा हो जाए, मरा हुआ बच्चा पैदा हो जाए। अगर जिंदा बच्चा पैदा हो तो मां-बाप उसके हाथ पैर काटने में लग जाते हैं, समाज उसके हाथ-पैर काटने में लग जाता है। असहाय बच्चे को सब तरफ से काट दिया जाता है! उसकी जिंदगी में जो प्रफुल्लता है, वह सब तरफ से छीन ली जाती है। हमने तरकीबें बहुत अच्छी निकाली हैं। हमारी तरकीबें ऐसी हैं कि बच्चे उनके खिलाफ बात भी नहीं कर सकते। हम कहते हैं, हम पच्चीस साल शिक्षा देंगे। पच्चीस साल तक बच्चा शिक्षित हो रहा है। पच्चीस साल की शिक्षा में उसे कुछ भी मूल्यवान सिखाया नहीं जा रहा है--कुछ भी मूल्यवान, जिससे जीवन की दिशा में गति हो। पच्चीस साल की शिक्षा में उसे ज्यादा से ज्यादा रोटी पैदा करना सिखाया जा रहा है। और रोटी? और रोटी अशिक्षित भी सदा पैदा करते रहे हैं। और रोटी पशु भी अपनी खोज लेते हैं और पक्षी भी अपनी खोज लेते हैं। अगर शिक्षा सिर्फ रोटी पैदा करना सिखा पाती है तो वैसी शिक्षा का बड़ा अर्थ नहीं मालूम होता है। लेकिन पच्चीस साल के कारागृह बनाए हुए हैं हमने। उनका नाम विश्वविद्यालय और विद्यालय और सब नाम हमने रखे हैं! बड़े अच्छे नाम रखे हैं, और उन कारागृहों में हम बच्चों को भर देते हैं।
कभी आपने किसी प्राइमरी स्कूल के पास जाकर खड़े होकर देखा है, जहां आपका बच्चा बंद है? लेकिन आप कभी नहीं गए होंगे, क्योंकि आप बड़े प्रसन्न हैं कि उपद्रव स्कूल में चला गया। स्कूल जो है वह मां-बाप के लिए छुटकारा है। रविवार का दिन उनके लिए परेशानी है, क्योंकि जिंदगी घर में आ जाती है। स्कूल में जिंदगी को उन्होंने भेज दिया है। घर उन्होंने सुविधापूर्ण कर लिया है। न कोई सोफे बिगाड़ता है, न कोई फोटो को तोड़ता है, न कोई कांच फोड़ता है, न कोई आइना गिराता है। आइना बच जाए, चाहे बच्चे की आत्मा टूट जाए। आइना बहुत कीमती है। अच्छा हो घर में ऐसी चीजें मत रखें, जिनके टूटने का डर है। लेकिन बच्चों को चीजें पटकने दें, उन्हें खेलने दें उन्हें, तोड़ने दें। उनकी खुशी मत छीन लें। नहीं तो जिंदगी भर वे दूसरों की खुशियां छीनते रहेंगे, फिर पता नहीं चलेगा कि ये दूसरों की खुशी छीनने में इतने उत्सुक क्यों हैं? जिनकी खुशी छीनी गई है, वे सबकी खुशी छीनने में उत्सुक हो जाते हैं! कभी स्कूल के पास खड़े होकर जाकर देखें। बच्चे स्कूल से निकलते हैं तो

ऐसा कूदते हुए निकलते हैं, जैसे कारागृह के बाहर निकल गए हैं। बस्ते उछाल रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। छुट्टी हो गई है तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जिंदगी आ गई है। पांच-छहः घण्टे छोटे-छोटे निरीह बच्चों को जेल की दीवालों में बंद किए हुए हैं।
कुछ दिन पहले तो... अब तो जरा कुछ फर्क पड़ा है। जेल की दीवालों में रंग बदल गया है। पहले बिल्कुल एक ही रंग था--लाल दीवाल जेल की थी और लाल दीवाल स्कूल की भी थी। अभी थोड़ा फर्क पड़ा है। लेकिन कोई दीवाल का रंग बदल देने से दीवाल नहीं बदल जाती है और दीवाल लाल हो, पीली हो कि सफेद हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीवाल दीवाल है। और वहां हम जिंदगी की सारी खुशी उससे छीन रहे हैं, उसको दबाकर ढाल रहे हैं एक ढांचे में। उसके भीतर जो झरना है, उसे तोड़ रहे हैं और जगह-जगह पत्थर रख रहे हैं। छोटी छोटी बातों में हम उसकी खुशी छीन रहे हैं। अगर यह खुशी सारे बच्चों से छीन ली जाए--सबसे छीन ली गई है, कल हमसे छीनी गई थी, आज किसी और से छीन लें; और जिनसे हम छीन रहे हैं, कल वे अपने बच्चों से छीनेंगे। सैकड़ों वर्षों से यह हो रहा कि बचपन में हम खुशी छीन लेते हैं और फिर जिंदगी भर वह आदमी दूसरों से खुशी छीनने में समय व्यय कर देता है। एक बड़ा भयंकर संक्रामक रोग है।
क्या सिखा रहे हैं हम? स्कूल में, विद्यालय में खुशी सिखा रहे हैं?
वहां हम उदास चेहरे पैदा कर रहे हैं। गंभीर चेहरे पैदा कर रहे हैं। वहां से हम आदमी निकाल रहे हैं, जो गंभीर हैं, उदास हैं, सीरियस हैं, जिनकी जिंदगी एक खेल नहीं है, जिंदगी जिनके लिए एक बोझ हो गई है। तो देखें, युनिवर्सिटी का कंवोकेशन होता हो, दीक्षांत समारोह होता हो, तो वहां देखें, काले चोगे पहने हुए वाइसचांसलर और रेक्टर और डीन भूत-प्रेत बने हुए खड़े हैं। ये मरघट पर पहनने के कपड़े वहां किसलिए पहने हुए हैं? वहां बड़ी गंभीरता का वातावरण पैदा किया जा रहा है। बहुत सीरियस, बहुत गंभीर काम हो रहा है। वहां देखें, उप-कुलपतियों, वाइस-चांसलरों, अध्यापकों के चेहरे देखें, वे पत्थर की मूर्तियां बने हुए हैं। वे कोई बहुत भारी काम कर रहे हैं। और यह काम कुल इतना कर रहे हैं कि वह जो जिंदगी की चंचलता है, वह जो प्रफुल्लता है, वह जिंदगी का जो प्रवाह है, उसको सब तरफ से रोक रहे हैं। हां, उसको वे दिशाएं दे रहे हैं। वे नदी को नहर बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं। नहर में भी पानी तो बहता है लेकिन कभी नहर देखी, और नदी देखी? नहर और नदी में एक बुनियादी फर्क पड़ जाता है। नदी में तो एक जिंदगी होती है अपनी, और नहर में अपनी कोई जिंदगी नहीं होती है। एक बहाव होता है और इंजीनियर उसे जहां चाहता है, ले जाता है।
हम सब आदमियों को नदी नहीं बनने देना चाहते हैं, नहर बनाते हैं। हमारी सारी शिक्षा आदमी की नदी को नहर बनाने का उपाय है। नहर में वह खुशी नहीं हो सकती। हम सारी खुशी छीन लेते हैं। बचपन से सारी व्यवस्था ऐसी है कि बच्चा किसी चीज में आनंदित न हो पाए। और आप कहेंगे, बड़ी अजीब बात है, आप कहते हैं, क्योंकि मां-बाप तो यही चाहते हैं कि बच्चा आनंदित हो। लेकिन मां-बाप चाहते हैं कि बच्चा हमारे ढंग से आनंदित हो। मां-बाप के ढंग से बच्चा कैसे आनंदित हो सकता है? यह दुख थोपने की तरकीब है। यह बड़ी डिसेप्टिव बात है। मां-बाप भी कहते हैं, हम चाहते हैं कि बच्चा आनंदित हो। हमारा बच्चा आनंदित हो, यह हम न चाहेंगे? लेकिन हमारे ढंग से आनंदित हो। एक बूढ़े आदमी के ढंग से एक बच्चा आनंदित हो।
थोड़ा उल्टा करके देखें कि सारे बच्चों के हाथ में ताकत चली जाए और बूढ़े से कहे कि हमारे ढंग से आनंदित हों। तब आपको पता चलेगा कि बच्चों के ढंग से बूढ़ों को आनंदित होने में कितनी तकलीफ बढ़ जाती है। तब बच्चे कहेंगे कूदो, छलांग लगाओ, उचको, चीजें फोड़ो, दौड़ो, झाड़ों पर चढ़ जाओ। तब बूढ़ों को पता चलेगा कि यह आनंदित होना हमें पसंद नहीं है। यह कोई आनंद हुआ, यह तो पागलपन है।
लेकिन अब तक बच्चों और बूढ़ों के बीच संवाद नहीं हो सका। अब तक बूढ़े और बच्चे एक दूसरे को समझ नहीं पाए। लेकिन इससे बूढ़ों को कोई खास नुकसान ऊपर से नहीं दिखाई पड़ता, भीतर से तो हो ही जाता है। क्योंकि जो आदमी आज बूढ़ा है, कल वह बच्चा था और अगर बचपन में ही रुग्ण हो गया है, तो बुढ़ापा उसका कभी भी

सुंदर और स्वस्थ नहीं हो सकता है। वह रोग ले जाएगा बुढ़ापे तक। इसलिए कोई बूढ़ा आदमी भी शांत और आनंदित नहीं दिखाई पड़ता। बचपन में ही जड़ काट दी गई है, आनंदित होने की जड़ तोड़ दी गई है।
इसलिए हमारे साधु-संत हैं, उनके पास जाएं, वहां बड़ी गंभीरता है, वहां जाने से ही आपको भी गंभीर हो जाना पड़ेगा। साधु-संतों के पास हंस नहीं सकते हैं। वहां हंसेंगे तो एक तरह की प्रोफेनिटी मालूम होगी, एक तरह की अपवित्रता मालूम होगी। वहां गंभीर होकर बैठ जाना पड़ता है। वहां भी हमने मरघट की हवा बना रखी है, वहां भी जिंदगी की खबरें नहीं हैं।
तीन फकीर हुए हैं चीन में। उनका कोई नाम पता नहीं है। क्योंकि कभी उन्होंने अपना नाम नहीं बताया। बल्कि जब लोगों ने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है? तो वे तीनों जोर से हंसने लगते थे कि धीरे-धीरे लोग उनको थ्री लाफिंग सेंट कहने लगे, तीन हंसते हुए फकीर कहने लगे। यही उनका नाम हो गया। और जब भी कोई उनसे पूछता कि तुम्हारा नाम क्या है? तो वे कहते हैं, हमें खुद ही पता नहीं है।
और हमें बड़ी हंसी आती है कि तुम्हारा नाम है। इस पर हमें बड़ी हंसी आती है। क्योंकि नाम तो किसी का नहीं है। नाम तो दिया हुआ है, बचपन में हम सब बिना नाम के आते हैं और बिना नाम के विदा हो जाते हैं।
तो तीनों हंसते कि हम बड़े हैरान हैं, हमारा तो कोई नाम नहीं है, लेकिन सारी दुनिया में सबका नाम है, हम इससे हैरान हैं। वे तीनों हंसते, वे गांवों में जाते, लोग उनसे कहते कि कुछ उपदेश दो तो वे कहते कि उपदेश में कहीं न कहीं कुछ मरा हुआ पन है। उपदेश कहीं न कहीं डैडनेस लिए हुए है। उपदेश में कहीं न कहीं बोझिलता है। तो वे कहते, हम तो हंसना जानते हैं और कुछ भी नहीं जानते। वे गांव के चौरस्ते पर खड़े हो जाते और हंसना शुरू कर देते। फिर हंसना संक्रामक होता, फिर गांव के लोग आ जाते, और वे भी उन तीनों को हंसते देखकर, कोई उनमें से भी हंसने लगता, फिर हंसी फैलने लगती। फिर ऐसा होता, दो चार दिन वे उस गांव में रह जाते, तो सारे गांव में हंसी के फूल ही फूल खिल जाते।
फिर एक गांव में उनमें से एक मर गया। तो गांव के लोगों ने कहा, अब तो दो जरूर उदास हो गए होंगे। वे गए वहां, लेकिन वे दोनों उस मरे हुए के हाथ और पैर पकड़कर उसे झुला रहे थे और हंस रहे थे। उन्होंने कहा, पागलो, यह क्या कर रहे हो? तुम यह क्या कर रहे हो? वह मर गया है और हमने सुना है, तुम हंस रहे हो? तो उन दोनों ने कहा, जो जिंदगी भर हंसा हो, उसकी मृत्यु भी एक हंसी हो जाती है।
असल में जो जिंदगी भर रोया हो, उसकी मृत्यु भी रुदन हो जाती है।
मृत्यु तो अंतिम परिपूर्णता है। हम जो जिंदगी भर रहे हैं, वही हो जाता है।
अगर मृत्यु बहुत बुरी मालूम पड़ रही है, अंधेरी, तो उसका कारण यही नहीं है कि मृत्यु अंधेरी है। उसका कारण है हम बचपन से ही अंधेरे में जी रहे हैं।
हमारी सारी जिंदगी अंधेरी है। इसलिए अंतिम फल भी अंधेरा मालूम पड़ रहा है। उन दोनों ने कहा, हम बड़े खुश हैं और हम इसको हिला रहे हैं इसलिए, कि हम
यह कह रहे हैं कि तू हमें धोखा दे गया है। और हमने यह तय किया था कि पहले हम जाएंगे और यह आदमी पहले चला गया। अगर यह रात हमको बता देता तो हम पहले चले गए होते। लेकिन इसने बताया नहीं, यह चुपचाप चला गया। लोगों ने कहा, फिर भी यह आदमी मर गया है, इतनी हंसी-खुशी मत मनाओ। यह बड़ी बुरी बात मालूम पड़ती है। चुप रहो, अगर रोओ मत तो कम से कम चुप तो रहो। तो उन दोनों ने कहा, ध्यान रहे, चुप होने जैसी कोई चीज नहीं है। या तो आदमी रोता है या हंसता है। दोनों के बीच कोई जगह ही नहीं है।
और सच में ही दोनों के बीच में कोई जगह नहीं है। या तो आप हंसते हैं या रोते हैं। बीच में कोई जगह रहती नहीं है। या तो आप आनंदित होते हैं या दुखी होते हैं। दोनों के बीच में कोई जगह नहीं होती। और अगर आप आनंदित नहीं हैं तो जानना कि दुखी हैं और अगर आप नहीं हंस पाते हैं तो जानना कि भीतर आंसू बोझिल हो गए हैं, भारी हो गए हैं।
फिर उसकी लाश लेकर वे चले। सारा गांव तो उदास है, लेकिन वे दोनों हंस रहे हैं। फिर वे मरघट पर पहुंचे। फिर उन्होंने चिता जलाई। तो जब गांव के

लोगों ने कहा कि कपड़े बदलने हैं कि तुम्हारे साथी के, क्योंकि हमारे गांव का रिवाज है। उन्होंने कहा कि नहीं, वह हमसे कह गया है कपड़े मत बदलना। कपड़े बदलना ही मत, क्योंकि मैं ही कपड़े बदले ले रहा हूं, तब और कपड़े क्या बदलना है। तो ऐसे ही मुझे चढ़ा देना। तो उसकी शर्त तो माननी पड़ेगी। तो उसे ऐसे ही चढ़ा दिया गया मरघट पर, आग लगा दी है। और फिर धीरे-धीरे हंसी फैलनी शुरू हुई, क्योंकि वह आदमी अपने कपड़ों के भीतर फुलझड़ी फटाके रखकर मर गया था। जब वे फुलझड़ियां छूटने लगी हैं और फटाके फूटने लगे हैं और धीरे-धीरे सारा गांव हंसने लगा है सारा गांव कहता है कि अजीब आदमी है। मर गया, फिर भी हमें हंसा गया है, हालांकि भीतर से रोने का मन होता है, लेकिन उसकी चिता से छूटती हुई फुलझड़ियां। कैसा आदमी था, मौत पर भी हंस गया है और मौत पर भी व्यंग कर गया है।
जो आदमी जिंदगी भर हंसता है, उसके लिए मौत भी एक हंसी हो जाती है। क्योंकि हम तो जिंदगी भर रोते हैं। हमारी तो रोने में दीक्षा है। हमारा तो इनीसिएशन किया जाता है रोने में, और बचपन से हम एक-एक बच्चे को रोने के लिए तैयार करते हैं, हंसने के लिए तैयार नहीं करते हैं। हम सब तरफ से उसकी हंसी के झरने को रोक देते हैं। हम सब तरफ से उसकी हंसी रोक देते हैं। तब फिर अगर वह दूसरों को भी दुखी करने में लग जाता हो तो आश्चर्य नहीं है। हमारी यह जो पूरी मनुष्यता सूली पर लटक गई है, उसमें एक कारण यह भी है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि हम क्या-क्या करते हैं। और कौन सी छोटी चीज आगे जाकर क्या परिणाम ले आएगी।
अब एक मां है, उसका बच्चा दूध पी रहा है, वह उसको जल्दी दूध से छुड़ा देती है, जल्दी चाहती है कि वह उसका दूध पीना बंद कर दे। वह बंद करवा दे सकती है, क्योंकि मां के हाथ में है। और पश्चिम की माताओं ने तो करीब-करीब बंद कर दिया है। और शायद आने वाले सौ पचास वर्षों में दुनिया की कोई मां अपने बच्चे को दूध पिलाने को राजी नहीं होगी। लेकिन क्या आपको पता है, यह जो बच्चे को दूध पीने से राहत, जो शांति उसके होठों को, जो आनंद, जो स्पर्श का सुख मिलता था, अगर वह छिन गया, अगर वह धारा रुक गई तो यह नई धाराएं पकड़ेंगी। सारी दुनिया सिगरेट पी रही है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि वह जो ओठों को सुख नहीं मिल पाया है, उसका सब्स्टीट्यूट खोजा जा रहा है। और जिस समाज में मां बच्चों को दूध पिलाना बंद कर देगी, उस समाज में सिगरेट का पीना बढ़ता चला जाएगा। अगर सारी माताएं बंद कर देंगी तो हम ओंठ से कुछ और उपाय करेंगे। लेकिन सिगरेट वह सुख कभी भी नहीं दे सकती है, जो मां के स्तन से बच्चे को मिल सकता था। इसलिए कितनी ही सिगरेट पियो, दिन में साठ पियो कि सौ पियो, कुछ फल नहीं होता है, सिर्फ ओंठ जलकर रह जाते हैं। जल जाते हैं, और कुछ भी नहीं होता है। कोई सब्स्टीट्यूट वह नहीं दे सकता जो मिल सकता था मूल से। अगर मूल की जगह कुछ और रख लिया जाए तो वह नहीं मिलने वाला है, जो मिल सकता था।
लेकिन, हम माता और पिता बच्चों को समझाएंगे कि सिगरेट मत पियो, लेकिन
यह न देखेंगे कि सिगरेट पीने की धारा कहां से पैदा की जा रही है। बच्चे को ओंठों से कुछ मिल रहा है। बच्चे की जिंदगी में ओंठ उसका पहला जीवंत हिस्सा है। बच्चे को जिंदगी पहली दफा ओंठ की तरफ से शुरू हुई है और बच्चे को प्रेम की धारा पहली दफा ओंठ की तरफ से आई है। अगर बच्चे के ओंठ अतृप्त रह गए हैं तो वे अपनी तृप्ति की मांग करते रहेंगे। वे जिंदगी भर मांग करते रहेंगे कि ओंठ कहीं कुछ खाली रह गए, उसे भरो। फिर क्या करे? जो जला डालेगा ओंठों को सिगरेट से। लेकिन उससे कोई मां का स्तन, मां का प्रेम मिल जाने वाला नहीं है। और वह कभी समझ भी नहीं पाएगा कि उसके चित्त में यह क्या हो गया है, यह क्या पागलपन हो गया है।
अब छोटे बच्चे हैं, अपने पूरे शरीर से खेलने में आनंदित होते हैं। सच
तो यह है कि अगर हम भी पूरी तरह स्वस्थ होंगे, तो अपने पूरे शरीर से खेलने में आनंदित होंगे। लेकिन हम तो स्वस्थ नहीं हैं। हम कभी जाकर नदी की रेत पर न लेटेंगे, और कभी नदी की रेत पर न नाचेंगे, न कभी पानी में छलांग लगाएंगे, न कभी पानी के फव्वारे उछालेंगे। हम कभी अपने पूरे शरीर के साथ आनंदित न होंगे। हमने अपने पूरे शरीर को इंकार कर दिया है! और शरीर में

हमने कुछ हिस्से चुन लिए हैं, जिनसे हम सिर्फ आनंदित होंगे! लेकिन कभी आपने सोचा कि कोई हिस्से हमने कैसे चुन लिए हैं? क्योंकि शरीर तो इकट्ठा है। उसमें हमने कोई हिस्से कैसे चुन लिए हैं? वह हमें चुनवाए गए हैं। सप्रेशन में, रेप्रेशन में वह चट्टान जो हम पर गिर गई है, उसने हमें चुनवा दिया है।
छोटा बच्चा अपने पूरे शरीर से खेलता है। वह अपनी जननेंद्रिय से भी खेलेगा। लेकिन मां-बाप उसको रोकेंगे कि बंद करो, यह क्या कर रहा है? पहली दफा उसे पता चलेगा कि जननेंद्रिय को छूना कुछ पाप है। बस, उसके शरीर में और जननेंद्रिय में एक फासला हो गया। अब जिंदगी भर यह हिस्सा उसके शरीर का हिस्सा होने वाला नहीं है। और पहली दफा वह कांशस हो गया है कि शरीर में कोई एक ऐसा हिस्सा भी है, जिसको छूना पाप है, देखना पाप है, जिसको छिपाना है, जिसको छूना नहीं है। और वह जिंदगी भर इसी इंद्रिय के आसपास भटकता रहेगा। वह जो छूने की तृप्ति अधूरी रह गई है, और वह जो उसका चित्त चेतन हो गया है, तो सारी दुनिया कामुक हो गई है।
सारी दुनिया सेक्स सेंटर के पास भटक रही है। और भटकाने का कारण गंदी फिल्में नहीं हैं, भटकाने का कारण गंदे उपन्यास नहीं हैं, और भटकाने का कारण गंदे गीत नहीं हैं, और भटकाने का कारण गंदे पोस्टर नहीं हैं। भटकाने का कारण बच्चे के शरीर में दमन की शुरुआत है। बच्चे को हमने सिखा दिया है कि यह हिस्सा मत छूना। बच्चे को कुछ पता नहीं है, उसका पूरा शरीर शरीर है। उसे पता ही नहीं है और पता होने का कोई कारण भी नहीं है।
दुनिया अगर स्वस्थ होती तो हमारा भी पूरा शरीर, हमारा पूरा शरीर होगा। उसका यह हिस्सा अलग और वह हिस्सा अलग नहीं हो जाएगा। लेकिन बच्चे को हम कांशस किए दे रहे हैं, उसको बार-बार झिड़कें दे रहे हैं। उसके शरीर के एक हिस्से के प्रति कंडेम्नेशन और निंदा भरे दे रहे हैं। उसका एक हिस्सा शरीर से अलग हो जाएगा। वह अलग हो गया। जब वह अलग हो जाएगा तो वह जीवन भर उस हिस्से से वापस जुड़ने को तलाश करता रहेगा। वह जिंदगी भर उसी परेशानी में जीएगा! उसके सपने सब कामोत्तेजना से भर जाएंगे। उसकी कहानियां, उसके उपन्यास, उसके गीत, उसकी फिल्में सब उसको सब्स्टीटयूट देने की कोशिश करेंगी कि वह सब्स्टीटयूट है। इससे तुम अपने मन को तृप्त कर लो, लेकिन वह तृप्त न हो पाएगा। वह शिवलिंग भी बनाएगा। और शिविलिंगों की कहानी तो पुरानी पड़ गई, और नये-नये प्रतीक खोजेगा, जिनसे कि वह तृप्ति पाना चाह रहा है, जो उससे छीन ली गई है। यह छीनी गई तृप्ति, यह छीना गया भाव, यह दमन, यह निंदा उसके झरने को तोड़ देगी और गलत रास्तों पर ले जाएगी।
यह बड़े आश्चर्य की बात है, यह बहुत हैरानी की बात है कि हम शरीर के कुछ हिस्सों के प्रति इतने पागल क्यों हो गए हैं? अगर एक मूर्ति बनाई जाती है स्त्री की तो उस मूर्ति में ऐसा नहीं लगता कि स्तन जो बनाए गए हैं, वे कोई मूर्ति के हिस्से हों। ऐसा लगता है कि स्तन बनाने के लिए मूर्ति बनाई गई है। एक चित्र बनाया जाता है स्त्री का तो ऐसा नहीं लगता है कि पूरी स्त्री महत्वपूर्ण है, स्तन ही महत्वपूर्ण हैं! सारी मनुष्यता स्तन के प्रति इतनी आतुर क्यों है?
दो कारण हैं, एक तो बच्चे से स्तन जल्दी छीन लिया गया है। वह उसका पहला परिचय था, वह उससे जल्दी छीन लिया गया है। उसके मन में उसकी आकांक्षा रह गई है, इसलिए पुरुष जीवन भर स्तन के प्रति आतुर है, उत्सुक है, परेशान है। स्त्री क्यों उत्सुक है इतनी? अगर पुरुष से छीन लिया गया है तो स्त्री क्यों उत्सुक है? वह भी उत्सुक है। उससे भी जल्दी छीना गया है, एक। और बहुत जल्दी उसे सचेत कर दिया गया है कि शरीर का यह हिस्सा शरीर का हिस्सा नहीं है, इसे छिपाना है, या दिखाना है! लेकिन इसे स्वीकार नहीं कर लेना है सहज कि यह शरीर का हिस्सा है। शरीर में उसने भी हिस्से काट दिए हैं और तब उसके परिणाम होंगे, दुष्परिणाम होंगे और आदमी रुग्ण होता चला जाएगा, बीमार होता चला जाएगा। और नई-नई मुसीबतें, उनको हल करने के लिए लाई गईं, बीमारी पैदा करती रहेंगी। लेकिन कभी हम बुनियाद में जाकर यह न देखेंगे कि आदमी के झरने पर गिराए गए पत्थर को हटाएं, आदमी को स्वस्थ करें, उसे सरल करें, उसे सहज करें। यह जैसा पैदा हुआ है, उसको हम वैसा बढ़ाने की कोशिश करें और उसकी

जिंदगी में उसका धारा खंड-खंड न हो जाए, अखंड रह सके, इसकी दिशा में कुछ काम करें। अब तक यह नहीं हो सका है, इसलिए आदमी सूली पर लटक गया है, और आगे भी यह नहीं हो सकेगा, अगर हमारी समझ में न आए तो हम पत्थर हटाएंगे नहीं। हम सब पत्थर रखने वाले लोग हैं। हम सब अच्छे लोग, भले लोग पत्थर रखे चले जा रहे हैं। एक-एक आदमी पर पत्थर रखे चले जा रहे हैं।
हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा की व्यवस्था, मां, बाप, मित्र, प्रियजन सब एक नये आए बच्चे पर पत्थर रखने की कोशिश में लगे हैं। सब तरफ से उसे दबा देंगे। कल वह कुरूप, अपंग होकर खड़ा हो जाएगा। फिर उसकी हम निंदा भी करेंगे। फिर हम उसे अपराधी भी ठहराएंगे। फिर कल हम उसे जेलखाने भी भेजेंगे, पागलखाने भी भेजेंगे। कल वह मरीज होकर अस्पताल में भर्ती भी होगा। यह सब चलेगा, यह सब उपाय चलता रहेगा, लेकिन पत्थर को हम न हटाएंगे। पत्थर अपनी जगह है।
बल्कि कुछ लोग हैं जो कहते हैं कि शायद पत्थर ठीक से नहीं रखा जा सका, इसलिए यह सारी गड़बड़ हो गई है। कुछ लोग हैं जो कहते हैं, और जोर से दमन करो। कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, और जोर से पत्थर रख दो, झरनों को प्रगट ही मत होने दो। फिर वहां गंदे डबरे बनेंगे, झरना प्रगट ही नहीं होगा। कुछ लोग तो हैं, जो कहते हैं कि अगर आदमी किसी तरह मार डाला जा सके, उसका सब काट दिया जाए, वह बिल्कुल भूत-प्रेत की तरह रह जाए, छाया की तरह, जिसमें जिंदगी बिल्कुल न हो--ऐसे लोग हमारे चारों तरफ खड़े हैं। उनमें महात्मा हैं, धर्मगुरु हैं। उनमें वे सारे लोग हैं, जिनके चरणों में हम सिर झुकाते हैं। वे सारे लोग हमारी गर्दन को कसने में लगे हुए हैं। वे हमें जिंदा रहने में सहयोगी बनने को नहीं हैं। वे हमें रास्ता बता रहे हैं मोक्ष जाने का। वे हमें जिंदा रहने का रास्ता नहीं बता रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम कैसे जल्दी मरो, और तुम मरकर कैसे वापस जिंदगी में न आ सको, इसका रास्ता हमें बता देते हैं। पहली तो गलती यह कि जिंदगी में आए, अब दुबारा यह गलती मत कर लेना जिंदगी में लौटने की। जिंदगी बड़ा पाप है। यह शरीर बड़ा पाप है, इन सबको हटाओ, इन सबको मिटाओ और मोक्ष की यात्रा करो। आवागमन से मुक्त हो जाओ।
यह जो प्रवृत्ति शेष रह गई--आज तक रही है, आज तक की पूरी मनुष्यता को हमने यही जहर, यही विष उसके खून में डाला है, तो हम जिंदगी को प्रफुल्लता से नहीं भर पाएंगे। नीत्शे कहता था और नीत्शे ठीक कहता था--नीत्शे ने कहा था, धर्मगुरुओं ने मनुष्य का दमन किया, कि वह उसको धार्मिक बना सकेंगे। धार्मिक वे नहीं बना पाए। धर्मगुरुओं ने मनुष्य को जहर पिलाया, ताकि मनुष्य के स्वभाव को नष्ट कर दें और उसको वह बना लें, जो बनाना चाहते हैं। जो मूर्ति ढालना चाहते हैं, ढाल लें। वह मूर्ति नहीं ढल पाई, लेकिन एक बड़ा दुष्परिणाम जरूर हुआ। आदमी को जहर दे दिया था बदलने के लिए, वह बदला तो नहीं, लेकिन जहरीला हो गया, पाजनस हो गया। उसका सब विकृत हो गया, कुरूप हो गया, सब तरफ खराब हो गया।
मैंने कल एक प्रतीक कथा कही थी कि जीसस को सूली लगाई गई तो उनके दोनों तरफ दो चोर भी लटकाए गए थे। मुझे यह ख्याल में बहुत अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है। जिसे हम बुराई कहते हैं और जिसे हम भलाई कहते हैं, वह जिंदगी को दो हिस्सों में तोड़ कर देखी गई तरकीब है। जब तक हम बुराई और भलाई दोनों को एक साथ खड़ा करके दोनों को स्वीकार करके जिंदगी का भवन न बनाएंगे, तब तक एक तरफ बुरा आदमी सूली पर लटक जाएगा, एक तरफ अच्छा आदमी भी सूली पर लटक जाएगा, क्योंकि बुरा आदमी भी आधा है और अच्छा आदमी भी आधा है। पूरा आदमी कोई भी नहीं है। और जब तक पूरा आदमी न हो, तब तक सूली पर लटकना ही पड़ेगा दुख और पीड़ा और चिंता को सूली पर लटकने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है।
लेकिन कुछ चीजों को हमने बुरा करार दे दिया है। अब हम दुबारा सोचने को
भी राजी नहीं हैं कि क्या बुरा है उनमें! क्या बुरा है उनमें, इसे सोचने को हम राजी भी नहीं हैं। हमने शरीर को बुरा करार दे दिया है और हमने मान लिया है हजारों साल में कि शरीर बुरा है। आज हम फिर दुबारा सोचने को तैयार नहीं हैं कि शरीर में क्या बुराई है।
सच तो यह है कि जीवन के सारे आनंद शरीर के द्वारा ही हम तक आते हैं। सूरज की किरण भी शरीर से हम तक आती है। फूल की सुगंध भी शरीर से हम तक आती

है। पक्षियों के गीत भी शरीर से हम तक आते हैं। इस सारे जगत का जो कुछ भी हम तक आता है, वह शरीर से आता है। और ध्यान रहे, हम भी इस जगत तक शरीर से आते हैं। अगर एक फूल तक मैं पहुंचता हूं तो मेरी आंख के द्वारा।
लेकिन शरीर की निंदा करके हमने शरीर के सब द्वारों पर खीले ठोंक दिए हैं, ताले ठोक दिए हैं, चाभियां बंद कर दी हैं, क्योंकि शरीर बुरा है। इसलिए शरीर के कुछ हिस्से हमने बिल्कुल बंद कर दिए हैं। शरीर की सबसे बड़े आनंद की जो क्षमता है, वह है स्पर्श, लेकिन हम कभी शरीर के स्पर्श आनंद को स्वीकार करने की तैयारी में नहीं हैं। न तो हम नग्न होकर हवाओं में नाचते हैं कि हवाएं हमारे पूरे शरीर को छू लें, न कभी हम नग्न होकर सूरज की रोशनी में बैठते हैं कि सूरज की पूरी किरणें हमारे रंध्र-रंध्र को स्पर्श कर जाएं। न कभी हम रेत में लेटते हैं, न कभी हम पानी में लेटते हैं। न कभी हम किसी व्यक्ति को पूरे प्राणों से प्रेम करते हैं और पूरे शरीर से स्पर्श कर लेते हैं। सब तरफ भय हो गया है! सब हमने कुंठित कर दिया है। शरीर का स्पर्श सबसे बड़ा संवेदन है। स्पर्श का हमने विरोध कर दिया है! और सब अपने- अपने हृदय पर तख्ती लगाए हुए हैं, टच मी नाट। मुझे छुएं मत। वह दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन हर आदमी लगाए हुए है कि मुझे छुएं मत, जरा फासले पर रहे। हम बात भी करते हैं तो एक जेंटलमेनली डिसटेंस, एक सभ्य आदमी का फासला है, उससे हम बात करते हैं!
मैं एक जंगली कबीले में कुछ दिन था, तो मैं बड़ा हैरान हुआ। उस जंगली कबीले के लोग घण्टे भर बात करेंगे, तो कम से कम सौ बार छुएंगे। बात-चीत करेंगे तो कितनी बार आपके शरीर को पकड़ लेंगे, इसका हिसाब मैंने लगाया तो पाया है कि घंटे भर अगर बात-चीत चलती हो तो कम से कम सौ बार। हमारी घण्टे भर की बातचीत में अगर तीन बार भी शरीर का स्पर्श हो जाए तो बहुत है, और अगर स्पर्श हो तो बहुत ही निकट जो हैं उनके ही शरीर का हो सकता है। अगर अपरिचित, अनजान आदमी के शरीर को आप निकट मान लें तो झगड़ा और झंझट हो सकती है। हमने शरीर के स्पर्श के बिल्कुल दरवाजे बंद कर दिए हैं और शरीर के स्पर्श से हमारे पास जीवन के बड़े सुख आते हैं, लेकिन हमने सब बंद कर दिया है।
हमने कुछ द्वार थोड़े से खुले रखे हैं। आंख को हमने खुला हुआ द्वार रखा है, इसलिए आंख बड़ी रुग्ण हो गई है। उससे हम बहुत से काम ले रहे हैं। अगर हम किसी आदमी को प्रेम में छूना हो तो छू तो नहीं सकते, तो फिर आंख से ही उसको छूना पड़ता है, तो आंख बीमार हो जाती है, क्योंकि आंख छूने का काम नहीं कर सकती है। इसलिए लुच्चे पैदा हो गए हैं। लुच्चे का मतलब आप समझते हैं? लुच्चे का मतलब घूर कर देखने वाला, और कुछ मतलब नहीं है। वह आंख से हाथ का काम ले रहा है, यह लुच्चे का मतलब है। लोचन संस्कृत में आंख को कहते हैं। लुच्चा वह जो आंख ही आंख हो गया है, और कोई मतलब नहीं है। आलोचक कहते हैं न हम। आलोचक उसका कहते हैं, जो बहुत गौर से किसी चीज को देखे। लुच्चा उसको कहते हैं, जो देखता ही चला जाए। जिसका देखना, जिसका स्टे बिल्कुल ही घूरना बन जाए। वह आंख का काम हाथ से ले रहा है बेचारा, व्यर्थ लुच्चा हो गया है। सच बात यह है कि अगर हम अपने भीतर खोज करें तो सौ में से सौ के भीतर लुच्चा मिल जाएगा। इससे कम में नहीं मिलेगा। मिल ही जाएगा, क्योंकि वह जो काम शरीर से लेना था, वह हमें आंख से लेना पड़ रहा है। हमने एक आंख, केंद्रित एक द्वार खोल दिया है, उससे हमें बहुत काम लेना पड़ रहा है। और आंख बिल्कुल रुग्ण और बीमार हो गई है। न वह ठीक से देख पाती है, न वह ठीक से पहचान पाती है, क्योंकि जो उसका काम नहीं है, वह उससे हम ले रहे हैं।
यह जो पत्थर है हमारे ऊपर, उसके कारण हमारी कोई इंद्रिय मुक्त होकर पूरा काम नहीं कर पा रही है। न हम ठीक से सुनते हैं, न ठीक से स्पर्श करते हैं, न ठीक से देखते हैं, क्योंकि शरीर की निंदा है, तो इन सबके प्रति भी निंदा हो गई। धर्मगुरु समझाते हैं कि भोजन में स्वाद भी मत लेना, अस्वाद से भोजन करना। गांधी जी के ग्यारह नियमों में एक नियम यह भी हैः अस्वाद से भोजन करना, स्वाद मत लेना! यह पागलपन की बात है। यह पागलपन की बात हैं। यह तो समझ में आता है कि इतना स्वाद लेना कि भोजन भी ब्रह्म मालूम पड़ने लगे। यह समझ में आ सकता है। इतना स्वाद लेना कि भोजन से भी उसके दर्शन हो जाएं,

जो परम है। लेकिन स्वाद ही मत लेना, तो उसका अंतिम परिणाम क्या होगा? अंतिम परिणाम होगा कि सप्रेश करना पड़ेगा। स्वाद तो आएगा, और आपको लेना नहीं है तो आपको जीभ को मारना पड़ेगा, धीरे-धीरे जीभ का द्वार बंद हो जाएगा। इसी तरह हम सब द्वार बंद कर देंगे, तो व्यक्ति बंद हो जाएगा।
कभी आपने सोचा, अगर आपके पास आंखें न हों, तो यह जिंदगी, यह दुनिया इतनी ही होगी, जितनी है? इसमें से एक बहुत बड़ा हिस्सा कट जाएगा। वही कभी नहीं होगी। अगर आपके पास कान भी न हों, तो आपको पता है कि जिंदगी यही होगी, जो है? एक बड़ा हिस्सा कट जाएगा। अगर आंखें नहीं हैं तो रंग और रूप और किरण से संबंधित सब दुनिया विदा हो जाएगी। अगर कान नहीं हैं तो ध्वनि से संबंधित सारा जगत विलीन हो जाएगा। अगर स्वाद नहीं है तो स्वाद से संबंधित जगत विदा हो जाएगा। अगर गंध नहीं है तो गंध विदा हो जाएगी। अगर स्पर्श नहीं है तो स्पर्श विदा हो जाएगा। अगर पांचों इंद्रियों को बंद किया जा सके, तो, तो आप अपनी कैपसूल में बंद हो जाएंगे, कब्र में। आप इस जगत और परमात्मा से संबंधित नहीं हो जाएंगे, आप सिर्फ अपने अहंकार में बंद हो जाएंगे। दमन करने वाले लोगों ने इंद्रियों का द्वार बंद करना सिखाया है, जीवन की राह नहीं, जीवन का मार्ग नहीं!
तो मैं आपसे कल तीसरे सूत्र में यह कहना चाहूंगा कि इंद्रियों से इतने बाहर जाएं, इतने बाहर जाएं और इंद्रियों से इतना भीतर आने दें कि बाहर और भीतर का फासला ही अंत में गिर जाए। जब तक बाहर भीतर का फासला बना रहेगा, तब तक जीवन की परिपूर्णता का आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। तब तक पत्थर हमारी छाती पर रखा है। यह मैंने दूसरे सूत्र की बात कही।
कुछ मित्रों के प्रश्न आए हैं, वह धीरे-धीरे मैं बात कर लूंगा। जो मित्र कल सुबह ध्यान के लिए आना चाहें, वह स्नान करके आएं, ताजे कपड़े पहन कर आएं और घर से आते वक्त चुप और मौन आएं, और वहां स्थान पर आकर कोई बात न करें, कोई शब्द का उपयोग न करें, चुपचाप आकर बैठ जाएं। ठीक आठ बजे के पहले आ जाएं। आज कुछ लोग थोड़ी बाद में पहुंचे। फिर बात पूरी हो जाती है, फिर उन्हें कठिनाई होगी समझने से। ठीक आठ के पांच दस मिनट पहले पहुंच जाएं। आठ के बाद नहीं। आठ के पहले आ जाएं, आठ से नौ तक वहां ध्यान का प्रयोग होगा। यहां ध्यान के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे हैं, वह मैं वहीं बात करूंगा।
यहां सांझ की जो चर्चाएं हैं, उसके संबंध में बात होगी।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

करुणा और क्रान्ति
चौथा प्रवचन

प्रेम के प्रतिबिंब

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक अजायबघर को देखने गया था। वहां बहुत से पशुओं को बंद देखा। जंगल में उन्हीं पशुओं को मुक्त भी देखा है। पशु वही थे, लेकिन जंगल में मालूम होता है, उनके पास एक आत्मा थी। अजायबघर में उनके पास वह आत्मा नहीं है। जंगल में उन्हें प्रफुल्ल देखा था। उनकी जिंदगी एक मुक्त गीत थी। अजायबघर में भी वे थे, लेकिन ऐसा लगा कि जिंदगी तो खो गई है और वे मर भी नहीं गए हैं। दोनों के बीच में अटक गए हैं। जिंदगी खो गई है और मौत नहीं आई है। उन पशुओं की आंखों में बड़ी उदासी, बेचैनी और चिंता भी दिखाई पड़ी। एक शेर को देखा अपने कटघरे में सींखचे से दूसरे सींखचे तक चक्कर लगाते हुए। सैकड़ों मीलों के विस्तार में दौड़ता रहा होगा। वृक्षों में, पहाड़ों में नदियों में छलांग लगाता रहा होगा। दूर-दूर तक कोई सीमा न रही होगी जिसके चरण चिह्नों की। वह एक छोटे से कठघरे में एक कोने से दूसरे कोने तक! सींखचों की एक कतार से दूसरी कतार तक दिन भर घूमता रहेगा। अगर वह शेर विक्षिप्त हो गया हो, तो आश्चर्य न होगा।
उस अजायबघर से लौटते वक्त मुझे ऐसा लगने लगा कि कुछ और खोज-बीन करूं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आदमी ने समाज बनाने की जगह अजायबघर बना लिया है? और जिसे हम समाज कहते हैं, वह समाज न हो, एक अजायबघर हो। और फिर जितनी इस संबंध में खोज-बीन की, उतनी यह धारण मेरी मजबूत और पक्की होती चली गई। जंगल में जानवर शायद ही बीमार पड़ते हों। चोट खा जाएं, बात अलग है। चोट का मतलब बीमारी बाहर से आ जाए, बात अलग है, लेकिन भीतर से शायद ही बीमारी आती हो। लेकिन अजायबघर में जानवरों को वे ही बीमारियां पकड़ जाती हैं, जो उस घर को बनाने वाले मालिकों की बीमारियां हैं! जंगलों में बंदरों की हजारों पीढ़ियों में शायद ही किसी बंदर को अल्सर हुआ हो, लेकिन अजायबघर में बंदरों को अलसर हो जाता है! अजायबघर के जानवर को वे ही बीमारियां पकड़ जाती हैं जो आदमी को पकड़ती हैं! फिर तो मैंने और पता लगाया तो बहुत हैरानी में पड़ गया कि जंगल के जानवर को, जिसको हम मानसिक विकृतियां कहें, वे शायद ही कभी दिखाई पड़ती हैं। लेकिन अजायब घर में आने पर वे ही मानसिक विकृतियां उसे पकड़ लेती हैं, जो आदमी को पकड़ लेती हैं! जंगल में जानवर को पागल होते शायद ही कभी देखा गया है, लेकिन अजायब घर में जानवर पागल हो जाते हैं!
और पागलपन जो है, बुनियादी रूप से आदमी की ईजाद है। वह आदमी के विशेष लक्षणों में से एक है। यह आपने कभी न सुना होगा कि जंगल में किसी पशु ने कभी आत्महत्या कर ली हो, स्वीसाइड कर ली हो। लेकिन अजायबघर में जानवरों ने स्वीसाइड करने की, आत्महत्या करने की कोशिश की है! जंगल का जानवर मस्टरबेशन करते हुए नहीं पकड़ा जाएगा, लेकिन अजायबघर का जानवर हस्तमैथुन करने लगता है! जंगली जानवर में होमो सेक्सुअलिटी एक ही लिंग के साथ कोई योनि संबंध खोजे से नहीं मिलते, लेकिन अजायबघर के जानवरों में होमो सेक्सुअलिटी पैदा हो जाती है। तब तो थोड़ा विचारणीय है कि आदमी ने जो समाज बनाया है, वह समाज है या एक अजायबघर है? क्योंकि अजायबघर में जानवर में जो- जो चीजें पैदा हो जाती हैं, वह आदमी के समाज में सब पैदा हो गई हैं।
मेरी प्रतीति ऐसी है कि समाज बनाने की जगह हम अजायबघर बना लिए हैं। और मनुष्य की गहराइयों में एक गहराई का दुख यह भी है कि इसकी सारी सहजता खो गई है और वह कटघरों में बंद हो गया है। आज तीसरे सूत्र पर ये थोड़ी मैं बात करना चाहूंगा। लेकिन हम कहेंगे, हम कहां बंद हैं? हम तो मुक्त हैं? अजायबघर में पक्षी-पशु तो बंद हैं, हम कहां बंद हैं? लेकिन क्या कभी आपने अनुभव किया है कि आप मुक्त हैं और बंद नहीं हैं? निश्चित ही लोहे के सींखचे नहीं हैं लेकिन लोहे के सींखचे तोड़े जा सकते हैं। ऐसे सींखचे हैं, जो दिखाई नहीं पड़ते, तोड़े भी नहीं जा सकते, और हैं, लोहे की सीखचों से ज्यादा मजबूत हैं!

एक जेलखाना हम बनाते हैं। चारों तरफ बड़ी दीवाल लगा देते हैं और बाहर संतरी बिठा देते हैं, पहरेदार बिठा देते हैं, बंद ही करवा देते हैं। क्या कभी आपने ख्याल किया है कि नेशन एक बड़ा जेलखाना है, जिसके चारों तरफ संतरियों की कतार लगी हुई है और आप अगर राज्य की आज्ञा के बिना देश की सीमा पार करना चाहें तो पार नहीं कर सकते हैं, और अपराधी हो जाएंगे। लेकिन राष्ट्र बड़ी चीज है और सीमाएं बड़ी दूर हैं, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रही हैं। जेलखाना बहुत बड़ा है और हमारी आंखों की पहुंच बड़ी छोटी है। लेकिन जेलखाना वहां है, वहां संतरी खड़े हुए हैं।
जब तक दुनिया में राष्ट्र हैं, तब तक आदमी का समाज नहीं बन सकता है, अजायबघर ही बनेगा। लेकिन राष्ट्र तो बड़ी है बात, बड़ा जेलखाना है, इसलिए बड़े जेलखाने के भीतर हमने और छोटे जेलखाने बनाए हैं! राष्ट्रों के भीतर छोटे-छोटे और राष्ट्र हैं। अभी हिंदुस्तान एक-एक जेलखाना है, और चीन एक और पाकिस्तान एक। इस हिंदुस्तान के बड़े जेलखाने के भीतर से छोटे जेलखाने हैं--मुसलमान का एक जेलखाना है, हिंदू का दूसरा है, जैन का तीसरा है, पारसी का चौथा है, सिख का पांचवां है! फिर उन्होंने अपनी सीमाएं बांध रखी हैं, और उनके भी सींखचे हैं, उनको भी पार मत करना, अन्यथा मुसीबत में पड़ जाएंगे! वे दिखाई नहीं पड़ते हैं सींखचे होते हैं या नहीं होते हैं। दिखाई तो नहीं पड़ते हैं लेकिन होते हैं! सख्त दीवाल होती है, जिसको पार करना मुश्किल है। वह हमें घेरे हुए है। और ऐसा नहीं है कि मुसलमान और हिंदू के बीच फिर और सींखचे नहीं हैं।
मैं अभी एक गांव में था, काश्मीर के, और उस गांव में तो कोई हिंदू नहीं था, मुसलमान ही मुसलमान थे। तो मेरी सेवा-टहल के लिए जो आदमी था, उससे मैंने पूछा, तुम मुसलमान हो? उसने कहा, मैं मुसलमान नहीं हूं। मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने कहाः तुम कौन हो? उसने कहाः मैं सुन्नी हूं। मैं मुसलमान नहीं हूं। मुसलमान शिया हैं! उस गांव में शिया और सुन्नियों में झगड़ा चला, तो सुन्नी कहता है, मैं शिया नहीं, मुसलमान तो वे शिया हैं। उस गांव में उतना ही तनाव है--जितना हिंदू-मुसलमान में होता है, उतना ही शिया-सुन्नी में है। उनके बीच भी एक दीवाल खड़ी है। अगर ऐसा नहीं है कि शूद्र के बीच आपस में दीवालें नहीं हैं, चमार और भंगी के बीच उतनी ही बड़ी दीवाल है, जितनी किसी के बीच हो सकती है! ऐसे कठघरे के भीतर कठघरा, कठघरे के भीतर कठघरा है। वे जादू के डिब्बे देखे हैं न, डिब्बे के भीतर डिब्बा डिब्बे के भीतर डिब्बा, डिब्बे के भीतर डिब्बा है! वे जो अजायबघर में जानवर बंद हैं, उनका तो एक ही कठघरा है। आदमी जिस अजायबघर में बंद है, उनमें कठघरों के भीतर कठघरे हैं, और कठघरे बढ़ते ही चले जाते हैं। अगर हम अपने सारे कठघरों की कतार देखें तो पागल हो जाएंगे। और हमें ख्याल भी आ जाए कि आदमी इतना विक्षिप्त हुआ जा रहा है, उसका कारण यही है कि उसे सब कठघरे साफ-साफ दिखाई पड़ने लग गए हैं। एक-एक कठघरा साफ-साफ दिखाई पड़ने लग गए हैं।
इन सारे कठघरों का आधार क्या है? इस गुलामी का आधार क्या है? यह परतंत्रता जो हमें सीखचों में बंद किए हुए है, इसका आधार क्या है? कौन सी मजबूरी है, जो आदमी को सीखचों के भीतर खुद ही बंद होने को कहती है कि बंद हो जाओ। शायद ख्याल में भी नहीं आया होगा, लेकिन ख्याल में आना चाहिए।
हमारे सारे कठघरों के आधार में हमारा परिवार है, वह हमारा बुनियादी कठघरा है। लेकिन परिवार की बड़ी प्रशंसा की जाती है। कहा जाता है परिवार तो स्वर्ग है, परिवार तो बड़ा पवित्र है, परिवार तो हमारी संस्कृति का केंद्र है, सारी मनुष्य की संस्कृति का! और मैं आपसे कहना चाहता हूं, परिवार हमारी सारी विकृति का केंद्र है, संस्कृति का नहीं। और परिवार जब तक है, तब तक संस्कृति पैदा ही नहीं हो सकती है। क्योंकि परिवार हमारा पहला कठघरा है, जो हमें दूसरों से तोड़ता है। आपका परिवार और मेरा परिवार एक दूसरे को तोड़ता है। जब तक परिवार है, तब तक मनुष्य जाति कठघरों से मुक्त नहीं हो सकती। वह जो फेमिली है, जब तक वह है।
परिवार हमारी गुलामी की आधार-शिला है!
लेकिन हम प्रत्येक बच्चे को परिवार का गौरव और अहंकार सिखाते हैं। हम उससे कहते हैं कि तू खास परिवार का है। अपने परिवार की इज्जत रखना। अपने

वंश की इज्जत रखना। अपने बाप दादों की इज्जत रखना। अपने वंश की इज्जत रखना। हम उसे सारी मनुष्य जाति से तोड़ कर अलग कर रहे हैं। हम उससे यह नहीं कह रहे हैं कि यह सारी मनुष्य जाति, यह सब फैलाव तेरा परिवार है। हम उससे कह रहे हैं, ये इने-गिने दस-पांच लोग ये तेरे परिवार हैं ये तेरे पिता हैं, ये तेरी मां हैं, ये तेरे भाई हैं, ये तेरी बहन है। यह तेरा परिवार है। इसके लिए तू जीना और मरना। इसकी इज्जत की फिकर करना। इसके आदर्शों का ख्याल रखना! इसकी नीति, इसका इतिहास, इसकी परंपरा, इन सबके गौरव को तू बचाना! हम बचपन से उसमें यह जहर डाल रहे हैं। क्या हमें पता है कि हम उसे मनुष्य जाति के बड़े परिवार से तोड़ रहे हैं?
छोटे परिवारों की शिक्षा बड़े परिवारों से तोड़ने वाला परिणाम लाएगी ही। हम उसे बांध रहे हैं, एक बहुत छोटी इकाई से, और उस इकाई से बंध जाने की वजह से कभी भी मुक्ति अनुभव नहीं करेगा। फिर बड़ी इकाइयां भी आएंगी--परिवार के साथ फिर उसकी जाति है, फिर परिवार और जाति के साथ उसका समाज है, और समाज और जाति के साथ राष्ट्र है। फिर इकाइयों पर इकाइयां बैठती चली जाएंगी, लेकिन पहली इकाई परिवार की है। परिवार के कारण संस्कृति निर्मित नहीं हो पाई है। हम समझते हैं कि वह हमारा यूनिट है, वह हमारी इकाई है, परिवार है तो सब है। और परिवार ने किस-किस तरह की बीमारियां पैदा की हैं, वह ख्याल में भी नहीं है। उन पर थोड़ी बात मैं करना चाहूंगा। क्योंकि वह कठघरा, वह इमप्रिजनमेंट पहला है। अगर वह टूट जाए तो बाकी सब कठघरे टूट सकते हैं, क्योंकि वे उसी से पैदा होते हैं।
परिवार सिखाता है धर्म, परिवार सिखाता है जाति, परिवार सिखाता है राष्ट्र! परिवार से एक दफा आदमी बंध गया तो उस परिवार की जाति से बंध जाता है। जाति से बंधता है तो धर्म से बंध जाता है। धर्म से बंधता है तो राष्ट्र से बंध जाता है। और सारी बीमारियां हजारों साल की परिवार हमें दे जाता है। हर परिवार अपने बेटे को हजारों-लाखों साल की सारी धूल, सारी बीमारी, सारे रोग वसीयत में दे जाता है। लेकिन उसे हम शिक्षा कहते हैं। हम कहते हैं कि मां-बाप अपने बेटे को शिक्षित कर रहे हैं। मां-बाप अपने बेटे पर अतीत का बोझ रख रहे हैं। शिक्षा अतीत का बोझ नहीं होगी, शिक्षा सदा भविष्य की मुक्ति होगी, शिक्षा सदा भविष्य की तरफ उन्मुख करेगी। लेकिन परिवार और उससे बंधी हुई शिक्षा अतीत की तरफ उन्मुख करती है, पीछे की तरफ। क्योंकि भविष्य तो परिवार का है नहीं।
भविष्य तो व्यक्ति का है, परिवार का तो अतीत है।
ध्यान रहे, परिवार का कोई फ्यूचर नहीं है, परिवार का कोई भविष्य नहीं है। परिवार की तो सब कुछ संपदा अतीत में है, मृत अतीत में। और व्यक्ति का सब कुछ भविष्य में है, अजन्मे भविष्य में। अजन्मे भविष्य में व्यक्ति को हम परिवार के नाम मर गई सारी परंपरा और रूढ़ियों को थोप देते हैं। वह व्यक्ति वहीं जकड़ जाता है और बंद हो जाता है। वह व्यक्ति अतीत उन्मुख हो जाता है। वह भी भविष्य उन्मुख नहीं रह जाता।
इसलिए मैं कहूंगा, वह मां सच में अपने बेटे को प्यार करती है, जो उसे परिवार से नहीं बांधती और अतीत से नहीं बांधती और भविष्य के लिए एक मुक्त मनुष्य बनाती है। वह बाप अपने बेटे को प्यार करता है, जो प्यार तो करता है, लेकिन अपनी बीमारियां, अपने विचार, अपने सिद्धांत, अपना धर्म, अपनी जाति बच्चे को दे नहीं जाता। और जो बाप अपने बेटे को अपना धर्म, अपनी जाति, अपने परिवार, ये सब परंपराएं दे जाता है, वह अपने बेटे का निश्चित दुश्मन है। उससे बड़ा कोई दुश्मन नहीं है। क्योंकि वह बेटे को पीछे से बांध जाता है। लेकिन मुसलमान बाप अपने बेटे को मुसलमान बना जाता है, हिंदू बाप अपने बेटे को हिंदू बना जाता है सख्ती से, मजबूती से। भूल-चूक न हो जाए, इसलिए बहुत जल्दी करते हैं मां-बाप कि लड़के में बुद्धि न आ जाए, लड़की में बुद्धि न आ जाए। बुद्धि के आने के पहले उन्हें बांध दो, क्योंकि बुद्धि आ जाने पर बगावत भी हो सकती है, विद्रोह भी हो सकता है। इसलिए मां-बाप बड़े उत्सुक होते हैं कि बचपन से जल्दी बच्चों को सब सिखा दो। इसलिए हम सब बच्चों के नाम अलग रखते हैं ताकि उनकी आइडेंटिटी, उनका तादात्म्य अलग रहे। एक मुसलमान के बच्चे का नाम देखकर पहचाना जा सके कि वह मुसलमान है। एक हिंदू

के बच्चे का नाम देख कर पहचाना जा सके कि हिंदू है। कपड़े देखकर पहचाना जा सके कि आदमी हिंदू है कि मुसलमान। इसका रंग-ढंग सब देख कर पहचाना जा सके।
बच्चे को हम ऐसा ढालते हैं कि वह इस दुनिया में एक मनुष्य की तरह नहीं है। एक बंधी हुई इकाई की तरह पहचाना जाए! इसलिए हम ऐसा नाम रखते हैं।
अभी एक मेरे मित्र ने मुझसे पूछा, उनका बेटा पैदा हुआ है, इसका क्या नाम रखूं? मैंने कहाः एक्स, वाय, जेड, कुछ भी रख सकते हैं। लेकिन उन्होंने कहाः एक्स, वाय, जेड, बहुत बुरा मालूम पड़ेगा। तो मैंने कहाः नंबर एक, नंबर दो, नंबर तीन, ऐसा कुछ रखना। उन्होंने कहाः यह बड़ा अजीब सा लगेगा। लोग क्या कहेंगे? आप कुछ ऐसा नाम बताएं, जो नाम जैसा लगता हो। तो मैंने कहा, इसका नाम अल्बर्ट कृष्ण अली रख दें। उन्होंने कहा, तब बड़ी मुश्किल होगी। लोग समझ न पाएंगे कि यह हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है, यह कौन है? अल्बर्ट कृष्ण अली! इसमें बड़ी मुश्किल होगी। मैंने कहाः मैं चाहता हूं कि मुश्किल हो। इसे मत जोड़ें जाति से, इसे मत जोड़ें राष्ट्र से, लेकिन मां-बाप बहुत उत्सुक हैं इसे जोड़ देने में! मां-बाप बहुत उत्सुक हैं कि यह बेटाशृंखला का हिस्सा हो जाए, जिसके वे हिस्से हैं! लेकिन वे सारीशृंखलाएं, बीमारियां और महारोग सिद्ध होगी, इसके लिए मां-बाप बहुत चिंतित नहीं हैं। वे बेटे को एकशृंखला का हिस्सा बनाना चाहते हैं। वह श्रृंखला से मुक्त एक मनुष्य न बन जाए, अपनी हैसियत से एक ईकाई न बन जाए, इसलिए वह किसी परंपरा, किसी धारा का हिस्सा बनाना चाहते हैं! वह व्यक्ति न बन जाए। परिवार किसी को व्यक्ति नहीं बनने देता है। और जब तक इस पृथ्वी पर व्यक्ति नहीं पैदा होते, तब तक स्वतंत्रता पैदा नहीं हो सकती है। व्यक्ति होना ही गहरी से गहरी स्वतंत्रता है। और वह व्यक्ति व्यक्ति नहीं है, किसी बड़ी परिवार, जाति, कोई कुल, किसी परंपरा का एक हिस्सा मात्र है, वह एक बड़ी मशीन का पुर्जा है, इससे ज्यादा नहीं है। और इसलिए बड़ी सुविधा होती है लेबल लगाने में। अभी हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए तो पड़ोस के आदमी ने, जिसने कभी कुछ आपका नहीं बिगाड़ा था, आप उसकी छाती में छुरा भोंक सकते हैं, क्योंकि वह मुसलमान है! उसने आपका कभी कुछ नहीं बिगाड़ा, उसने कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, लेकिन वह मुसलमान है, यह काफी है। अब बड़ी हैरानी की बात है। अगर कलकत्ते में एक मुसलमान किसी हिंदू को छुरा भोंक दे तो बंबई में जवाब दिया जा सकता है! उसका एक हिंदू एक मुसलमान का छुरा भोंककर जवाब देगा! लेकिन क्या यह कोई जवाब हुआ?
मेरे मित्र परसों रात एक कहानी सुना रहे थे। वह कह रहे थे कि एक पठान
के घर में एक आदमी मेहमान हुआ। उस पठान के घर में मेहमान हुआ तो पठान ने बड़ा आतिथ्य दिखलाया और पठान वैसे भी बहुत अतिथि-प्रेमी होते हैं। लेकिन उस गरीब के पास कुछ भी नहीं था, तो उसने कहा, आप रुको, मैं अभी बाजार से सामान लेकर आता हूं। वह सब अपने बर्तन भांडे बाजार में बेचने गया कि खाने का इंतजाम कर दे, क्योंकि अतिथि घर आया है। जब तक वह गया, तब तक सामने के झोपड़े वाले पठान ने उस आदमी को कहा, आप वहां कहां उस गरीब के घर में ठहर गए हैं। वहां खाने को भी कुछ नहीं है। यहां आ जाएं, मेरे मेहमान हो जाएं। उसने बहुत मना किया, लेकिन वह पड़ोस वाला पठान उसे उठा कर ले गया। उस पड़ोस वाले पठान की सामने वाले पठान से दुश्मनी है। वह उस मेहमान को उठा कर ले गया। जब वह पठान वापस लौटा तो उसने देखा, मेहमान तो जा चुका है और पड़ोसी के घर में भोजन कर रहा है। वह तो वेध में भर गया। उसने उठाई बंदूक और जाकर उस मेहमान से कहा, गोली मार दूंगा, वापस चलिए। मैं इंतजाम किया हूं आपकी सेवा का। वह मेहमान बहुत घबड़ाया। लेकिन दूसरे पठान ने जिसके घर वह भोजन कर रहा था, उसने कहा, बेफिक्र खाए चले जाओ, घबड़ाओ मत, अगर इसने हमारा एक मेहमान मारा तो मैं इसके तीस मेहमान मार कर बताऊंगा। तुम मजे से खाओ। तुम बेफिक्र से खाओ, हम इसके तीस मेहमानों को गोली न मार दें तो हमारा नाम नहीं। इसको मारने दो गोली, हम तीस से बदला लेकर दिखाएंगे। उस मेहमान ने कहाः लेकिन इससे मुझे क्या फायदा होगा? मेरा क्या संबंध उन तीस मेहमानों के मरने से? लेकिन मेहमान शब्द से काम चलाया जा सकता है और मेहमान शब्द के नीचे आदमी रखे जा सकते हैं, जिनका कोई भी संबंध नहीं है। मुसलमान शब्द काम दे देगा। तो मुसलमान से काम चलाया जा सकता है। अगर दुनिया में मुसलमान, हिंदू

और ईसाई न हों, तो अगर कलकत्ते में एक आदमी किसी को गोली मारे, छुरा भोंके तो कहीं भी दंगा नहीं हो सकता, क्योंकि अ ने ब को छुरा भोंक दिया, इससे झगड़ा नहीं हो सकता है कि हिंदू ने मुसलमान को छुरा भोंक दिया। तब झगड़ा हो सकता है। अ ब को छुरा भोंके तो अदालत में निपटारा हो जाएगा। किसी को कोई झंझट नहीं है। लेकिन हिंदू मुसलमान को छुरा भोंके तो फिर झगड़ा पूरी दुनिया में भी फैल सकता है। क्योंकि वह हिंदू के नाम के नीचे हमने बहुत लोगों को इकट्ठा कर रखा है।
परिवार हमारा पहला व्यक्तित्व छीनने का उपक्रम है। जहां हम व्यक्ति छीन लेते हैं और उसे एक समूह के भीतर जबरदस्ती ढांचे में ढालने की कोशिश करते हैं। वह पहला कठघरा है, जो पैदा हो जाता है वह जिंदगी भर पीछा नहीं छोड़ता।
अजीब ढंग से पीछा पकड़ती हैं बचपन से सीखी बातें। उनकी हमें याद नहीं रहती, लेकिन पीछा करती हैं। अब एक बच्चा अपनी मां को प्रेम करता है और मां खुश होगी कि बच्चा मां को प्रेम करता है और बच्चे को कितना प्रेम करती है, वह करेगी, लेकिन बच्चे के मन में और मां के प्रेम की जो तस्वीर बनती चली जाएगी, मां भी नहीं सोच सकती, बच्चा भी नहीं सोच सकता कि अंततःः यही प्रेम उसकी जिंदगी को भी उपद्रव में डाल सकता है। अगर बच्चे के मन में अपनी मां की तस्वीर पूरी तरह बैठ गई तो वह जिंदगी भर पत्नी में अपनी मां को खोजेगा, जो नहीं मिल सकता है। और वह जिंदगी भर फ्रस्ट्रेशन में जीएगा। जिंदगी भर तनाव और परेशानी रहेगी, क्योंकि वह खोज रहा है मां को। उसको मां जैसी पत्नी चाहिए वैसी पत्नी कहां मिल सकती है। वह एक ही औरत थी और मां को पत्नी बनाया नहीं जा सकता। उसका कोई उपाय नहीं है। अब वह अपनी मां को खोज रहा है, मां के गुण खोज रहा है, मां की तस्वीर खोज रहा है। और वह तस्वीर उसको कहीं भी नहीं मिलेगी। उसको कोई पत्नी कभी सुख नहीं दे पाएगी। हर पत्नी के साथ मुसीबत खड़ी हो जाएगी। क्योंकि वह मां की एक इमेज, एक धारणा मन में बैठ गई है। अब बचपन में सीखी गई एक धारणा जीवन भर उसका पीछा करेगी। वह कभी शांत नहीं हो सकेगा।
इसलिए हर आदमी जानता है कि मुझे कैसी स्त्री चाहिए, और हर स्त्री जानती है कि मुझे कैसा पति चाहिए। एक धुंधली धारणा है भीतर, और हम उसकी तलाश में रहते हैं। लेकिन वह कभी मिलने वाला नहीं है, क्योंकि लड़की के मन में अपने पिता की तस्वीर है और लड़के के मन में अपनी मां की तस्वीर है। और वह कहीं भी मिलने वाले नहीं हैं। एक से व्यक्ति दोबारा पैदा ही नहीं होते! अब बचपन में बैठ गई तस्वीर जिंदगी भर पीछा करेगी। और सारी जिंदगी को खराब कर देगी। बचपन में जो भी बैठ जाता है, वह जिंदगी भर पीछा करता है। और बचपन में अगर गलत सीमाएं बिठा दी जाएं तो जिंदगी भर उनको भूलना मुश्किल है। एक आदमी बाद में बुद्धिमानीपूर्वक सोच-विचार करके यह समझ ले कि मैं सिर्फ आदमी हूं, न हिंदू हूं, न मुसलमान हूं, न इस परिवार का हूं, न उस देश का हूं तो बहुत गहरे में वह वही रहेगा।
एक मित्र बीस साल से जर्मनी में थे। अब बीस साल में जर्मन भाषा को वे ऐसा बोलने लगे थे, जैसे उनकी मातृभाषा हो। बल्कि वह यहां लौट कर आते थे तो हिंदी बोलने में उन्हें कठिनाई होती थी। हिंदी वे ऐसे ही बोलते थे, जैसे कोई जर्मन हिंदी सीख कर बोल रहा हो। वे हिंदी बोलना ही करीब-करीब भूल गए। फिर वे बीमार पड़े और उनके दूसरे भाई उन्हें देखने गए। उनके दूसरे भाई ने मुझे कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गए। जब वे बीमार थे और बेहोश हो जाते थे, तब वे जर्मन भूल जाते थे, हिंदी बोलने लगते थे। और रात को डाक्टर कहते थे उनके भाई को कि आप रात रुक जाइए, अगर आपका भाई बेहोश हो जाता है, तो फिर हमारी समझ के बाहर हो जाता है कि वह क्या बोलता हैं! जब वे बेहोश होते थे, तो वे हिंदी बोलते थे। वे होश में होते थे, तो वे हिंदी ठीक से समझ भी नहीं पाते थे।
वह जो बचपन में सीखा था, वह बहुत गहरे बैठ जाता है।
मैंने सुना है कि भोज के दरबार में एक बहुत बड़ा पंडित आया और उसने भोज
के पंडितों को चुनौती दी कि मेरी मातृभाषा पहचान कर बता सको तो मैं एक लाख स्वर्ण मुद्राएं भेंट करूंगा। और जो आदमी हार जाएगा, उसे फिर एक लाख

स्वर्ण मुद्रा मुझे देनी पड़ेंगी। अगर जीत गया तो एक लाख स्वर्ण मुद्राएं मैं दे दूंगा। भोज के दरबार में बड़े-बड़े विद्वान लोग थे। एक-एक विद्वान ने चुनौती स्वीकार की, रोज एक-एक पंडित हारने लगा। उसकी मातृभाषा पहचाननी मुश्किल थी। वह कोई तीस भाषाएं इस भांति बोलता था कि सभी उसकी मातृभाषाएं हैं। रोज पंडित हारने लगे। आठवां दिन आ गया। भोज ने कालिदास को कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं कैसी बदनामी होगी मेरी? एक पंडित यह भी नहीं पहचान पाता है कि मातृभाषा कौन सी है। बोलना तो दूर, समझना दूर, मातृभाषा कौन सी है, यह भी नहीं बता पाता है लोग क्या कहेंगे? कालिदास से कहा, तुम कुछ करो। कालिदास ने कहा मैं सोच रहा हूं। कुछ करने की कोशिश करूंगा। उस दिन जब पंडित जीतकर जा रहा था एक लाख रुपया, आठवें दिन लेकर फिर जा रहा था, बड़ी सीढ़ियों पर दरवाजे के सामने कालिदास से बातें कर रहा था। जब सीढ़ियां उतरने लगा, कालिदास ने उसे जोर से धक्का दे दिया, वह सीढ़ियों से नीचे गिरा-- पच्चीस फीट सीढ़ियों से नीचे--और उसको उसने जो गाली दी, वह मातृभाषा में थी। कालिदास ने कहा, माफ करिए, यह तकलीफ देनी पड़ी, और कोई उपाय न था। यह आपकी मातृभाषा होनी चाहिए। रुपये नहीं जीतने हैं, लेकिन हम खोज करना चाहते थे कि मातृभाषा क्या है?
वह जो बचपन से बैठी हो, वह बहुत गहरे में बैठी है। वह जिंदगी भर पीछा करती है। हम कितना ही सीख लें फिर, असल में बचपन में पकड़ी गई मानसिक बीमारियों से छुटकारा करीब-करीब असंभव है। हो सकता है, लेकिन बड़ा मुश्किल है। और यह जो सारी मनुष्य जाति इतनी बीमार दिखाई पड़ रही है, यह बचपन में पकड़ी गई मानसिक बीमारियों का परिणाम है। बचपन में हम सीमाएं सीख रहे हैं, असीम नहीं। बचपन में हम अतीत से बांध रहे हैं, भविष्य की तरफ मुक्त नहीं कर रहे हैं। बचपन में हम धर्म सिखा रहे हैं, आदर्श सिखा रहे हैं, बचपन में हम सब सिखाए दे रहे हैं। और बचपन एक कारागृह बन जाएगा और यह जिंदगी भर साथ रहेगा।
आप कहीं भी जाओ, घर के बाहर निकलना आसान है। लेकिन हिंदू के बाहर होना बड़ा मुश्किल है। हिंदू आपके चारों तरफ जुड़ा ही रहेगा। आप कहीं भी जाओ, आपके आस-पास मुसलमान की दीवाल साथ में चलेगी। वह आपके शरीर के चारों तरफ चिपका हुआ जाल है, उससे छूटना बहुत मुश्किल है। और परिवार इस जाल की शुरुआत है, वह प्राथमिक चरण है। क्या मनुष्य को परिवार से मुक्त किया जा सकता है?
निश्चित ही किया जा सकता है। और अगर मां-बाप बच्चों को प्रेम करते हैं, तो उन्हें उसे परिवार से नहीं बांधना चाहिए। उन्हें निरंतर कोशिश करनी चाहिए कि वह मुक्त जी सके। उसकी किसी से कोई आइडेंटिटी, उसका किसी से कोई तादात्म्य न हो जाए। वह एक व्यक्ति की हैसियत से खड़ा हो सके। एकशृंखला की कड़ी की हैसियत से नहीं, एक व्यक्ति की हैसियत से खड़ा हो सके। अपनी हैसियत से खड़ा हो सके।
अरविंद के पिता एक बहुत अदभुत आदमी थे, शायद आपको पता हो या न हो। अरविंद को उन्होंने पांच-छहः साल की उम्र में हिंदुस्तान के बाहर भेज दिया। और जिस स्कूल में रखा था इंगलेंड में, वहां के शिक्षकों को और वहां के प्रिंसिपल को कहा कि मेरे लड़के को किसी धर्म की कोई शिक्षा न दी जाए। वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, किसी धर्म की तो शिक्षा मिलनी ही चाहिए। अरविंद के पिता ने कहा, मैं किसी धर्म की शिक्षा को नहीं देना चाहता, क्योंकि कितने लोगों को धर्म की शिक्षा दी गई है और वह जो कर रहे हैं, उससे ज्यादा अधर्म और कुछ भी नहीं हो सकता है। मैं अपने बच्चे को किसी धर्म की शिक्षा नहीं देना चाहता। अगर उसकी जिंदगी में उसे खोज करनी होगी तो वह खोज करे। और मेरे बच्चे को कभी हिंदू न समझा जाए और कभी भारतीय न समझा जाए। पर उस प्रिंसिपल ने कहा, यह कैसे हो सकता है? उनके पिता ने कहा कि मैं यही चाहता हूं कि मेरा बच्चा एक मुक्त व्यक्ति की तरह बढ़े। वह किसी जाति की स्मृतियों को लेकर बड़ा न हो और किसी परंपरा की कड़ी की तरह एक हिस्सा न बने। वह अपनी हैसियत से अपने पैरों पर खड़ा हो सके। वह दूसरों के कंधों पर खड़ा न हो, मैं यही चाहता हूं।

बाप बीमार पड़ गए। लेकिन बेटे को उन्होंने बुलाया नहीं। बहुत हिम्मत
के आदमी रहे होंगे। अरविंद जैसा बेटा पैदा करने के लिए वैसे भी हिम्मतवर आदमी चाहिए। बाप बीमार थे, लेकिन उन्होंने बेटे को नहीं बुलाया। घर के लोगों ने कहा, बेटे को बुला लें, आप बीमार हैं? तो उनके पिता ने कहा, अच्छा है कि वह मुझसे न बंधे। उसे याद भी न रहे कि उसका कोई पिता है। ताकि अतीत से उसका सारा संबंध टूट जाए। बहुत अद्भुत हिम्मत के आदमी रहे होंगे कि उसे मेरा कोई संबंध भी न हो।, ताकि वह अतीत से, मैं उसकी कड़ी हूं मुझसे, अतीत से, पास्ट से जुड़ी हुई कोई कड़ी उसे याद न रह जाए। वह भविष्य का नागरिक हो, अतीत का बोझ लेकर खड़ा न हो। भविष्य का मुक्त नागरिक हो।
अरविंद के पिता मर गए, अरविंद को पता भी न चला! अरविंद जब वापस हिंदुस्तान आए, तब उनको पता चला कि उनके पिता चल बसे। और इसलिए खबर नहीं की मुझसे कोई स्मृति भी न जुड़े, वह भविष्य का नागरिक होना चाहिए। हम सब अतीत के नागरिक हैं और अरविंद में जो प्रतिभा प्रगट हुई, उसमें उनके पिता का नब्बे प्रतिशत हाथ है। और अरविंद में जो भविष्य की एक प्रेरणा उदय हुई, और भविष्य का जो एक दर्शन अरविंद को हो सका, और मनुष्य के भावी विकास के लिए जो वे सोच सके, उस सबमें उनके पिता का हाथ है, क्योंकि अतीत के बोझ को उन्होंने काट दिया, अतीत से श्रृंखला तोड़ दी।
क्या हम एक ऐसा समाज बना सकेंगे, जहां मां-बाप बेटे को अतीत से जोड़ने वाले नहीं तोड़ने वाले बनते हों; तो ही मनुष्य के दुख और मनुष्य की शूली पर लटकी हुई इस हालत को नीचे उतार सकते हैं, अन्यथा यह उतारना बहुत मुश्किल है।
आज मैं तीसरा सूत्र यह कहना चाहता हूं कि बच्चों को अतीत से मुक्त करना है, ताकि वे भविष्य के मुक्त नागरिक बन सकें। लेकिन हम सब पीछे से बंधे हैं! और कुछ क्षण हैं व्यक्ति के जीवन में, जिसको मैं मोमेंट्स ऑफ एक्सपोजर कहता हूं। जैसे कि कैमरे का एक्सपोज होता है। एक क्लिक दबाया और कैमरा खुला और एक क्षण में जो उसके भीतर चला गया, वह भीतर बैठ गया, फिल्म ने पकड़ लिया। ऐसे ही मनुष्य के मन में भी एक्सपोजर के क्षण होते हैं, जब उसका मन खुलता है और कुछ चीजों को पकड़ लेता है।
आदमी की जिंदगी में ऐसे दस-पांच क्षण होते हैं, जो मोमेंट्स ऑफ एक्सपोजर हैं। अगर उन क्षणों में भूल हो जाए तो जिंदगी भर के लिए भूल हो जाती है। बचपन में ऐसे क्षण सर्वाधिक होते हैं, जब बच्चे का मन खुला होता है और जो भी उसमें प्रवेश कर जाता है, वह प्रवेश कर जाता है और उसकी आत्मा में उसकी छवि अंकित हो जाती है।
मैं एक बहुत हैरानी की घटना पढ़ रहा था। मैं पढ़ रहा था कि एक वैज्ञानिक मुर्गियों पर कुछ प्रयोग करता था। अब मुर्गी का बच्चा जैसे ही अंडे के बाहर निकलता है, अपनी मां के पीछे भागना शुरू कर देता है। अंडे से बाहर निकला और मां भाग रही है, वह उसके पीछे भागने लगे। और जब तक वह बड़ा नहीं हो जाएगा, मां के पीछे भागता रहेगा, भागता रहेगा। एक वैज्ञानिक ने अदभुत प्रयोग किया। जब मुर्गी का चूजा बड़ा हो गया, और अंडा टूटने के करीब आया तो उसने उसकी मां को हटा दिया और मां की जगह एक गैस का भरा हुआ गुब्बारा रख दिया उसी रंग का, लाल रंग का। और जब अंडा टूटा और उसमें से बच्चा बाहर निकला तो उसे मां तो नहीं दिखाई पड़ी, उसे दिखाई पड़ा गुब्बारा। वह मोमेंट्स ऑफ एक्सपोजर है! जब बच्चा पहली दफा जगत में आता है, तो उसका मन खुलता है पूरा। वह जो भीतर ले जाता है, वह सदा के लिए भीतर हो जाता है। वह गुब्बारे के पीछे भागने लगा। फिर उसकी मां को भी ले आया गया, लेकिन मां की तरफ उसने ध्यान भी न दिया! फिर लाख कोशिश की गई कि वह अपनी मां के पीछे भागे, लेकिन वह मां को पहचान नहीं सका गुब्बारा ही उसकी मां हो गया। वह गुब्बारे के पास आकर सिर टिका कर सो जाता था! वह गुब्बारे के नीचे घुस कर बैठ जाता था! वह गुब्बारे के पीछे भागता था। वह गुब्बारे की तरफ चोंच फैलाता था कि गुब्बारा उसकी चोंच में कुछ दे दे! लेकिन वह मां को नहीं पहचान सका! वह मर गया बच्चा। फिर तो बहुत मुर्गी के बच्चों पर प्रयोग किया गया और पाया गया कि उस क्षण में, पहले क्षण में उसका मन जो पकड़ लेता है, वही उसकी मां बन जाती है।

सबके साथ जैसे क्षण हैं, आदमी के साथ भी वैसे क्षण हैं। एक बच्चा पैदा होता है और मां के प्रति जो इतना बड़ा प्रेम है, उसका पहला कारण यह है कि वह मोमेंट ऑफ एक्सपोजर में पहले मां ही उसको उपलब्ध होती है। तब उसका मन खुला होता है और मां की तस्वीर भीतर चली जाती है! लेकिन खतरनाक भी है एक अर्थ में, क्योंकि लड़के के मन में भी मां की तस्वीर चली जाती है और लड़की के मन में भी मां की तस्वीर चली जाती है और मनुष्य की जिंदगी में मनुष्य के प्रेम और दांपत्य में बाधा डालने वाला एक कारण यह भी है! क्योंकि जो तस्वीर भीतर चली गई है लड़के के मन में, अब जिंदगी भर वह इसी तस्वीर को खोजता रहेगा। पहले मां के प्रेम में इसको पाएगा और परिपक्व कर लेगा, फिर वह मजबूत हो जाएगी। फिर जब सेक्सुअल मैच्योरिटी आती है, पहली दफे यौन की दृष्टि से व्यक्ति परिपक्व होता है, तब फिर मोमेंट आफ एक्सपोजर आता है। जिसको लोग कहते हैं, लव एट फर्स्ट साइट। वह कुछ भी नहीं है। वह वही मोमेंट ऑफ एकस्पोजर हैं। वह वहीं का वहीं मामला है, जैसे उस मुर्गी को प्रेम हो गया गुब्बारे से। वह मुर्गी का बच्चा गुब्बारे के पीछे घूमने लगा। वह लव एट फर्स्ट साइट, वह पहली नजर है प्रेम की, खुल गया मन और वह गुब्बारा भीतर बैठ गया। जब यौन की दृष्टि से व्यक्ति पहली दफे परिपक्व होता है, तब फिर उसका मन खुलता है और जो पहली तस्वीर भीतर बैठ जाती है, भीतर प्रवेश कर जाती है और गहरा प्रवेश कर जाती है। लेकिन अगर इन दोनों तस्वीरों में भीतर संघर्ष हो जाए तो वह व्यक्ति कभी भी शांति से जी न पाएगा और इन दोनों तस्वीरों में संघर्ष हो जाता है।
अभी इजराइल में वह एक प्रयोग करते हैं। और उस प्रयोग ने बड़ी सफलता पाई है। वह इस मोमेंट ऑफ एकसपोजर को ध्यान में रखकर किया गया प्रयोग है, और आज नहीं कल, सारी दुनिया को करना पड़ेगा। वे छोटे बच्चे को मां के पास ज्यादा देर नहीं पालते हैं। बल्कि हर तीन महीने में उसकी नर्स बदलते रहते हैं। ताकि उसके मन में किसी एक स्त्री का कोई फिक्सेशन, कोई एक चित्र न बन पाए। वह बड़ा होते-होते बीस-पच्चीस नर्सों को मां जैसा प्रेम करे और मां बदलती चली जाए। बीस-पच्चीस चित्र बने तो धुंधला हो जाएगा। कोई एक चित्र भीतर न रह जाएगा। और यह अनुभव किया गया है कि वैसा बच्चा फिर किसी भी स्त्री को ज्यादा सरलता से प्रेम कर सकता है, बजाय उस बच्चे के जो अपने ही मां के चित्र पूरी तरह निश्चितता से भीतर पकड़ लेता है और जिसका चित्र बहुत साफ होता है, जिसका चित्र धुंधला नहीं होता।
अब सारा दांपत्य सड़ गया है। सारा दांपत्य दुख की सूली से भरा हुआ है।
सब सूली पर लटके हुए हैं। लेकिन कोई भीतर उतरकर देखने की फिक्र में नहीं है कि कारण कहां है और क्या है? लड़के के मन में मां का चित्र बैठ जाए, यह तो ठीक है, लेकिन लड़की के मन में भी मां का चित्र बैठ जाए तो बहुत कठिनाई हो जाती है। जरूरी है कि लड़की के मन में बाप का चित्र बैठे। लेकिन हमारी जो व्यवस्था है उसमें सब बच्चों को मां पालती है, बाप तो किन्हीं को पालता नहीं है। आने वाले भविष्य में लड़कियां बाप के निकट ज्यादा पाली जानी चाहिए, लड़के मां के निकट ज्यादा पाले जाने चाहिए, तभी हम दांपत्य जीवन से दुख और पीड़ा और कलह को हटा पाएंगे। अन्यथा नहीं हटा पाएंगे। इसलिए आज तक पांच हजार वर्षों में जितने विवाह के प्रयोग हुए हैं, सभी असफल हो गए हैं, क्योंकि प्रयोग ऊपर से होते हैं, भीतर कुछ और गहरी जड़ें हैं, जो हमारे ख्याल में भी नहीं हैं। लड़की के मन में भी अगर मां का चित्र बैठ जाए तो बहुत खतरा है। खतरा यह है कि हो सकता है, वह किसी पुरुष को कभी ठीक से पूरा प्रेम न कर पाए। वह पहले क्षण में जो तस्वीर बैठ गई है, वह तस्वीर खतरनाक हो सकती है। पहली तस्वीर लड़की के मन में पुरुष की ही बैठनी चाहिए, वह भी एक ही पुरुष की नहीं बैठनी चाहिए, वह भी उचित है कि और ज्यादा पुरुषों की बैठे। ताकि कोई निश्चित तस्वीर न हो। और निश्चित तस्वीर की खोज जिंदगी में शुरू न हो जाए।
अगर यह हो सके तो हम दांपत्य के दंश को, कलह को दुख को, सफरिंग को अलग
कर सकते हैं। अन्यथा नहीं कर सकते हैं, लेकिन इस सब पर कोई ध्यान नहीं है। और एक आदमी अशांत हो गया है, एक-एक आदमी पीड़ित हो गया है, एक-एक आदमी अपनी अशांति और पीड़ा के लिए तरकीबें खोजता फिरता है। वह पूछता है, मैं शांत

कैसे हो जाऊं। जब कि अशांति के कारण इतने गहरे हैं, इतने सामूहिक हैं और इतने अतीत से जुड़े हुए हैं कि उस एक व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर हो जाता है कि वह कुछ कर पाए। वह करीब-करीब विवश, भाग्य के हाथों में बंधा हुआ अनुभव करता है। कुछ भी नहीं कर पाता है, तड़फता है, परेशान होता है और मर जाता है।
क्या हम कभी एक ऐसे समाज का चिंतन करेंगे?
करना पड़ेगा। करना अत्यंत जरूरी है। अन्यथा मनुष्य का भविष्य नहीं है कोई। अब हम उस जगह आ गए हैं, जहां मनुष्य ने जो बीमारियां अतीत में पाली थीं, वह अपनी पूर्णाहुति पर पहुंच रही हैं, और हो सकता है, यह पर्दा गिरने के करीब हो यह पूरा आदमी का समाज नष्ट हो जाएगा। ऐसा होता है, पानी गर्म करते हैं तो एक डिग्री पर पानी भाप नहीं बनता है। दस डिग्री पर भी नहीं बनता, नब्बे डिग्री पर भी नहीं बनता, निन्यानबे डिग्री पर भी पानी भाप नहीं बनता, भाप तो सौ डिग्री पर बनता है। लेकिन जब सौ डिग्री पर बनता है, तो कोई कह सकता है कि यह गलती इस आखिरी डिग्री की है, जिसकी वजह से यह पानी भाप बनता है। यह निन्यानबे डिग्रियां जो अतीत में इकट्ठी थीं, उनका ख्याल भी न आए।
आज आदमी की जिंदगी में जो सब तरफ से रोग प्रकट हो गए हैं--हिंसा है, वेध है, वैमनस्य है, युद्ध है, ये सारे के सारे आज पैदा नहीं हो गए हैं। कोई यह न समझे कि रामराज्य का इसमें कोई हाथ नहीं है। कोई यह न समझे कि क्राइस्ट के जमाने का कोई हाथ नहीं है। यह उन सब जमानों का हाथ है। हम तो आखिरी डिग्री भर जोड़ रहे हैं पानी के भाप बनने में, और कुछ नहीं कर रहे हैं। यह जो पिछले पांच हजार वर्षों में, जैसा आदमी बनाया है, वह आखिरी जगह पहुंच गया है, जहां आखिरी डिग्री जुड़ जाए तो सब भाप बन जाए। और हम भाप बनने के करीब खड़े हो गए हैं। इसलिए बहुत चिंता की बात भी है, चिंतन की भी, विचार की भी, सोचने की भी, खोज करने की भी।
मैं कुछ दो-तीन और छोटी बातें इस संबंध में कहूं और अपनी बात पूरी करूं।
एक-एक व्यक्ति को अब तक हमने अतीत का सदस्य बनाया है। भविष्य का सदस्य नहीं बनाया है। इसे बनाने के लिए हम बहुत तरकीब उपयोग में लाए हैं। सबसे बड़ी तरकीब तो हम यह उपयोग में लाए हैं कि अतीत के आदर्श पुरुषों को हमने एक-एक बच्चे के ऊपर थोप दिया है। हम उनसे कहते हैं, राम जैसा बनो, बुद्ध जैसे बनो, महावीर जैसे बनो। जैसे खुद जैसे होना कोई कसूर हो। कोई अपराध हो। और हर आदमी अपने जैसा होने को पैदा हुआ है। कोई आदमी दूसरे जैसा हो नहीं सकता है। कोई राम नहीं बन सकता। और बने, तो बनाने की जरूरत भी नहीं है। और बन भी सकता हो तो बड़ी कृपा होगी कि न बने। क्योंकि जब कोई दूसरे की नकल बनता है तो उसकी आत्मा खो जाती है। वह सिर्फ अभिनय रह जाता है, उसकी आत्मा नहीं रह जाती। आत्मा तो तभी होती है, जब कोई व्यक्ति होता है, स्वयं होता है। आथेंटिकली इंडिवीजुअल अब कोई होता है ही आत्मा तो होती है। अन्यथा आत्मा नहीं होती है। राम के पास आत्मा रही होगी, लेकिन रामलीला के रामों के पास कोई आत्मा नहीं होती। लेकिन रामलीला के राम बनने के लिए निरंतर उपदेश दिए जा रहे हैं।
अतीत के महापुरुषों को हम भविष्य के बच्चों पर थोप रहे हैं, जब कि भविष्य के बच्चे भविष्य के नागरिक होंगे। अतीत को हम उनके ऊपर न थोपें। काफी है कि हम राम से परिचित करा दें, लेकिन कभी भूल कर यह न कहें कि राम जैसे बन जाओ। बल्कि हम निरंतर कहें कि राम पांच हजार साल के आदमी हैं और तुम्हें भविष्य का आदमी बनना है। राम तुम्हारे लिए जरा भी सहयोगी नहीं हो सकते। तुम राम को समझ लो और इसीलिए समझ लो कि कहीं भूल-चूक से ही राम जैसे मत हो जाना। क्योंकि राम पांच हजार साल पुराने आदमी हैं। राम तुम्हें नहीं बनना है। और बनोगे तो बहुत मुसीबत में पड़ जाओगे।
आज अगर कोई आदमी कृष्ण बन जाए बंबई की सड़कों पर, तो आप समझते हैं कि क्या होगा? सिवाय पुलिसखाने के वह और कहीं नहीं पहुंचाया जाएगा। फौरन पुलिसखाने में पहुंचा दिया जाएगा। कृष्ण बड़े प्यारे आदमी हैं, बहुत अद्भुत आदमी हैं। लेकिन पांच हजार साल पहले का अद्भुत आदमी आज बिल्कुल

बेमानी है। आज कोई मतलब नहीं है। आज कृष्ण जैसा बन कर खड़ा हो जाना बहुत नाटकीय मालूम पड़ेगा, बहुत ड्रामेटिक मालूम पड़ेगा। तो रंगमंच पर, रामलीला में, कृष्ण लीला में, कहीं रासलीला चलती हो तो ठीक है, लोग बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन सड़क पर अगर पा लिया तो बहुत मुश्किल हो जाएगा।
अतीत को हम थोपते हैं बच्चों पर! पहले थोपने का ढंग यह है कि अतीत के महापुरुषों की तस्वीर उनके मन में बिठाते हैं, जो कि बिल्कुल गलत है। जो कि वह कभी नहीं हो सकता। और अगर वह तस्वीर उनके मन पर बैठ गई तो निरंतर सेल्फ कंडेमनेशन अनुभव करेंगे। जिंदगी भर अनुभव करेंगे कि मैं अभी राम जैसा नहीं हो पाया। एक स्त्री अनुभव करेगी कि मैं सीता जैसी नहीं हो पाई। सीता जैसी होना चाहिए थी। मैं सीता जैसी नहीं हो पाई उसकी सारी जिंदगी एक मुसीबत और एक कष्ट बन जाएगी, एक दुख बन जाएगी। जब हम कहते हैं किसी आदमी से, तुम किसी और जैसे हो जाओ तो हम उसको आत्म-निंदा का पाठ सिखा रहे हैं। और जो आदमी आत्म-निंदा का पाठ सीख लेता है, उस आदमी के आनंद की कोई संभावना शेष नहीं रह जाती।
आनंद तो आएगा आत्म-प्रफुल्लता, से आनंद तो आएगा आत्मस्वीकृति से। आनंद तो आएगा मैं जैसा हूं, उसमें मैं आनंदित हो सकूं। लेकिन हमारी शिक्षा कहती है, उसमें कभी आनंद मत लेना जैसे तुम हो! आनंदित तुम तब हो सकते हो जब तुम बनो राम, जब तुम बनो कृष्ण, जब तुम बनो क्राइस्ट, तब तुम आनंदित हो सकते हो। तो हम ढांचे थोपते हैं बच्चे के ऊपर। वे ढांचे उनको निंदित कर देते हैं सदा के लिए। जिंदगी भर जीते हैं, लेकिन उन्हें ऐसा लगता है कि वे ठीक जीवन नहीं जी रहे हैं। वे कुछ गलत जीवन जी रहे हैं, क्योंकि स्त्री सीता नहीं बन पाई है, क्योंकि आदमी राम नहीं बन पाया, क्योंकि आदमी कृष्ण नहीं बन पाया। जरूर कुछ गलती हो गई, मैं गलत जीवन जी रहा हूं। और अगर सारी दुनिया ऐसा अनुभव करती हो कि हम गलत जीवन जी रहे हैं तो ठीक जीवन कैसे पैदा हो सकता है। ठीक जीवन की बुनियादी आधारशिला यह होगी कि हम प्रत्येक व्यक्ति को उसके जैसा बनने की क्षमता, स्वतंत्रता, मुक्ति और सहयोग दें। जो आदमी जो बन सकता हो, उसके लिए हम सहयोगी हों। अभी हम सब बाधक हैं, वह जो बन सकता है।
रवींद्रनाथ के घर में एक पुरानी किताब रखी हुई है। उस किताब में घर के लोग, घर में जो छोटे बच्चों के जन्म दिन होते हों, उन जन्म दिनों पर घर के बच्चों के संबंध में अपने रिमार्क लिखते थे, अपनी टिप्पणियां लिखते थे। रवींद्रनाथ के तो दस ग्यारह भाई बहन थे, बड़ा परिवार था। लेकिन उस घर की किताब में सब बच्चों के संबंध में अच्छे रिमार्क्स हैं, रवींद्र के बाबत कोई अच्छा रिमार्क नहीं है। रवींद्र के बाबत रवींद्रनाथ की मां ने लिखा है कि रवींद्र से हमें कोई भविष्य में आशा नहीं है। यह लड़का न मालूम कैसे हमारे घर में पैदा हो गया। क्योंकि बाकी सब बच्चे कोई फर्स्ट क्लास आता है, कोई गोल्ड मैडल लाता है। इस लड़के की पास होने की उम्मीद ही बहुत मुश्किल है। रवींद्रनाथ पर बहुत थोपने की कोशिश की उन्होंने कि तुम ऐसे बन जाओ, वैसे बन जाओ, लेकिन वह लड़का नहीं बना। और बड़ी कृपा की उस लड़के ने कि मां-बाप की नहीं मानी और नहीं बना। अगर बन जाता तो दुनिया एक बहुत अच्छे आदमी से वंचित रह जाती। लेकिन बहुत से लोग बन गए हैं और दुनिया बहुत अच्छे लोगों से वंचित हो गई है।
हम सब थोप रहे हैं, ऐसे बन जाओ। रवींद्रनाथ का रवींद्रनाथ होना ही आनंदपूर्ण है। किसी और जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है। और यह रवींद्रनाथ के लिए ही सही नहीं है, एक साधारण से साधारण आदमी का अपने जैसा होना ही काफी है। वह अपनी ही खुशबू से जी सकता है और अपनी ही जिंदगी और अपने ही रास्ते पर चल सकता है। उसका अपना गीत होगा, अपने चरण होंगे, अपना नृत्य होगा। कोई हर्ज नहीं कि बहुत बड़े मंचों पर उसका नाम न लिया जाए, और कोई हर्ज नहीं कि बड़ी राजधानियों में उसका शोरगुल न हो, और कोई हर्ज नहीं कि अखबारों के पहले पृष्ठ पर उसका नाम न हो। कोई हर्ज नहीं, क्योंकि जिंदगी अखबारों से संबंधित नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि अखबारों की तलाश में केवल वे ही लोग घूमते हैं, जो जिंदगी का आनंद नहीं भोग पाए हैं। असल में राजधानियों से जिंदगी का कोई संबंध नहीं है। राजधानियों की खोज और तलाश

सिर्फ उन्हीं मनों में है, जो जिंदगी की राजधानी में नहीं पहुंच पाए हैं। असल में दूसरा मेरी प्रशंसा करे, इससे जिंदगी का क्या संबंध है?
जिंदगी का संबंध है कि मैं आनंदित हो जाऊं। जिंदगी जीने में है, किसी
की प्रशंसा में नहीं है, और किसी के आदर में नहीं है। लेकिन हम एक-एक बच्चे को यह कह रहे हैं कि तू सम्मानित जीवन जीना! दूसरे लोगों की तरफ ध्यान रखना कि दूसरे लोग क्या कहते हैं। जो गलत दूसरे लोग कहते हों, वह कभी मत करना, और जो दूसरे लोग ठीक कहते हों, वह सदा करना! हम उस बच्चे को जिंदगी जीने से तोड़ रहे हैं कि तू निरंतर उधार जिंदगी जीना। दूसरों की आंखों में पहले देख लेना कि लोग क्या कहते हैं!
लोग क्या कहते हैं, इससे जीवन का कोई संबंध नहीं है। तुम क्या अनुभव करते हो, इससे जीवन का संबंध है। लेकिन कोई मां-बाप अपने बेटे को यह नहीं कह रहे हैं कि तू जिंदा रहना अपनी हैसियत से जीना। और चाहे सारी दुनिया भी गलत कहती हो, लेकिन अगर तुझे आनंदपूर्ण मालूम पड़ता हो और तुझे शांतिपूर्ण मालूम पड़ता हो तो तू अपने रास्ते पर जाना, दुनिया की फिक्र मत करना। सच तो यह है कि राजपथों पर चलने वाले लोगों को आनंद की कोई झलक भी नहीं मिलती है। जो पगडंडियों पर जाते हैं, अपनी-अपनी जिंदगी की पगडंडियों पर जाते हैं, वे ही केवल जीवन के गहन रहस्य में प्रवेश कर पाते हैं। सीमेंट से पटे हुए जो राजपथ हैं, वे राजधानियां पहुंचाते हैं, लेकिन जंगलों में जाने वाली जो गहरी पगडंडियां हैं जहां आदमी को अकेला चलना पड़ता है अपना रास्ता बनाते हुए, वहां जिंदगी की गहराइयों की पहुंच है। लेकिन हम यह कभी नहीं सिखाते। तीसरी बात, हम कभी बच्चे को नहीं सिखाते, नहीं सिखा पाते। न हमने सीखा है, न सिखा पाते हैं कि वह जो चारों तरफ विराट ब्रह्यांड फैला हुआ है, उससे हमारा कोई संबंध है। हम सिर्फ आदमियों से संबंध जुड़वाते हैं। हम कहते हैं, यह रही तेरी मां, यह रहे तेरे पिता, यह रहे तेरे भाई, यह रही तेरी बहन। लेकिन चांद-तारों से कोई संबंध है? समुद्र की लहरों से काई संबंध है? आकाश में भटकने वाले बादलों से कोई संबंध है? वृक्षों पर खिलने वाले फूलों से कोई संबंध है? धूप से कोई संबंध है? छाया से कोई संबंध है, पत्थरों से, रेत से कोई संबंध है, पृथ्वी से कोई संबंध है?
नहीं कोई संबंध नहीं है। आदमी ने आदमी के बीच संबंध बना लिए हैं और सारे जगत से संबंध तोड़ लिए हैं। जब कि जिंदगी कभी भी रसपूर्ण नहीं हो सकती, जब तक कि हम समग्र से न जुड़ जाएं। ऐसे हम जुड़े हैं, लेकिन मन में हम टूट गए हैं। आप समुद्र के किनारे बैठकर कभी आनंदित हो लेते हैं, हों क्षण भर को, पर कभी आपने जाना है कि यह आनंद क्यों आपको हो रहा है? समुद्र की लहरों से? यह समुद्र के पास आपको एक शांति क्यों मालूम पड़ रही है? यह समुद्र के गर्जन में आपको अपनी आत्मा की आवाज क्यों सुनाई पड़ती है, कभी आपने सोचा है?
शायद आपको पता भी न हो, करोड़ों-करोड़ों वर्ष पहले आदमी का पहला जन्म तो समुद्र में ही हुआ था, और आज भी आदमी के भीतर जो खून बह रहा है, उसमें उतना ही नमक है, जितना समुद्र के पानी में। आदमी के भीतर जो पानी है उसमें समुद्र के पानी और नमक का जो अनुपात है, वही अनुपात आज भी आदमी के भीतर के पानी और नमक में है। आज भी पानी वही बह रहा है। मां के पेट में जो बच्चा गर्भ में होता है, उस गर्भ को चारों तरफ से पानी घेरे रहता है, उसमें अनुपात नमक का वही है, जो समुद्र में है। उसी से तो वैज्ञानिक पहली दफा इस ख्याल से पहुंचे, हो न हो किसी न किसी तरह आदमी कभी पहली दफा, उसका पहला जीवन समुद्र से शुरू हुआ होगा। आज भी उसके पास पानी का अनुपात वही है। आज भी बच्चा उसी पानी में तैरता और बड़ा होता है। आज भी हमारे शरीर में नमक का जरा सा अनुपात गिर जाए तो हम मुश्किल में पड़ जाएंगे। नमक का अनुपात वही रहना चाहिए, जो समुद्र में है! जब आप समुद्र के पास जाते हैं, तब आपके पूरे शरीर और पूरे व्यक्तित्व में समुद्र कोई सहानुभूति की लहरें उठा देता है आप उसी के हिस्से हैं। आप कभी मछली थे। हम सब कभी मछली थे। उसके निकट जाकर हमारे भीतर वही लहरें उठ आती हैं।
जब पहाड़ पर जाते हैं और देखते हैं हरे वृक्षों के विस्तार को तो मन एकदम शांत होता है। हरे विस्तार को देख कर आनंदित होता है। क्या बात है

हरे रंग में? हमारे सारे खून में, हमारी सारी हड्डियों में वृक्षों से लिया हुआ सब कुछ घूम रहा है। हम उनसे ही बने हैं, हम उनसे ही जुड़े हैं।
जब ठंडी हवाओं की लहरें आती हैं और आप उन हवाओं में बहे चले जाते हैं,
तो एक खुशी, एक प्रफुल्लता भर जाती है। क्यों? क्योंकि हवा हमारा प्राण है। हम जुड़े हैं, हम अलग नहीं हैं।
जब रात को पूर्णिमा के चांद को आप देखते हैं तो कोई गीत आपके भीतर झरने लगते हैं और कोई कविता फूटने लगती है। अंग्रेजी में शब्द है लुनार, चांद के लिए। और पागल को कहते हैं लुनाटिक। वह भी उसी से बना हुआ शब्द है। हिंदी में भी कहते हैं पागल को चांदमारा। ऐसा ख्याल है कि पूर्णिमा के दिन जितने लोग पागल होते हैं, किसी और दिन नहीं होते हैं। कुछ कारण है। पूर्णिमा का चांद हमारे भीतर न मालूम कैसी लहरें ले आता है। समुद्र में ही लहरें नहीं आतीं, समुद्र ही ऊपर उठकर चांद को छूने को चला जाता है, ऐसा नहीं है। हमारे प्राण भी किन्हीं गहरी गहाराईयों में, हमारे प्राणों की तरंगें भी चांद को छूने को उठ जाती हैं। लेकिन चांद से हमारा कोई नाता नहीं है, कोई रिश्ता नहीं है!
हमने सब तरफ से जिंदगी को तोड़ लिया है। और अगर आदमी सब तरफ से जिंदगी
को तोड़ेगा और सिर्फ आदमियों की दुनिया बनाएगा, वह दुनिया उदास होगी, दुखी होगी, वह दुनिया सच्ची नहीं होगी, क्योंकि वह दुनिया वास्तविक नहीं है। उसकी जड़ें पूरे ब्रह्यांड पर फैलनी चाहिए। मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जिसका संबंध आदमियों से ही नहीं है, जिसका संबंध सारे जीवन में फैल गया है। एक पशु के साथ भी उसका संबंध है, एक पौधे के साथ भी, एक पक्षी के साथ की।
आकाश में भी देखा है कभी कोई परों पर तिरती हुई चील को? उसे देखते रहें
तो ध्यान में चले जाएंगे। कैसा निष्प्रयास, इफर्टलेस एक चील आकाश में परों को फैला कर खड़ी रह जाती है! कभी उसे गौर से देखते रहें तो भीतर कोई चील आपके भी पर फैला देगी और बह जाएगी।
जिंदगी सब तरफ से जुड़ी है और आदमी ने उसे तोड़ दिया है। तोड़ी हुई जिंदगी विक्षिप्त हो गई है। इसलिए मैंने कहा, हम समाज नहीं बना पाए, हमने अजायबघर बना लिया है। समाज बनाने में अभी हम बहुत दूर हैं। हमने कठघरे बना लिए हैं, आदमी को प्रकृति से तोड़ दिया है और एक कृत्रिम और एक आर्टीफीशियल आदमी हमने खड़ा कर दिया है। वह आदमी बड़े धोखे का है। एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
एक कवि एक गांव के पास से गुजरता था, उसने खेत में एक झूठे आदमी को खड़ा हुआ देखा। आपने भी खेतों में झूठे आदमी देखे होंगे? अगर खेत देखे हों, तो वहां झूठा आदमी भी देखा होगा, क्योंकि अब तो खेत देखना भी बड़ी मुश्किल बात हो गई है। अभी लंदन में बच्चों का एक सर्वे किया गया तो दस लाख बच्चों ने गाय नहीं देखी है। वे बच्चे पूछने लगे, गाय यानी क्या? दस लाख बच्चों ने लंदन में गाय नहीं देखी! तीन लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा! वह कवि खेत के पास से गुजर रहा है। वहां उसने एक झूठे आदमी को खड़ा देखा। उस कवि के मन में बड़ी दया आ गई। वह उस झूठे आदमी के पास गया। हंडी का सिर है, डंडे लगे हैं, कुरता पहने है। उस कवि ने उसे झूठे आदमी से पूछा मित्र, खेत में खड़े-खड़े थक जाते होंगे, और काम भी बड़ा उबाने वाला है। वर्षा, सर्दी, रात दिन, धूप, गर्मी, कुछ भी है, तुम यहीं खड़े रहते हो! ऊब नहीं जाते हो? घबड़ा नहीं जाते हो? कभी छुट्टी नहीं मनाते हो?
उस झूठे आदमी ने कहा, बड़ा मजा है इस काम में। दूसरों को डराने में इतना मजा आता है कि अपनी तकलीफ पता ही नहीं चलती। रात-दिन डराता हूं। कोई आ जाता है, फिर उसको डरा देता हूं; फिर कोई आ जाता है, उसको डरा देता हूं। इतना मजा है कि फुरसत ही नहीं मिलती दूसरों को डराने से कि मैं खुद अपनी चिंता करूं। वह कवि सोचने लगा। उसने कहा, बात तो बड़ी ठीक कहते हो। मैं भी जब किसी को डरा पाता हूं तो बड़ा आनंद आता है। वह झूठा आदमी हंसने लगा, उसने कहा कि तब तुम भी झूठे आदमी हो, क्योंकि सिर्फ झूठे आदमियों को ही दूसरों को डराने में आनंद आता है। तुम भी घास-फूस के आदमी हो, तुम्हारे ऊपर भी हंडी लगी है और डंडे लगे हैं और कुरता पहन लिया है।

मैं सोचने लगा, झूठे आदमी और सच्चे आदमी में फर्क क्या है? हंडी लगी हो, डंडे लगे हों, कुरता पहना हो--इसमें और मुझमें फर्क क्या है?
फर्क इतना ही है कि यह अपने में बंद है, इसकी कोई जड़ें जीवन से जुड़ी हुई नहीं हैं। इसकी कहीं श्वास नहीं जुड़ी है। किसी आकाश से इसका मन नहीं जुड़ा है। किन्हीं वृक्षों से इसका खून नहीं जुड़ा है। किन्हीं समुद्रों से इसका पानी नहीं जुड़ा है। इसके भीतर कोई जोड़ नहीं है बाहर से। यह सब तरफ से टूटा अपने में बंद है। इसका कोई जोड़ ही नहीं है, इसलिए यह झूठा है।
और सच्चे आदमी का क्या मतलब होता है?
कि वह जुड़ा है, सबसे जुड़ा है, रग-रग, रेशा-रेशा, कण-कण जुड़ा है। सूरज से जुड़ा है, चांद से जुड़ा है। समुद्रों से जुड़ा है, आकाश से जुड़ा है, सबसे जुड़ा है। जितना जो आदमी ज्यादा जुड़ा है, उतना सच्चा होगा और जितना ज्यादा टूटा है, उतना हंडी रह जाएगी, लकड़ियां रह जाएंगी, कुरता रह जाएगा।
और करीब-करीब आदमी झूठा हो गया है। सारी मनुष्यता हंडी वाली, लकड़ी वाली, कुरते वाली मनुष्यता हो गई है। वहां भीतर कोई आत्मा नहीं है, क्योंकि आत्मा तो अनंत जोड़ से उत्पन्न होने वाली संभावना है। इस संबंध में कल आप से बात करूंगा।
सुबह जो मित्र ध्यान के लिए आते हैं वह ठीक आठ बजे के पहले पहुंच जाएं, स्नान करके और घर से ही चुप चलें, और वहां भी कोई बात न करें।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

करुणा और क्रान्ति
पांचवां प्रवचन

अरूप की झलक

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैंने सुना है, किसी अज्ञात ग्रह पर निवास करने वाले लोग एक बड़े पागलपन से पीड़ित हैं। उस ग्रह के निवासियों को यह ख्याल पैदा हो गया है कि जमीन पर पैर रख कर खड़ा होना पाप है। वे अपने बच्चों को बचपन से ही शीर्षासन करना सिखा देते हैं, सिर के बल खड़ा होना सिखा देते हैं! उन बच्चों के पैर चलने के योग्य नहीं रह जाते हैं। जीवन की जरूरतें कभी-कभी उन बच्चों को भी चलने को मजबूर करती हैं, क्योंकि सिर के बल चला नहीं जा सकता, सिर्फ खड़ा हुआ जा सकता है। मजबूरियों में उनके बच्चों को चलना पड़ता है, लेकिन तब उनके पैर बहुत लड़खड़ाते हैं। वे ज्यादा चल भी नहीं सकते, और सबसे बड़ी कठिनाई पैरों की कमजोरी से नहीं आती, इस बात से आती है कि चलते समय बच्चे समझते हैं कि वे कोई बड़ा जघन्य अपराध कर रहे हैं, पाप कर रहे हैं। चलते हैं तो पाप मालूम पड़ता है, सिर के बल खड़े रहें तो जीना मुश्किल हो जाता है। उस जाति में कुछ लोग ऐसे विशेषज्ञ हो गए हैं कि जीवन भर सिर के बल खड़े-खड़े ही बिता देते हैं! शेष लोगों को कभी-कभी सिर के बल से नीचे उतरना पड़ता है, पैरों से चलना पड़ता है। रात में सोते समय शीर्षासन करना मुश्किल हो जाता है। दिन में खाना खाते समय भी, खेत में काम पर जाते समय भी शीर्षासन में रहना मुश्किल हो जाता है।
उस ग्रह पर दो तरह के प्राणियों की जातियां हो गई हैं। एक वे लोग जो सोते समय शीर्षासन से नीचे उतर आते हैं, खेती करते समय पैर के बल चलते हैं, संसारी समझे जाते हैं। और दूसरे जो लोग चौबीस घंटे शीर्षासन में खड़े रहते हैं, संन्यासी समझे जाते हैं। जो सिर के बल ही खड़े रहते हैं, वे तो पागल हो गए हैं, क्योंकि सिर के बल खड़ा रहना सिर में इतना खून पहुंचा देता है कि सिर की सब शिराएं नष्ट हो जाएंगी। जो सिर के बल खड़े हुए हैं, उनका सिर धीरे- धीरे पैरों की स्थिति में आ गया है, उतना ही जड़ हो गया है। और जो सिर के बल नहीं खड़े हैं, वे भी पागल हो गए हैं, क्योंकि पूरे वक्त उन्हें ऐसा लगता है कि पैरों के बल खड़े होना जघन्य अपराध है और इसलिए नरक की अग्नि में पड़ना जरूरी हो गया है! वे भी विक्षिप्त हो गए हैं।
जब मैंने यह बात सुनी थी, तो बहुत हैरान हुआ था। मैंने सोचा, ऐसा कोई ग्रह कहां हो सकता है? लेकिन तब मुझे यह पता न था कि हमारी पृथ्वी ही वह ग्रह है। तब इस पृथ्वी के रहन-सहन के ढंग के संबंध में मेरी समझ कम थी। तो मैं सोचता था कि कहीं किसी चांद-तारे पर वह ग्रह होगा, जहां लोग ऐसे पागल होंगे। लेकिन जब मैंने आदमी को पास से देखा तो पाया कि हर आदमी शीर्षासन किए खड़ा है। यह पृथ्वी वह ग्रह है, जहां के सारे लोग पागल हो गए हैं। इस शीर्षासन करने की प्रवृत्ति ने ही सारे जीवन को विकृत, कुरूप, अपंग दुख और पीड़ा से भर दिया है।
इस उलटे होने की प्रक्रिया में हमने क्या-क्या किया है, उन-उन बिंदुओं
पर मैं आज बात करना चाहता हूं। उल्टे होने की प्रक्रिया में जो नीचे होना चाहिए, उसे हमने ऊपर कर दिया है और जो ऊपर होना चाहिए, नीचे कर दिया है, एक आदमी शीर्षासन करता है तो यही तो करता है, सिर जो ऊपर होना चाहिए नीचे कर देता है, पैर जो नीचे होने चाहिए, उन्हें ऊपर कर देता है। अगर हम उल्टा मकान बनाएं, शीर्षासन करता हुआ, तो उसकी नींव ऊपर होगी और उसका शिखर नीचे होगा। अभी तक हमने ऐसा मकान बनाने की कोशिश नहीं की, क्योंकि हम जानते हैं कि वह निपट पागलपन है। लेकिन जिंदगी हमने ऐसी बनाने की कोशिश की है, जिसे हमने उलटी कर दिया है। आधार ऊपर कर दिए हैं और शिखर नीचे कर दिए हैं।
जिस दिन आदमी ने यह समझा कि मोक्ष पाने योग्य है और पृथ्वी छोड़ देने योग्य है, जिस दिन आदमी ने यह समझा कि जीवन बुरा है और मृत्यु के बाद कोई अच्छा जीवन है, जिस दिन आदमी ने ऐसा समझा कि शरीर पाप है और आत्मा पुण्य है--उसी दिन आदमी के जीवन का भवन उलटा हो गया। तब से हम बुनियाद को इनकार कर रहे हैं और शिखर का सम्मान कर रहे हैं। कोई शिखर बिना बुनियाद के खड़ा नहीं

हो सकता। बड़े मजे की बात है, बुनियाद तो बिना शिखर के हो सकती है, लेकिन शिखर बिना बुनियाद के नहीं हो सकता। एक मकान हम बनाएं और जमीन में सिर्फ बुनियाद डाल दें तो बुनियाद तो हो सकती है, लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते कि मंदिर का सिर्फ शिखर बना दें और उसकी बुनियाद न हो। पृथ्वी तो बिना मोक्ष के हो सकती है, लेकिन मोक्ष बिना पृथ्वी के नहीं हो सकता। एक आदमी इस तरह जी सकता है कि आत्मा की उसे खबर ही न रह जाए, केवल शरीर में जी सके। लेकिन कोई भी आदमी केवल आत्मा में नहीं जी सकता, शरीर में ही जीना पड़ेगा।
जीवन में जो जितना श्रेष्ठ है, वह अपने से निकृष्ट पर निर्भर होता है।
एक वीणा तो हो सकती है, जिसमें संगीत न बज रहा हो, अभी जिसके तार न छेड़े गए हों। ऐसी वीणा हो सकती है, जो सोई हो, जिसके तार न छिड़ गए हों, जिसमें संगीत न बज रहा हो, लेकिन ऐसा संगीत नहीं हो सकता, जो बिना वीणा के हो और बज रहा हो।
जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह निकृष्ट पर खड़ा हुआ है, और इसलिए जिसे हम निकृष्ट कहते हैं, वह भी निकृष्ट नहीं है, क्योंकि श्रेष्ठ का वह आधार है। और श्रेष्ठ का आधार निकृष्ट कैसे हो सकता है? वीणा निकृष्ट कैसे हो सकती है? संगीत श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? क्योंकि संगीत वीणा से ही पैदा होता है।
कल दो संन्यासी मुझसे मिलने आए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि हमें ध्यान करना है, ध्यान सीखना है। तो मैंने उनसे पूछा कि पागल हो गए हो? संन्यासी कैसे हो गए बिना ध्यान किए? क्योंकि ध्यान से अगर संन्यास न आया हो तो संन्यास आ ही कैसे सकता है? यह तो बिना नींव के शिखर रखने की बात है। उन्होंने कहा, अब तो हो गया, लेकिन अब हम सीखना चाहते हैं। हमें ध्यान सीखना है। मैंने उनसे कहा, कल सुबह आ जाओ ध्यान की बैठक में। तो उनमें से एक ने पूछा, वहां स्त्रियां तो न होंगी? मैंने कहा, क्या बिना स्त्रियों के नहीं आ सकोगे? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है, अगर स्त्रियां हों तो हम न आ सकेंगे, क्योंकि स्त्रियों को देखना पाप है। और अगर स्त्री का स्पर्श हो जाए, तब तो हमें उपवास करके प्रायश्चित करना होगा। मैंने उनसे पूछा कि तुम किसी स्त्री से पैदा हुए हो कि किसी पुरुष से पैदा हुए हो? और तुम्हारे खून में किसी स्त्री का खून बहता है, तुम्हारी हड्डियां किसी स्त्री की हड्डी से बनी हैं। तुम्हारा मांस कहां से आया है, तुम्हारी चमड़ा कहां से आई है? तुम कहां से आए हो? और आज स्त्री को देखने से तुम्हें पाप लगता है, और स्त्री के छू लेने से तुम्हें प्रायश्चित करना होगा! और उनके शरीर में जो है, वह सब स्त्री से आया हुआ है।
ये शीर्षासन करते हुए लोग हैं, जो जिंदगी की बुनियाद से इनकार करना चाहते हैं, जहां जिंदगी खड़ी है, उसे इनकार करना चाहते हैं। ये ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि हम जड़ों को इनकार कर देंगे, क्योंकि जड़ें जमीन में गड़ी हैं, अंधेरे में पड़ी हैं, न मालूम जमीन गंदी हो अंधेरे में। और नरक की तरफ जड़ें जाती हैं और हम जड़ों को इनकार करते हैं। हम तो सिर्फ फूलों को स्वीकार करते हैं, जो वृक्षों में ऊपर लगते हैं, आकाश की तरफ उठते हैं, सूरज की तरफ खिलते हैं। हम तो सिर्फ फूलों को स्वीकार करते हैं, जड़ों को हम स्वीकार नहीं करते। लेकिन कोई फूल देखा है, जो बिना जड़ों के खिल गया हो। और अगर फूल जड़ों के बिना आते ही नहीं तो जड़ें निकृष्ट कैसे हो जाएंगी? सच तो यह है कि जड़ें उस अंधेरे से जो इकट्ठा कर रही हैं, वही फूलों में जाकर प्रकट हो रहा है। जड़ें जो जमीन से खोज ला रही हैं, वही फूलों में आकाश की तरफ प्रकट हो रहा है। असल में फूल जड़ों के अंतिम छोर हैं। जड़ों ने कमाया है, मेहनत की है, फूलों में प्रकट किया है और सुरभि को लुटा दिया है।
लेकिन कुछ लोग हैं, जो कहेंगे कि जड़ें हमें बरदाश्त नहीं, क्योंकि जड़ें अंधेरे में हैं, जमीन के नीचे हैं, नरक की तरफ जाती हैं। हम तो सिर्फ फूल पसंद करते हैं। जड़ों को काट डालो और फूलों का बचा लो। हो सकता है, जड़ें काट डाली जाएं तो फूल बच सकते हैं, लेकिन वे कागज के फूल होंगे या प्लास्टिक के होंगे, असली फूल नहीं होंगे। कागज के फूलों की जरूर कोई जड़ें नहीं होतीं। और अगर हम जिंदगी को नीचे की जड़ों से उखाड़ लें, तो कागज के संन्यासी रह जाएंगे, असली संन्यासी नहीं। क्योंकि असली संन्यासी तो

स्त्री से आता है। हां, कागजी संन्यासी सोच सकता है कि वह स्त्री से नहीं आया है। असली संन्यासी तो स्त्री के प्रति आदर से, सम्मान से भरा होता है। क्योंकि वह उसी की एक धारा है, लेकिन नकली संन्यासी वेध से, घृणा से और अपमान से भरा होगा, क्योंकि वह कागजी फूल है, जिसकी कोई जड़ें नहीं हैं। जड़ों को जो इनकार कर रहा है। क्या मनुष्यता ने अब तक अपनी ही जड़ों से इनकार नहीं किया है? हमने सब जड़ों से इनकार कर दिया है, सिर्फ ऊपर के फूलों को स्वीकार करते हैं। सारी मनुष्यता झूठी हो गई है। शिखर रह गए हैं, बुनियादें खो गई हैं। शरीर को इनकार कर दिया है, आत्मा को पकड़ कर हम बैठ गए हैं! पृथ्वी से आंख हटा ली है, स्वर्ग और मोक्ष और दूर के लोगों पर आंखों को जमा दिया है। अगर कहीं कोई मोक्ष होगा तो यह पृथ्वी उसकी सीढ़ी है, और अगर कहीं कोई आत्मा है तो शरीर के द्वार के अतिरिक्त उसके मंदिर में कोई प्रवेश न कभी हुआ है और न हो सकता है। यह असंभव है। जीवन का अपना गणित है। उस गणित में हमें सब स्वीकार करना पड़ेगा, तभी हम सीधे खड़े हो सकते हैं। हमने मनुष्य को इस उलटाने में बहुत से काम किए हैं। आज मैं पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, वह यह है कि हम नीचे को, जड़ को इनकार कर देते हैं और ऊपर को, शिखर को स्वीकार कर लेते हैं। जब कि सारे शिखर नीचे की जड़ों से आते हैं, वे उन्हीं का फैलाव होते हैं। बहुत दिशाओं में हमने ऐसा किया है, उसका फल हम भोग रहे हैं। बहुत तरफ हमने ऐसा किया है, उसका निरंतर कष्ट हम भोग रहे हैं।
अभी मैं एक गांव में था, एक संन्यासी आए थे मिलने। आज एक स्त्री भी मुझसे मिलने आई थी। उसके साथ बहुत मजेदार बातें हुईं। वही बातें उस संन्यासी से हुईं। वह संन्यासी आकर बोले, संसार सब माया है, कुछ है नहीं। जब उन्होंने यह कहा, संसार सब माया है, कुछ है नहीं तो फिर मैंने सामने कुर्सी पड़ी थी, उनसे न कहा कि आप कुर्सी पर बैठ जाएं, क्योंकि माया पर बैठाने में गिर जाएं तो झगड़ा है। मैं चुप ही रहा, वे खड़े रहे। मैंने उनसे कहा, कि आपको यहां अगर कोई बैठने योग्य चीज दिखाई पड़ती हो तो बैठ जाएं, क्योंकि मैं बिठाऊं और आप गिर जाएं, क्योंकि आप कहते हैं, सब माया है। इस कुर्सी पर बैठें और गिर जाएं तो झंझट मेरे ऊपर लग जाए तो आप खड़े ही रहें। मैंने उनसे पूछा कि थके-मांदे हैं, पानी पीएंगे? तो उन्होंने कहा, प्यास तो बहुत लगी है। तो मैंने कहा, लेकिन पानी माया है? और माया के पानी से कैसे प्यास बुझेगी? और अगर प्यास भी माया है तो बुझाने की कोशिश करना ही फिजूल है। मैंने पूछा, भोजन करते हैं? उन्होंने कहा, करता हूं। मैंने कहा, बड़ी गड़बड़ बातें कर रहे हैं। एक तरफ सब माया कहे चले जा रहे हैं और एक तरफ उसी माया के साथ जीना पड़ेगा चौबीस घंटे! श्वास लेनी पड़ेगी उसी माया से, भोजन खोजने पड़ेंगे उसी माया से, मंदिर तीर्थ बनाने पड़ेंगे उसी माया से। सब माया चलेगी, और ऊपर से इंकार चलेगा तो जीवन में खंड हो जाएंगे। जो आधार है, वह अस्वीकृत हो जाएगा, जो शिखर है, वह स्वीकृत रह जाएगा। और तब बेईमानी पैदा होगी और पाखंड पैदा होगा, तब हिपोक्रेसी पैदा होगी। अब तक हमने पृथ्वी पर जो संस्कृति खड़ी की है, वह हिपोक्रेसी है, वह सब पाखंड है, क्योंकि उसने जीवन के पूरे सत्य को स्वीकार नहीं किया है और जिस सत्य को अस्वीकार कर दिया है वह है।
आज एक महिला आई। वह मुझसे पूछने लगी कि मुझे कुछ प्रश्न आपसे पूछने हैं। मैंने कहा जरूर पूछें। उन्होंने कहा, मुझे ध्यान करना है, क्या करूं? मैंने कहा, परमात्मा के प्रति समर्पण करें तो ध्यान आ जाएगा। उन्होंने कहा, कौन परमात्मा? मैं तो स्वयं ब्रह्म हूं। मैंने कहा, जब स्वयं ब्रह्म हैं तो फिर पूछने किसलिए आई हैं मेरे पास? उन्होंने कहा, यह तो मेरी समझ में आ गया है कि मैं ब्रह्म हूं, लेकिन एक प्रश्न रह गया है। मैंने कहा, ब्रह्म को भी प्रश्न रह जाता है?
अब एक तरफ पकड़ा हुआ है कि मैं ब्रह्म हूं, तो जिंदगी जहां की तहां खड़ी है, जहां तब थी, जब ब्रह्म नहीं थीं। जिंदगी के उलझाव वही हैं, परेशानियां वही हैं। जिंदगी में कष्ट वही हैं, और यहां अब ब्रह्म होने का ख्याल भी पैदा हो गया हैं। तो हम आदमी को पागल करवा देंगे। हमने आदमी को पागल करवा दिया है। अब ऐसा नहीं है कि कुछ लोग पागलखानों में बंद हैं। अब ऐसा है कि

पूरी पृथ्वी ही पागलखाना हो गई है। धीरे-धीरे हर आदमी पागल होता चला गया है। हो ही जाएगा बिल्कुल स्वाभाविक है।
उस ग्रह के लोग अगर पैर के बल चलते हैं, तो समझते हैं कि पाप हो रहा है, सिर के बल खड़े होते हैं तो समझते हैं पुण्य हो रहा है। तो अगर वहां सारे लोग पागल हो गए हों तो क्या आश्चर्य है? जीवन को कोई सत्य पूरा का पूरा स्वीकृत नहीं है। जैसा जीवन है, वैसा नहीं। हम काट-काट कर टुकड़ों में बंट कर स्वीकार करते हैं और ऊपर के हिस्से को बचा लेते हैं और नीचे के हिस्से को इनकार कर देते हैं, जब कि ऊपर के सब हिस्से नीचे के हिस्सों के सहारे खड़े होते हैं। उन्हीं से पैदा होते हैं, उन्हीं से विकसित होते हैं। वे उन्हीं का विस्तार हैं, उन्हीं का विकास हैं। आदमी को उलटा करने में इस बात ने बड़ा सहारा दिया है।
मैं एक छोटी सी एक जापानी गुड़िया देखता था। उसे फेंकिए, कैसा ही फेंकिए, वह सदा सीधी हो जाती है। एक भिक्षु हुआ बोधिधर्म। बोधिधर्म के ऊपर ही पहली दफा वह गुड़िया बनी। उस गुड़िया का नाम दारूमा है। बोधिधर्म का जापान में नाम हैः दारूमा। वह एक हिंदू भारतीय भिक्षु था। हिंदुस्तान से गया था। उस गुड़िया का नाम भी दारूमा डोल, दारूमा गुड़िया है। उसे फेंकें तो, कैसे भी फेंकें तो वह सदा सीधी हो जाएगी। उसके पेट में वजन है। उस वजन की वजह से सिर सदा ऊपर आ जाता है। कोई मित्र वह गुड़िया लाए थे। मैंने कहा, यह गुड़िया तुम बहुत अच्छी लाए। एक-एक आदमी को यह गुड़िया दे दो। क्योंकि आदमी उलटी हालत में हो गया है। उसे कैसा भी फेंको, वह कभी सीधा नहीं पड़ता है, हमेशा उलटा पड़ता है, शीर्षासन कर जाता है! यह गुड़िया बहुत अदभुत है।
फिर मैंने पता लगाया कि गुड़िया बनाई क्यों गई? तो वह जो था बोधिधर्म, उसने यह कहा था कि आदमी ऐसा हो गया है कि कैसा भी पटको, वह उलटा ही गिरेगा। वह कभी सीधा हो ही नहीं सकता! और उस बोधिधर्म ने कहा था, मैं एक सीधा आदमी हूं। मुझको तुम कैसा भी पटकोगे, मैं सीधा ही गिरूंगा। क्योंकि मैं जीवन के उस रहस्य को समझ गया हूं कि जो नीचे है वह नीचे है और जो ऊपर है वह ऊपर है। और मैंने नीचे को पूरा वजन दिया है, इसलिए ऊपर का शिखर सदा ऊपर आ जाता है। उसके कथन के अनुसार वह गुड़िया बनाई गई है।
अपने-अपने घर में वह गुड़िया खरीद कर रख लेनी चाहिए और रोज सुबह घर से निकलने के पहले गुड़िया को देख लेना चाहिए कि वह हर बार सीधी हो जाती है! उसके सीधे होने का राज यह है उसका बेस वजनी है, उसकी बुनियाद वजनी है। और उसका सिर हलका है। हमारा सिर भारी है और बेस बिल्कुल ही वजनी नहीं है! हम कैसे भी गिरेंगे, हम उलटे गिरेंगे, सिर के बल गिरेंगे।
इसलिए दूसरा सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आदमी का सिर भारी हो गया है। आदमी ने सारे जीवन को खोपड़ी में निर्भर कर लिया है। और सब शरीर से खींच लिया है। सारा जीवन खोपड़ी में आ गया है! हाथ में अब कोई जीवन नहीं है। जब आप किसी से हाथ मिलाते हैं तो आपके हाथ से कोई प्रेम उसकी तरफ नहीं बहता। सिर्फ आप सोचते हैं कि बड़े प्रेम से हाथ मिला रहे हैं। लेकिन हाथ से कोई प्रेम बहता नहीं है! सिर्फ विचार में रहता है कि हां, प्रेम कर रहे हैं, इसलिए हाथ मिला रहे हैं। जब आप हाथ जोड़ते हैं, तब आप कल्पना में सोचते हैं कि बड़ा आदर कर रहे हैं, इसलिए हाथ जोड़ रहे हैं, लेकिन हाथों से आदर की किरणें बाहर नहीं जातीं। सारे शरीर से जीवन सिकुड़ कर खोपड़ी में बैठ गया है। आदमी खोपड़ी में जी रहा है और इसलिए उलटा होना अनिवार्य हो गया है। वह कैसे भी गिरेगा, उल्टा हो जाएगा। असल में वह उलटा ही है, गिरे या न गिरे। सिर वजनी है, शेष सब हलका हो गया है!
इसलिए कहना चाहता हूं कि जीवन पूरे शरीर में बंट जाना चाहिए, सम भागों में वितरित हो जाना चाहिए। जीवन सिर ही में नहीं है, लेकिन हम सब काम सिर से कर रहे हैं। अगर हम प्रेम करते हैं तो वह भी विचार कर करते हैं। अगर हम प्रेम करने जाते हैं तो भी पता लगा लेते हैं कि जिसे प्रेम कर रहे हैं, वह हिंदू तो है ना, मुसलमान तो नहीं है। अब हृदय के जगत में न कोई हिंदू होता है, न कोई मुसलमान होता है। हम प्रेम करते हैं तो हम पता लगा लेते हैं कि कुछ पैसा पास में है या नहीं! अब हृदय का तो पैसे से काई संबंध है नहीं। लेकिन खोपड़ी पैसे का हिसाब रखना चाहती है। वह पक्का पता लगा लेना चाहती है

कि पैसा का इंतजाम कितना है! हिंदू है, मुसलमान है, कि क्या है, क्या नहीं है, यह सारा मालूम हो जाना चाहिए!
अब तो अमेरिका में कंप्यूटर्स बना लिए गए है कि एक लड़का और एक लड़की अगर विवाह करना चाहते हैं, तो वे दोनों अपने-अपने संबंध में जानकारी कंप्यूटर में डाल दें तो कंप्यूटर उन्हें खबर दे देगा कि प्रेम करो या न करो, विवाह करो या न करो। क्योंकि कंप्यूटर हिसाब लगा कर बता देगा कि ठीक रहेगा कि नहीं! यह आखिरी बुद्धि की दौड़ है, जहां हम विचार से, मशीन से यह तय करवाएंगे कि प्रेम करना है या नहीं करना है। कंप्यूटर बता देगा कि तुम दोनों के बीच ताल मेल बैठेगा या नहीं बैठेगा। यह विवाह ठीक रहेगा कि नहीं! हम प्रेम भी विचार करके ही कर सकते हैं! यह हो गई! प्रेम का विचार से कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि हमने जीवन के बहुत-से हिस्सों को खींचकर सिर्फ खोपड़ी में केंद्रित कर लिया है। इसलिए हमारी खोपड़ी बहुत भारी हो गई है रोज भारी होती चली जा रही है।
छोटे बच्चों से अगर चित्र बनवाएं तो वे बहुत अदभुत चित्र बनाते हैं,
वे आदमी के सच्चे चित्र होते हैं, वैसे चित्र बड़े-बड़े चित्रकार भी नहीं बनाते हैं। छोटा बच्चा खोपड़ी बहुत बड़ी बनाएगा। और टांगें वगैरह छोटी लकीरों की तरह खींच देगा, हाथ लगा देगा, खोपड़ी बहुत भारी बना देगा! ऐसा मालूम होता है कि बच्चों को कुछ समझ आ गई है कि आदमी की असली तस्वीर क्या है।
अगर हम भी अपनी जिंदगी में खोजने जाएंगे, तो आप किस अंग से जिए हैं--आप पूरे जिए हैं, पूरे शरीर से? या आपने सिर्फ विचार से जीने की कोशिश की है? पिता के पैर दबाते हैं, उसमें भी प्रेम और हृदय नहीं है! उसमें भी यह सोच कर कि पिता हैं, इसलिए कर्तव्य है, पैर दबाने चाहिए! बुद्धि कहती है, कर्तव्य है, इसीलिए मां की सेवा कर दो। हृदय कर्तव्य जानता ही नहीं, क्योंकि कर्तव्य बहुत बेहूदा शब्द है। यहां ड्यूटी है, वहां प्रेम है ही नहीं। जिस आदमी ने भी कहा है, यह मेरी ड्यूटी है, यह मेरा कर्तव्य है, इसलिए मैं पिता के पैर दबा रहा हूं उस आदमी ने कभी पिता को प्रेम किया ही नहीं। वह बुद्धि से हिसाब लगा रहा है कि चूंकि इस आदमी ने हमको पैदा किया है, इसलिए हमें इस आदमी के पैर दबाने हैं। यह हिसाब की, गणित की बात है। इस स्त्री ने हमें पैदा किया है और नौ महीने पेट में रखा है, इसलिए हम इसके बुढ़ापे में सहायता कर रहे हैं! और न केवल यह बेटा ऐसा कह रहा है, मां भी अपने बेटे से यह कह रही है कि मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखा है, इतना बड़ा किया है, अब तू मेरी सेवा नहीं कर रहा है! वह भी गणित बता रही है। वह भी गणित फैला रही है, वह भी हृदय की बात नहीं है। हृदय गणित जानता ही नहीं।
हम पूरी जिंदगी गणित से जी रहे हैं। सारी जिंदगी सिकुड़ कर खोपड़ी के भीतर आ गई है। इसलिए खोपड़ी वजनी हो गई है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम बहुत अशांत हैं। और उनकी अशांति का कुल कारण इतना है कि जीवन जो कि फैला हुआ होना चाहिए पूरे व्यक्तित्व में, वह सिकुड़ कर एक जगह आ जाए तो अशांति हो ही जाएगी। लोग कहते हैं हम बहुत टेंस हैं, चित्त तनाव से भरा है, कैसे हलके हों? वे हलके कैसे होंगे? और वे कहते हैं कि चित्त तनाव से भरा है, इसलिए हम गीता पढ़ रहे हैं, कुरान पढ़ रहे हैं, फलां गुरु के पास जा रहे हैं, यह पढ़ रहे हैं, वह पढ़ रहे हैं! ये हिसाब लगा रहे हैं। वे चित्त को और भारी करते चले जा रहे हैं! क्योंकि चित्त भारी इसलिए है कि हमने जीवन को सिकोड़ कर वहां अंदर बंद कर लिया है।
अभी एक परिवार में मैं ठहरा था। उस परिवार में कुछ दिन पूर्व पिता की मृत्यु हो गई है। घर के लोग बड़े पढ़े-लिखे हैं। लड़कियां योरोप में पढ़ कर आई हैं, सब लड़के बाहर पढ़े हैं। कोई डाक्टर है, कोई वकील है, कोई कुछ और है, कोई कुछ और है। लड़कियां बहुएं भी पढ़ी-लिखी हैं। वे रोए नहीं पिता के मर जाने के बाद। क्योंकि उन्होंने कहा, रोना अशोभन है, असंस्कृत है, ग्रामीण है। यह कोई ढंग की बात नहीं है। जो मर गया मर गया, रोने की क्या बात है? जो घर में ज्ञानी हैं, उन्होंने कहा कि मर ही जाते हैं। जो और ज्यादा ज्ञानी हैं, उन्होंने कहा, आत्मा तो अमर है, रोने की जरूरत नहीं है! अब उन सबने अपने रोने को रोक लिया है। मैं उनके घर में गया तो मैंने देखा वहां बड़ा तनाव है।

उस घर की एक बहू ने मुझसे कहा कि हम बहुत परेशानी में पड़े हुए हैं। मन तो रोने का होता है, लेकिन बुद्धि कहती है, रोने से क्या फायदा? मन तो रोने को होता है, लेकिन बुद्धि कहती क्या बेहूदी बात है? रोने से क्या मरा हुआ आदमी वापस लौट सकता है?
बुद्धि रोक रही है, रोने भी नहीं दे रही है! अब वे आंसू भीतर घने हो गए।
अब प्राण संकट में पड़ गए। जो काम हृदय से होना चाहिए, वह बुद्धि से लिया जा रहा हे। बुद्धि भारी हो जाएगी और कठिनाई में डाल देगी। आंसू इकट्ठे हो जाएंगे, और कोई बहाना लेकर निकलना चाहिए, क्योंकि वे भर गए हैं, उनका निकलना जरूरी है। जब बादल भर जाए तो उसका बरसना जरूरी है। लेकिन बुद्धि अटकाव डाल रही है! वह कहती है कि रोने से क्या होगा!
मैंने उस स्त्री को एक कहानी सुनाई। एक फकीर था, उसका गुरु मर गया। उस फकीर के संबंध में यह प्रसिद्ध था कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। जब उसका गुरु मर गया तो लाखों लोग देखने आए। वह फकीर अपने द्वार पर छाती पीट कर रो रहा था! उसकी आंखों से आंसुओं की धार लगी थी। लोगों ने उससे कहा कि आप रो रहे हैं? हम तो सोचते थे, आप परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए। उस फकीर ने कहा, और परम ज्ञान में रोना नहीं होता है, यह तुमसे किसने कहा? और अगर परम ज्ञान में रोना न होता हो, तो हम परम ज्ञान छोड़ते हैं, लेकिन रोना नहीं छोड़ सकते। ऐसे परम ज्ञान से हम हाथ जोड़ते हैं, जिसमें रोना भी संभव न हो। उन्होंने कहा, कुछ तो ख्याल रखो, लोग क्या सोचेंगे? लोग सोचते थे कि तुमने पता लगा लिया है आत्मा अमर है, सब व्यर्थ है। फकीर ने कहा, मैं आत्मा के लिए रो ही नहीं रहा, मैं तो शरीर के लिए रो रहा हूं। जो अब दुबारा कभी नहीं आएगा। वह शरीर भी बड़ा प्यारा था, मैं तो उसके लिए ही रो रहा हूं। उन्होंने कहा, पागल हो गए हो, शरीर के लिए रोते हो! शरीर के लिए क्या रोना? उस फकीर ने कहा, मैं कोई हिसाब लगा कर नहीं रो रहा हूं। रोना आ रहा है, और मैं रो रहा हूं, और मैं हिसाब लगाने से इनकार करता हूं।
लेकिन हम सबने हिसाब लगा लिया है। हम हंसते हैं तो हिसाब लगा कर हंसते हैं। और कितने इंच हंसना है उस मौके पर, उसका हम हिसाब रखते हैं! कितना रोना, उसका भी हिसाब रखते हैं। कब रोना है, कब नहीं रोना है, उसका हिसाब रखते हैं। क्या हमने सारा का सारा सिर पर ही नहीं थोप दिया है? जो भी व्यक्तित्व का हिस्सा था, वह सब सिर में आ गया है।
अभी मैं एक किताब देख रहा था। एक बहुत समझदार आदमी ने, लेकिन बड़े नासमझ, क्योंकि समझदारों से ज्यादा नासमझ खोजना बहुत मुश्किल है। एक समझदार आदमी ने वह किताब लिखी है। उसने लिखा है कि एक्सरसाइज करने की कोई जरूरत ही नहीं है क्योंकि लोगों को फुर्सत नहीं है कि व्यायाम कर सकें। उसने एक बहुत अच्छी तरकीब बताई है कि आंख बंद करके लेट जाओ और कल्पना करो कि तेजी से दौड़ रहे हो! दौड़ो मत। सिर्फ कल्पना करो। इतनी तेजी से दौड़ो कि पसीना निकलना शुरू हो जाए और दौड़ते रहो, दौड़ते रहो! लेटे रहो कुर्सी पर और कल्पना में दौड़ते रहो। उसका दावा है कि एक्सरसाइज हो जाएगी! और जरूरत है शरीर की एक्सरसाइज की। खोपड़ी की एक्सरसाइज वैसे ही काफी हो रही है। उसकी जरा एक्सरसाइज कम हो इसकी जरूरत है।
हम सारे व्यक्तित्व को सिकोड़ कर एक बिंदु पर ले आए हैं। पूरा शरीर करीब-करीब फिजूल हो गया है। इसलिए आप ख्याल करें, अगर मैं आपसे कहूं कि आपका पैर काट डालें तो आप कट जाएंगे? आप कहेंगे, नहीं, पैर के काटने से मैं नहीं कटूंगा। हाथ काट डालें, आप कट जाएंगे? आप कहेंगे नहीं, हाथ के कटने से मैं नहीं कटूंगा। लेकिन कोई कहेगा, आपका सिर काट डालें तो आप क्या कहेंगे? फिर तो कट जाऊंगा, ऐसा मालूम होता है। केंद्र आपने सिर्फ सिर में बना लिया है अपना। सारा बीइंग, सारी आत्मा सिर में ही इकट्ठी हो गई है बाकी यह पूरा का पूरा व्यक्तित्व निर्जीव हो गया है। इसमें कोई आत्मा नहीं रह गई है। पैर कटने से नहीं कटते हैं आप, लेकिन सिर कटने से कट जाते हैं।
आदमी उलटा हो गया है, सिर पर भार पड़ने की वजह से आदमी ने शीर्षासन कर लिया है, और हम रोज यह भार बढ़ाए चले जा रहे हैं। बच्चों को हम स्कूल में भेजते हैं तो सिर्फ सिर उनका भारी करके वापस लौट आते हैं। उन्हें और कुछ भी सीखने को नहीं मिल पाता। वे न तो वहां प्रेम करना सीखते हैं, न वेध करना

सीखते हैं। न वे जिंदगी के कोई और राज सीखते हैं। वे सिर्फ वहां सिर को भारी करके लौट आते हैं। वे उतना सीख लेते हैं जो सिर में भरा जा सके और उनके दिमाग कंप्यूटर की मशीनें हो जाते हैं और वापस लौट आते हैं। शरीर का सारा खून सिकुड़ कर सिर में चला जाता है। सब शरीर की ताकत सिकुड़ कर सिर में चली जाती है। और सब तरफ से ताकत खिंच जाए तो सारा व्यक्तित्व अपंग और कुरूप हो जाता है।
क्या आप को ख्याल है, जब आप खाना खाते हैं तो नींद क्यों आने लगती है? सिर्फ इसीलिए नींद आने लगती है कि खाना खाते ही शरीर की ताकत की जरूरत पेट को हो जाती है। पेट सारी शक्ति को अपने पास बुला लेता है। इसीलिए सिर सोने की हालत में आ जाता है, क्योंकि अगर सिर जगा रहे तो वह अपना काम जारी रखेगा। इसलिए झपकी आने लगती है। झपकी आने का मतलब यह है कि पेट यह कह रहा है कि अब तुम अपना काम बंद कर दो, हमें पाचन का काम पूरा कर लेने दो। इसलिए खाना खा लेने के बाद नींद आने लगती है। इसका कुल कारण इतना है कि शक्ति सीमित है और पेट को जरूरत है, अभी सिर को जरूरत नहीं है। लेकिन हम खाना खाने के बाद भी सिर से काम लिए चले जाते हैं। और अब तो सोना भी बहुत मुश्किल है, सोने में भी हम सिर से काम लिए चले जाते हैं। रात भर सिर से काम चल रहा है, सब अस्त-व्यस्त हो गया है।
मैंने सुना है, एक वैज्ञानिक कुछ प्रयोग कर रहा था। एक बिल्ली को उसने खाना दिया है और एक्सरे की मशीन लगा कर वह देख रहा है कि बिल्ली के पेट में क्या हो रहा है। खाना भीतर गया है, रस छूटे हैं, खाने को पचाने का काम शुरू हो गया है। तभी वह एक कुत्ते को भी कमरे में ले आया है। कुत्ते को देखते ही बिल्ली का मस्तिष्क भारी हो गया। क्योंकि कुत्ते को देखना पेट से तो हो नहीं सकता। कुत्ते को देखना तो होता है सिर से। उसका सिर भारी हो गया। बिल्ली सिकुड़ गई। उसके पेट की सब आंतें सिकुड़ गयीं और उन्होंने रस छोड़ना बंद कर दिया! भोजन पड़ा रह गया। क्योंकि अब भोजन करने की सुविधा शरीर को न रही। अब शरीर की सारी शक्ति सिर में चली गई। कुत्ता मौजूद है, कोई भी खतरा हो सकता है। कुत्ते को एक मिनट के बाद हटा लिया गया, लेकिन बिल्ली के पेट को वापस सक्रिय होने में छह घंटे लग गए। तब तक भोजन पूरा ठंडा हो गया। तब रस छूटे, तो उसको पचाने में असमर्थ हो गए। इस बिल्ली के साथ निरंतर तीन महीने तक ऐसा प्रयोग किया गया। उसके पेट में अल्सर हो गया। हो ही जाएंगे। भोजन जब ठंडा हो जाएगा। और न पचाया जाएगा और रस बेवक्त छूटेंगे तो पेट में घाव हो ही जाएंगे। अब बिल्ली को अल्सर हो गया है, क्योंकि उसका मस्तिष्क पूरे वक्त तनावग्रस्त रहने लगा है। अगर हमारे पेट अल्सर से भर गए हैं, हजार तरह की बीमारियों से, तो उन बीमारियों का नब्बे प्रतिशत कारण तो यह है कि मस्तिष्क पूरी शक्ति खींचे ले रहा है। वह कोई ताकत छोड़ता ही नहीं। शरीर के किसी हिस्से के लिए कोई ताकत नहीं छोड़ रहा है। वह जीवन के किसी दूसरे आयाम में शक्ति को जाने ही नहीं देता है। सारी शक्ति वहीं खींच ली गई है। सिर भारी होगा ही। सिर भारी हो जाएगा तो आदमी का व्यक्तित्व उलटा हो जाएगा।
हमें जिंदगी को कुछ और शिक्षण भी देने चाहिए जो सिर पर ही केंद्रित न करते हों। हमें कुछ और बातें भी सीखनी चाहिए जो शरीर को व्यक्तित्व में बांधती हों, सब अंगों में पहुंचा देती हों। आत्मा सिर में ही न रह जाए, कण-कण में हो जानी चाहिए। रोएं-रोएं में आत्मा प्रविष्ट हो जानी चाहिए। और अगर किसी व्यक्ति के पूरे जीवन में आत्मा प्रविष्ट हो जाए, तो उसका हाथ भी छुएंगे तो आत्मा का पता चलेगा। उसका पैर भी छुएंगे तो आत्मा का पता चलेगा। उसके पूरे शरीर के अणु-अणु में उसकी आत्मा का फैलाव होगा, उसकी आत्मा सिकुड़ नहीं गई होगी। और तब वह यह नहीं कहेगा कि मैं पैर नहीं हूं, मैं सिर हूं। वह कहेगा, मैं यह सब हूं, इन सबका जोड़ मैं हूं। और इस पूरे जोड़ को वह जीएगा। लेकिन हम इस तरह कभी जीए नहीं।
कभी आपने ख्याल किया है कि आप पैर धो रहे हैं, तो इस तरह से धोया हो कि पैर में भी कोई आत्मा है? कभी आप हाथ धो रहे हैं पानी से तो कभी आपने पानी का पूरा आनंद हाथों को लेने दिया है? नहीं, जब आप हाथ धो रहे हैं तब पानी से तो हाथों को हाथों का कोई आनंद मिलने का सवाल नहीं है। तब भी आपकी खोपड़ी

अपना काम कर रही है। हाथ तो मशीन की तरह धुल जाएंगे और आप हट जाएंगे। कभी आपने स्नान करते वक्त पूरे शरीर को आनंद लेने दिया है? हमें कहां फुरसत है, पूरे शरीर को धो डालेंगे किसी तरह। पानी गिर जाएगा उसके ऊपर, साबुन भी लगेगी, साबुन भी बह जाएगी और आप अपनी खोपड़ी से पूरे वक्त काम करते रहेंगे। आप स्नान करके लौट आएंगे, लेकिन शरीर स्नान के आनंद को अनुभव नहीं कर पाएगा। कल जरा प्रयोग करके देखें। जब स्नान कर रहे हों तो पूरे शरीर को पानी के स्पर्श का आनंद लेने दें और पानी की ताजगी को पूरे शरीर को छूने दें। शरीर के रोएं-रोएं को स्नान करने दें और कृपा करके थोड़ी देर के लिए खोपड़ी से कहें, तुम्हीं नहीं हो, यह पूरा शरीर मैं हूं। इस पूरे शरीर में मैं हूं। और तब आप नहाने से एक नई ताजगी लेकर निकलेंगे, जो कभी लेकर नहीं निकले। जब भोजन करें तब पूरे शरीर को भोजन का आनंद लेने दें। और जब किसी को प्रेम करें तो उसके पूरे शरीर को अपने हृदय से लगा लें। पूरे शरीर में जीने की कोशिश करें। खोपड़ी में मत जीएं।
शरीर का पुनर्जन्म जरूरी है। शरीर हमारा बिल्कुल ही समाप्त हो गया है। एक हिस्सा भर जी रहा है। और इसलिए सारा तनाव वहां इकट्ठा हो गया है। और इस तरह के तनाव हो गए हैं कि जिनकी हम कल्पना नहीं कर सकते हैं। जहां-जहां से हमने जीना बंद कर दिया है, सिर को ही वह जीने का काम करना पड़ रहा है। आदमी की सारी सेक्सुअलिटी, सारी कामुकता सिर पर चली गई है। जो कि बड़ी बेहूदी बात है। अगर जानवरों से हमारी कोई बातचीत हो सके तो वे बड़े हैरान होंगे। वे कहेंगे कि क्या मामला है सब कुछ सिकुड़ कर सिर में आ गया है। आदमी की कामवासना भी सिर में आ गई है। भोजन भी सिर में आ गया है। जब आप भोजन करने का विचार करते हैं। कभी आपने इसके फर्क का ख्याल किया है? जिस मित्र से मिलने के लिए आप इतने आतुर होते हैं, उससे मिल कर उतना आनंद नहीं आता, जितना मिलने का विचार करने से आनंद आता है। यह बड़ी अजीब बात है। जिस स्त्री से आप प्रेम करते हैं, जितना इस आशा में कि कभी वह मिल जाए, इसकी कल्पना और विचार करने में जितना आनंद आता है, वह स्त्री मिल जाए तो एकदम सब फीका पड़ जाता है। फिर वह आनंद नहीं आता है। क्या बात है? जीना कम आनंदपूर्ण और विचार करना ज्यादा आनंदपूर्ण हो गया है? इसे देखेंगे तो ख्याल में आ जाएगी यह बात।
एक बड़ी लंबी कार को गुजरते हुए आप देखते हैं और आपके मन को कितना आनंद आता है कि कभी यह कार मिल जाए तो कितना आनंदित मैं हो जाऊंगा। और मन में कितनी बार इस कार में आप बैठ लिए, क्योंकि उस असली कार में जो आदमी बैठे हैं उनको फिर बैठने में कोई आनंद आ ही नहीं रहा, और कल अगर आप भी बैठ गए तो आपको भी आने वाला नहीं है। क्योंकि जिंदगी से हमने आनंद लेना बंद कर दिया है। हम सिर्फ विचार करने में ही आनंद लेते हैं! इसलिए जिन चीजों से हमें निरंतर विचार ही करना पड़ता है और जो हमें कभी मिलती नहीं, उनमें हम ज्यादा आनंद लेते हैं। और जो हमें मिल जाती हैं, उनमें आनंद लेना मुश्किल हो जाता है।
मैंने सुना है, एक पागलखाने में दो पागल बंद हैं। दोनों मित्र हैं। दोनों एक यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर हैं। उनका एक तीसरा प्रोफेसर मित्र उन्हें देखने पागलखाने गया। एक कोठरी के पास पहुंच कर उसने पागलखाने में सुपरिनटेंडेंट से पूछा कि इसके पागल हो जाने का कारण क्या है, इस मेरे मित्र का? मैं दो साल देश के बाहर गया था। यह पागल क्यों हो गया है? उसने कहा, बड़ी अजीब बात है। वह एक स्त्री को पाना चाहता था। और नहीं पा सका, इसलिए पागल हो गया। लेकिन, वह बड़ा आनंदित था। उसने अपनी दीवालों पर कोयले से उस स्त्री के चित्र बना रखे थे। वह एक तस्वीर अपनी छाती से लगाए हुए बैठा था, और बड़ा प्रसन्न था और गीत गुनगुना रहा था! सुपरिनटेंडेंट ने कहा कि यह स्त्री इसको मिल नहीं सकी है, इसलिए यह पागल हो गया है। लेकिन इसके मित्र ने कहा, प्रसन्न बहुत है। उसने कहा, प्रसन्न इसीलिए है कि वह मिल नहीं सकी।
दूसरे कटघरे में ले गया, वहां दूसरा मित्र बंद था! सुपरिन्टेडेंट से आगंतुक मित्र ने पूछा, यह क्यों पागल हो गए हैं? उसने कहा, यह और हैरानी की बात है, जो स्त्री उसको नहीं मिल सकी, वह स्त्री इनको मिल गई है इसलिए यह

पागल हो गए हैं। लेकिन वे सिर के बाल नोच रहे थे, और सींखचों से सिर मार रहे थे। एक को वही स्त्री नहीं मिल पाई है, इसलिए पागल हो गए हैं, लेकिन उनके पागलपन में भी एक रस और आनंद है। क्योंकि अभी वह कल्पना में उस स्त्री से मिलते रहते हैं। अभी वे विचार में मिल रहे हैं, चित्र उसका छाती से लगाए हुए हैं, जिन्हें प्रेमिकाएं नहीं मिल पाती हैं, इस पागल दुनिया में, वे बड़े धन्यभागी हैं। और जिन्हें प्रेमिकाएं मिल जाती हैं, इस पागल दुनिया में, उनकी मुसीबत का कोई ठिकाना नहीं है! वह अपने बाल नोंच रहे हैं, क्योंकि उनको वह स्त्री मिल गई है! अब कल्पना और विचार करने को भी कुछ न बचा।
कैसी अजीब बात है कि जीवन इतना दुखद और विचार इतना सुखद है। होना उलटा चाहिए--विचार फीका होना चाहिए, जिंदगी घनी और सघन होनी चाहिए। लेकिन हो ऐसा गया है कि आप जो सोचते हैं--वह ज्यादा आनंदपूर्ण मालूम पड़ता है। एक होटल में भागे चले जा रहे हैं कि यह खाना खाऊंगा, तब आप बड़े आनंदित मालूम पड़ते हैं। लेकिन खाना खाने की टेबल पर बैठ कर आप के चेहरे से सब आनंद उड़ जाता है। हो सकता है उस वक्त आप कल किसी दूसरे होटल में खाना खाएंगे, उसके विचार में आनंद ले रहे हों। लेकिन आप जो खाना खा रहे हैं, वह आनंद विदा हो गया।
अभी मेरे साथ कुछ मित्र काश्मीर गए थे। उनमें से एक से मैंने कहा, क्योंकि बहुत बार उन्होंने कहा, वह राजधानी में रहते हैं, बहुत बार वह मुझसे कहते थे, आपके साथ चलना है, पहाड़ पर। पहलगाम चलना है, डल झील पर चलना है, कश्मीर चलना है, बड़ा आनंद आएगा। और जब भी वे बातें करते थे, तब उनकी आंखों में आनंद की एक झलक आ जाती थी। बीस दिन तक वे मेरे साथ वहां थे डल झील पर। लेकिन मैंने डल झीन की कोई झलक उनकी आंख में देखी नहीं! पहलगाम में था, लेकिन पहलगाम का कोई सौंदर्य उनको छुआ हो, यह मैंने नहीं देखा! बीस दिन बाद जब वह लौट कर दिल्ली आ गए, तब उन्होंने कहा कि बड़ी सुंदर जगह है, बड़ा आनंद आया! मैंने कहा कि मुझे हैरान मत करो, क्योंकि बीस दिन तुम्हारे साथ था, मैंने कभी एक बार नहीं सुना कि तुमने एक बार कहा हो, कि किसी वृक्ष के पास जाकर तुमने उसे गले भेंट लिया हो। कि तुमने किसी वृक्ष को, पेड़ को, हाथ फेर कर स्पर्श किया हो, कि तुमने किसी पत्थर से दोस्ती की हो, कि तुम किसी झरने में हाथ या पैर डाल कर थोड़ी देर तक बैठ गए हो। मैंने तो अनुभव ही नहीं किया कि तुमने वहां कभी थोड़ा सा रस लिया हो! हां, पहले तुम जरूर रस लेते थे। अब तुम फिर कह रहे हो कि वहां बड़ा आनंद है!
क्या हम सबकी जिंदगी में यही नहीं घट रहा है? हम सबकी जिंदगी में यही घटित हो रहा है। इसका कारण कुल इतना है कि हमने सिर से जीना शुरू कर दिया है। पूरे शरीर, पूरे व्यक्तित्व और पूरी आत्मा से नहीं। आदमी उलटा हो गया है। सारी मनुष्यता उलटी हो गई है। अगर इस मनुष्यता को ठीक करना है तो इस पर सबसे बड़ी करुणा यह होगी कि हम आदमी को सीधा होने में सहयोगी बनें। सबसे बड़ी क्रांति यह होगी कि आदमी सिर से न जीए, पूरे शरीर और पूरे व्यक्तित्व से जीने लगे। उसका जीवन सब तरफ फैल जाए। हमें अंदाज भी नहीं है, ख्याल भी नहीं है कि हमने किस तरह रोक ली हैं चीजें। क्या आपको पता है अंधे आदमी का? एक अंधा कान से जिस भांति सुनता है, आपने कभी उस भांति सुना है? कान आपके पास भी उतना ही शक्तिवान है, जितना अंधे के पास है। लेकिन अंधा कान से बहुत सुनता है।
मैं एक ट्रेन में सफर कर रहा था। रात का वक्त था, कोई बारह बजे ट्रेन में सवार हुआ। ऊपर की बर्थ पर कौन है, मैंने देखा नहीं, नीचे की बर्थ पर बिस्तर लगा कर लेटने जा रहा था कि ऊपर से झांक कर किसी ने मेरा नाम लिया और कहा, आप वही तो नहीं हैं? तो मैंने कहा, मैं वही हूं। पहचानते हैं? लाइट जलाकर देखा तो ऊपर एक अंधा आदमी है। मैंने कहा, आपने मुझे पहचाना कैसे? तो उन्होंने कहा, पांच वर्ष पहले एक बार आपको सुना था। आपकी आवाज ख्याल में रह गई थी। आप कुली से बात कर रहे थे तो मुझे लगा कि आप ही होने चाहिए। मैंने कहा, छह साल पहले सुनी हुई आवाज? तो उन्होंने कहा, मैं तो अंधा आदमी हूं, मैं तो आवाज से जीता हूं, आवाज ही मेरी पहचान है। आंखें तो नहीं हैं, तो कान से ही आंख का काम लेता हूं। पैरों को भी मैं पहचानने लगता हूं कि कौन आ रहा

है, पदचाप सुन कर पहचान लेता हूं कि घर में कौन आ रहा है। घर से कौन जा रहा है बाहर, यह भी मैं जान लेता हूं, क्योंकि सबके पैरों की चाप अलग हैं कभी ख्याल किया है आपने? व्यक्तित्व इतना अदभुत है कि दो आदमी एक जैसे पैर की आवाज भी नहीं करते। हर आदमी के पैर की आवाज अलग होती है रिदिम अलग है और हर आदमी के दो पैर का गैप अलग है, और हर आदमी के पैर की आवाज का फासला अलग है, गीत अलग है। सब अलग है। दो आदमी एक साथ चलते भी नहीं हैं। उस अंधे आदमी ने मुझसे कहा कि मुझे तो पैर की आवाज से भी पता चल जाता है कि घर के बाहर कौन जा रहा, घर के भीतर कौन आ रहा है।
इतना ही अदभुत कान हमारे पास भी है, लेकिन हमारे कान को यह कुछ पता नहीं चलता! हमने कान का उपयोग ही नहीं किया है। अगर हम कान का पूरा उपयोग कर सकें तो जीवन का संगीत हमारे लिए परमात्मा की खबर लाएगा, लेकिन संगीत का हमें अनुभव नहीं हो सकता, क्योंकि कान का हमने कोई उपयोग नहीं किया है। कान का हमें कोई शिक्षण नहीं दिया गया है कभी।
हममें से बहुत कम लोगों को नाक से सुगंध आती है! जब मैं ऐसा कहता हूं,
आप कहेंगे, गलत कहते हैं, हम सबको गंध आती है। लेकिन आपने ख्याल किया है, आपको तब सुगंध आती है, जब कि वह बहुत तेज हो। इसलिए फ्रेंच परफ्यूम हैं। और दूसरे परफ्यूम हैं। जिसकी नाक को ठीक से सुगंध आती है, उसको वह बहुत घबड़ाने वाली मालूम पड़ सकती है, क्योंकि वह इतनी आक्रामक और इतनी हिंसक और इतनी तेज है, लेकिन उनका भी हमें पता नहीं चलता है, उनको भी डाल कर थोड़ा सा मालूम पड़ता है कि हां कुछ है, कुछ अच्छा लगा है।
लेकिन क्या हमें एक दूसरे के शरीर की भी गंध का कभी बोध होता है? एक-एक आदमी के शरीर में गंध है और एक-एक आदमी के शरीर की गंध का अपना अर्थ है। अपनी लय है। एक-एक आदमी के शरीर की गंध की अपनी खूबियां हैं। और कुछ मनोवैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि जिन दो व्यक्तियों ने विवाह किया हो, अगर उनकी गंध मेल न खाती हो, तो चाहे उन्हें पता हो या न पता हो, वे जिंदगी में कभी मेल न खा पाएंगे। उनकी गंध कहीं गहरे में मेल खाती हो, तब वे मेल खा पाएंगे। अन्यथा मेल खाना बहुत मुश्किल है लेकिन हमें गंध का कोई पता नहीं चलता है--हमें गंध का कोई शिक्षण नहीं दिया गया है! हमें स्पर्श का कोई पता नहीं चलता है।
हेलेन केलर सारी दुनिया में घूमी। वह लोगों के चेहरों पर हाथ लगा कर देखती थी। वह नेहरू से मिलने आई तो उसने उनके चेहरे को हाथ लगा कर देखा। दोनों हाथ से उसने नेहरू के चेहरे को छुआ--उनकी नाक को, उनकी आंख को, उनके चेहरे को, और हेलेन केलर ने कहा कि मैंने इतने सुंदर आदमी कम देखे। किसी ने पूछा, तुमने देखा कैसे, पहचानीं कैसे? तो उसने कहा कि नेहरू के चेहरे पर हाथ फेरते वक्त, ठीक मुझे वैसा ही लगा जैसे यूनान में संगमरमर की मूर्तियों पर फेरते वक्त लगा। ठीक वही, जैसे संगमरमर की मूर्ति का चेहरा हो, उतना ही रहस्यपूर्ण, उतनी ही सौंदर्य से भरी हुई, वही कटाव, वही तेजी। हेलेन केलर ने कहा कि नेहरू बहुत तेज आदमी हैं। उनके नाक के स्पर्श से, उनके चेहरे के स्पर्श से मुझे लगा कि बहुत तेज आदमी होंगे। हम किसी के स्पर्श से ऐसा पता लगा सकते हैं? हाथ में हमारे भी वही ताकत है। लेकिन हेलेन केलर के पास आंख नहीं है, कान नहीं है। कुछ भी नहीं हैं दूसरी इंद्रियां! हाथ से ही उसने सारा काम लिया है और उसका हाथ बहुत संवेदनशील हो गया है। वह हाथ अब पहचानने लगा है। उसकी अगुंलियां भी स्पर्श से वह जानने लगी हैं, जो आंखें जान सकती हैं।
इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह है कि हमारा पूरा शरीर इतना संवेदनशील यंत्र है कि अगर हम पूरे शरीर से जीने की कोशिश करें तो आनंद के न मालूम कितने लोकों का उदघाटन हो जाएगा। तब हमें एक गंध से ही परमात्मा का आगमन मालूम पड़े, और एक ध्वनि से भी परमात्मा का आगमन मालूम पड़े, और तब किसी के स्पर्श से भी परमात्मा का आनंद अनुभव होने लगे। लेकिन अभी हमें पता नहीं पड़ता। इस लिए तो हम अपने ज्ञानियों को कहते हैं, द्रष्टा, सिअर, विजनरी। हम अपने मुल्क में फिलासफी को दर्शन कहते हैं। यह आंख केंद्रित लोगों के ख्याल हैं। किसी ज्ञानी को अगर हम कहें श्रोता तो, कोई नहीं मानेगा। कहेगा द्रष्टा कहिए, श्रोता का क्या मतलब होता है? द्रष्टा यानी

देखने वाला, श्रोता यानी सुनने वाला। और अगर हम किसी ज्ञानी को कहें, स्पर्श करने वाला, तो कहा जाता है, क्या बातें करते हैं आप? लेकिन हमने आंख केंद्रित बना ली है। संस्कृति, खोपड़ी में भीतर विचार केंद्रित हो गए हैं और विचारों का द्वार आंख बन गई। आंख से जी रहे हैं, खोपड़ी में जी रहे हैं। और सारे व्यक्तित्व से सारा जीवन सिकुड़ कर ऊपर आ गया है, और हम कहीं भी नहीं जी रहे हैं। इसलिए हमारा जीवन से पूरा संपर्क भी नहीं हो पाता, और जीवन के आनंद के कितने द्वार हो सकते हैं, यह हमें पता नहीं चल पाता है। धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं, जो समग्र रूप से जी रहा है, टोटली जी रहा है, जो जीवन के सब अंगों से पूरी तरह जी रहा है। वही व्यक्ति परमात्मा का अनुभव कर पाएगा। अंश में जीने वाला अनुभव नहीं कर पाएगा। इसके दो कारण हैं।
समझ लें कि मैं एक बहुत बड़े मकान में एक छोटे से छेद से देखूं तो मुझे क्या दिखाई पड़ेगा। कोई एक द्वार का कोना, किसी एक दीवाल का हिस्सा, किसी चित्र का एक छोटा सा टुकड़ा, किसी फोटो का कोई एक कोना, लेकिन मुझे और कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। मुझे तो कमरे के भीतर जाकर पूरा देखना पड़ेगा, तभी मैं पूरे कमरे से परिचित हो पाऊंगा।
हम परमात्मा से परिचित नहीं हो पाते, क्योंकि हम पूरे जीवन से देख नहीं पाते। हम देखते हैं छोटे-छोटे टुकड़ों से और वह टुकड़े इतने भारग्रस्त हो जाते हैं कि उनका भी देखना मुश्किल हो जाता है।
सिर का काम है थोड़ा-बहुत। मेरे पैर चलते हैं, मुझे आपके घर तक आना है
तो पैर से चल कर आऊंगा। लेकिन अगर मैं घर बैठ कर ही पैर चलाता रहूं चौबीस घंटे, तो फिर जिस दिन मुझे आपके घर जाना है, पैर जवाब दे देंगे। मैं आपके घर न पहुंच पाऊंगा, क्योंकि पैर चौबीस घंटे चलेंगे तो फिर बिल्कुल न चल सकेंगे। पैर चल सकते हैं, क्योंकि विश्राम भी करते हैं। लेकिन मस्तिष्क विश्राम नहीं कर रहा है! वह सब काम उसी पर पड़ गया है। पैर का काम भी वही कर रहा है, प्रेम का काम भी वही कर रहा है! रोने का काम भी, हंसने का काम भी, विचार का काम भी, सेक्स का काम भी, धर्म का काम भी, प्रार्थना, भगवान, दुकान बाजार--सब काम कर रहा है! उसे विश्राम नहीं है जरा सा। इसका परिणाम यह हुआ है कि वह कुछ भी करने में असमर्थ हो गया है। वह कुछ भी नहीं कर पा रहा है! उसे विश्राम नहीं है जरा-सा। इसका परिणाम यह हुआ है कि वह कुछ भी करने में असमर्थ हो गया है। वह कुछ भी नहीं कर पा रहा है। सब एक मैस हो गया है, सब एक पागलपन, सब गड्ड-मड्ड, अनारकी हो गई है भीतर, वह कुछ भी नहीं कर पा रहा है। सब अस्त-व्यस्त हो गया है। इस भार ने आदमी को उलटा कर दिया है।
जब मैंने आदमी को करीब से देखा तो मुझे लगा, यह कहानी किसी दूसरे ग्रह
के संबंध में नहीं, इसी पृथ्वी के ग्रह के लोगों की है। सिर भारी हो गया है। दारूमा डोल से उलटी हालत हो गई है। कैसे भी गिराओ, आदमी उलटा ही गिर जाता है, शीर्षासन करने लगता है। इसे बदलना जरूरी है, क्योंकि इस शीर्षासन करती हुई स्थिति ने इतने घाव आदमी पर छोड़ दिए हैं कि उसका सारा प्राण दुख से भर गया है, पीड़ा से भर गया है।
और ध्यान रहे, अगर हम आनंद से भर नहीं पाए तो दुख से भर जाना अनिवार्य है। दोनों के बीच में काई जगह नहीं होती--या आनंद, या दुख। ऐसा नहीं होता कि हम आनंद को न पा सकें तो हम दुख भी न पाएं, बीच में रह जाएं। बीच में कुछ होता ही नहीं। अगर हम आनंद को उपलब्ध नहीं होते तो हम दुख को अनिवार्यरूपेण उपलब्ध हो जाते हैं। अगर हम स्वस्थ न हों, तो हम बीमार होंगे ही। स्वास्थ्य और बीमारी के बीच में कोई स्थान नहीं होता है। अगर कोई आदमी कहता हो कि मैं बीमार भी नहीं हूं, मैं स्वस्थ भी नहीं हूं तो समझना कि वह झूठ ही कहता है। या उसे पता न होगा, गलत कहता है, क्योंकि आदमी दोनों के बीच में नहीं हो सकता।
आदमी या तो बीमार होता है, या स्वस्थ होता है। अगर हम स्वस्थ हों, तो
ही हम बीमार होने से मुक्त हो सकते हैं।
हम सब दुखी हो गए हैं, हजार-हजार घाव हमारी आत्मा पर छिद गए हैं। सबसे लहू बह रहा है। और सबमें मवाद पड़ गई है, सब तरफ गंदगी और दुर्गंध हो गई है लेकिन आनंद की तरफ हम कैसे जाएं, उसका कुछ ख्याल नहीं आता। और अगर जाने की

कोशिश करते हैं, तो रास्ता बताने वाले लोग हैं, कोई कहता है कि बैठ कर ओम का जाप करो, कोई कहता है राम का जाप करो, कोई कहता है गीता पढ़ो, कोई कहता है कुरान पढ़ो, कोई कहता है कि भगवान की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर बैठ जाओ! लेकिन जिंदगी बदलने को कोई नहीं कहता है!
और अगर कोई जिंदगी बदलने को भी कहता है तो बड़ी पागलपन की बातें कहता है। कोई कहता है, जिंदगी बदल डालो--लोभ छोड़ दो, वेध छोड़ दो, काम छोड़ दो, यह सब छोड़ दें तो सब ठीक हो जाएगा। यह ऐसा ही है किसी आदमी से कहना, जैसे कोई बुखार से गर्मी में तप रहा हो, पसीना बह रहा हो, बुखार चढ़ा हो एक या चार डिग्री और उनके पास जाकर हम कहें मित्र बुखार छोड़ दो। और वह आदमी कहे, बात तो आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, छोड़ना तो मैं भी चाहता हूं, लेकिन छूटता नहीं है। हम कहें कि क्यों पकड़े हुए हो, छोड़ दो बुखार, मजा करो, स्वस्थ हो जाओ। बुखार छोड़ा नहीं जा सकता। बुखार छोड़ा नहीं जा सकता, स्वस्थ हुआ जा सकता है। इससे बुखार छूट जाएगा। कोई बात नहीं है कि आप लोभ छोड़ दें, वेध छोड़ दें, घृणा छोड़ दें। ये छोड़ी नहीं जा सकतीं। हां, आप आनंदित हो जाएं, इसलिए छूट जाती हैं। क्योंकि आनंदित व्यक्ति वेध नहीं करेगा, इसलिए नहीं कि वेध करने में असमर्थ हो गया, बल्कि इसलिए कि अपने आनंद को खोने के लिए अब वह तैयार नहीं होगा। अब वह तैयार नहीं होगा कि वेध करके वह अपना आनंद खो दे।
बुद्ध ने कहा है कि जब मैं छोटा था, तब मेरे पास हीरे-जवाहरातों के खिलौने थे। लाखों रुपयों की कीमत के खिलौने थे। लेकिन अगर कोई लड़ कर मेरी रोटी का एक टुकड़ा, खेलने में मुझसे छीन लेता था तो मैं वह लाखों का खिलौना फेंक कर मार देता था। कई बार ऐसा होता कि हीरे-मोती बिखर जाते, खिलौना टूट जाता। घर के लोग मुझसे कहते कि दो कौड़ी के टुकड़े के लिए तुमने लाखों का खिलौना बिगाड़ दिया। लेकिन तब मुझे पता ही नहीं था कि रोटी और खिलौने की कीमत क्या है। जब मैं बड़ा हुआ, तब मुझे पता चला। अब मुझसे कोई कहे कि एक रोटी का टुकड़ा किसी बच्चे ने छीना है तो तुम लाख रुपए का खिलौना फेंक कर मार दो, तो मैं नहीं मारूंगा। इसलिए नहीं--इसलिए नहीं कि मैंने वेध छोड़ दिया है, बल्कि इसलिए कि वेध का गणित बिल्कुल मूखर्तापूर्ण है, यह मुझे समझ में आ गया है। अब दो पैसे की रोटी के लिए लाख रुपए का खिलौना फेंककर मैं नहीं मार सकता हूं। अब मैं जानता हूं कि किस चीज का क्या मूल्य है। आनंद उपलब्ध हो तो ही मूल्य का पता चलता है।
लेकिन धर्मगुरु समझा रहे हैं, वेध छोड़ो, लोभ छोड़ो, सब ठीक हो जाएगा! और आदमी बेचारा सुन रहा है। और सोचता है कि छूट तो जाना चाहिए वेध और लोभ। वह छुटते नहीं। और धर्मगुरु भी बहुत अदभुत हैं। वह उसको फिर लोभ भी दिलाते हैं। वह कहते हैं लोभ छोड़ दो तो स्वर्ग मिल जाएगा। और उनके ख्याल में भी नहीं है कि अगर इसने स्वर्ग पाने के लिए लोभ छोड़ा ही नहीं। क्योंकि स्वर्ग पाने का लोभ फिर भी मौजूद रहा है। अब वह उसको समझा रहे हैं कि यदि तुम यह छोड़ दो तो यह मिल जाएगा। लेकिन उन्हें पता भी नहीं है कि यह मिल जाने का लोभ, फिर भी लोभ ही है, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह उसको कह रहे हैं कि एक रुपया यहां छोड़ो तो वहां करोड़ रुपए मिलेंगे।
गंगा के किनारे मैं गया था एक यज्ञ में। वहां संन्यासी समझाते थे कि यहां गंगा के किनारे एक पैसा दान करो तो करोड़ गुना मिलता है। लोभ छोड़ो, दान करो। अब वह आदमी बेचारा जो एक पैसा छोड़ रहा है, वह इसी लोभ में छोड़ रहा है कि इसका करोड़ गुना मिल जाए तो अच्छा। इसमें कोई हर्ज नहीं है। उसी के लोभ का शोषण किया जा रहा है, और समझाया जा रहा है, लोभ छोड़ दो। लेकिन लोभ कोई छोड़ता नहीं है दुनिया में। हां लोभ छूट जाता है अगर कोई इतनी बड़ी संपदा मिल जाए कि लोभ के कारण उसमें बाधा पड़ने लगे। तो लोभ छूट जाता है। वह संपदा मिल सकती है, लेकिन जिंदगी के रूपांतरण से। और जिंदगी के रूपांतरण का क्या मतलब है?
जिंदगी के रूपांतरण के तीन सूत्र मैंने आज कहने चाहे हैं: पहला, जीवन
के रूपांतरण का यह मतलब है कि ठीक से समझ लें कि बुनियाद क्या है और शिखर क्या है। भूल कर शिखर को बुनियाद मत बना लेना। अन्यथा जिंदगी का रूपांतरण कभी भी न होगा। कभी भूल कर शिखर को जमीन में रखने की कोशिश मत करना। जड़ों

को सम्हालना, क्योंकि जड़ें ही फूल लाती हैं। जड़ों को काट मत देना, जड़ें ही फूल बनती हैं। फूल और जड़ एक ही चीज के दो छोर हैं। वह जो नीचे है, और जो ऊपर है, वह कोई नीचे ऊपर नहीं हैं वह एक ही विस्तार है, यह पहली बात जीवन के रूपांतरण में ध्यान रखनी जरूरी है।
दूसरी बात मैंने यह कही कि सिर को भारी मत हो जाने देना। क्योंकि अगर सिर भारी हो गया तो शीर्षासन लग जाएगा--चाहे दिखाई पड़े, चाहे दिखाई न पड़े। सिर अगर भारी हो गया तो पैर ऊपर चले जाएंगे, सिर नीचे आ जाएगा। उल्टी दारूमा डोल मत बन जाना। लेकिन हम सब बन गए हैं। तो सिर को बांटना, डिसेंट्रलाइज करना सिर को, विकेंद्रित करना। उसको नीचे सारे अंगों में फैल जाने देना। और धीरे-धीरे प्रत्येक अंग को उसका काम करने देना। प्रत्येक अंग को उसका काम करने देना, ताकि एक केंद्र पर सारा काम इकट्ठा न हो जाए और एक केंद्र विक्षिप्त न हो जाए, पागल न हो जाए, ज्यादा बोझ में टूट न जाए, भारी न हो जाए, पत्थर न हो जाए। उसके ऊपर इतना बोझ न हो जाए, कि वह काम अस्त-व्यस्त हो जाए। सिर का अपना काम है, उतना ही उससे लेना। बाकी काम शरीर पर छोड़ देना। दूसरी बात यह ध्यान में रखनी जरूरी है।
और तीसरी बात यह ध्यान में रखना जरूरी है कि हमारे व्यक्तित्व के जितने द्वार हैं, जितनी इंद्रियां हैं, उनके प्रशिक्षण की जरूरत है। अपने कान को भी और गहरे, और गहरे सुनने में सक्षम बनाने की जरूरत है, ताकि पना हिले तो उसका संगीत भी पता चल जाए। स्वाद को इतना सूक्ष्म बनाने की जरूरत है कि जब हम भोजन करें तो वह भोजन जो दिखाई पड़ रहा है स्थूल, वही ख्याल में न आए, उस स्थूल में जो विराट, सूक्ष्म छिपा है, उसका भी पता चल जाए।
उपनिषद के किसी ऋषि ने कहा है, अन्न ही ब्रह्म है। यह कोई सिद्धांत नहीं है। यह किसी अदभुत रस-मग्न व्यक्ति का वक्तव्य है, जिसने इतने आनंद से भोजन किया होगा कि भोजन में उसे ब्रह्म की झलक दिखाई पड़ गई होगी। जिन्होंने कहा, अनाहद नाद है उसका, वह हम जैसे लोग नहीं हो सकते, क्योंकि जिन्होंने कान को इतने सूक्ष्म तलों में प्रशिक्षित किया होगा, इतने सूक्ष्म तल में कान से सुनने की कोशिश की होगी कि सूक्ष्म नाद उन्हें सुनाई पड़ने लगा होगा, वह संगीत जो सारे ब्रह्मांड में व्याप्त है। एक संगीत है जो सारे जगत को घेरे हुए है, लेकिन सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि सुनने की क्षमता हमने कभी विकसित ही नहीं की।
आपने कभी ख्याल किया है, आप भी निकलते है रास्ते से, एक पेंटर, एक चित्रकार भी निकलता है रास्ते से। आप सारे दरख्तों को हरा समझते हैं। सचाई यह है कि दो दरख्त एक से हरे नहीं होते हैं, हरे भी हजार तरह के हरे होते हैं, लेकिन यह चित्रकार को दिखाई पड़ता है कि हजार रंग हैं हरे रंग के। हरा रंग एक नहीं है, हजार शेड हैं हरे रंग के। असल में पन्ना--पन्ना हरे रंग का होता है, लेकिन हमें सिर्फ एक हरा रंग दिखाई पड़ता है। उसका कारण कुल इतना है कि हमारी आंख ने कोई रंग की सूक्ष्मता में उतरने की तैयारी नहीं की।
मैं उस शिक्षा को बुनियादी शिक्षा कहता हूं... गांधी की शिक्षा को बुनियादी नहीं कहता, वह बहुत गैर-बुनियादी शिक्षा है कि किसी को चर्खा चलाना सिखा दो, चटाई बुनना सिखा दो, तो शिक्षा पूरी हो जाए कि क ख ग सिखा दो तो चिट्ठी-पत्री लिख सके तो शिक्षा पूरी हो जाय। बुनियादी, बेसिक ऐजुकेशन मैं उसको कहता हूं जो कान को इतना सक्षम बना दे कि जीवन का संगीत पकड़ में आ जाए। जो आंख को इतना सक्षम बना दे कि रूप नहीं, अरूप की झलक मिलने लगे। जो स्पर्श को इतना सक्षम बना दे कि शरीर को तो छुए, लेकिन स्पर्श आत्मा तक पहुंच जाए। जो स्वाद को इतना सक्षम बना दे कि "अन्न ही ब्रह्म है", यह कहने की क्षमता आ जाए। और जो सारी इंद्रियों को इतना सक्षम बना दे कि सब तरफ के द्वार खुल जाएं और इन सब द्वारों से परमात्मा की झलक मिलने लगे। अधूरा उसे नहीं जाना जा सकता।
लेकिन पूरा तो हम तभी जानेंगे, जब हमारे घर के सारे द्वार खुले हों।
हम ऐसे व्यक्ति हैं जो घर के सब दरवाजे बंद करके भीतर बैठ गए हैं! और शिक्षा उसी दिन सच्ची होगी और क्रांतिकारी होगी, जिस दिन हम एक-एक बच्चे

को शीर्षासन सिर का करवाना नहीं, बल्कि समस्त इंद्रियों को खोलना सिखाएंगे!
ऐसे भी बच्चे हमसे ज्यादा सक्षम होते हैं। अगर बच्चा आपको प्रेम करता
है तो वह आपके चेहरे को छूना चाहेगा। अगर वह आपको प्रेम करता है तो वह आपके शरीर से आपको ओंठ भी लगाना चाहेगा। अगर वह आपको प्रेम करता है तो वह अपने गले से लटक कर आपके पूरे शरीर को भी छू लेना चाहेगा। वह पूरे शरीर से आपको पहचानने की कोशिश कर रहा है। लेकिन हम नहीं करते! अगर बच्चों को ठीक से शिक्षित किया जा सके तो उनकी सारी इंद्रियों के द्वार खुल सकते हैं! एक क्रांति इस जगत में आ सकती है, अगर हम बीमारी के सारे कारणों को समझ लें, और करुणा खाएं, दया नहीं।
ध्यान रहे, दया बड़ा अपमानजनक शब्द है। करुणा बिल्कुल दूसरी बात है। करुणा का मतलब है, एक पीड़ा, एक सफरिंग, जो हम सबके साथ अनुभव करते हैं। दया का मतलब है, हम ऊपर हैं और कोई नीचे है, जिस पर हम दया करते हैं। दया बहुत अच्छा शब्द नहीं है। दया से कोई क्रांति नहीं होगी। दान हो सकता है दया से, धर्मशाला बन सकती है, लेकिन दया से कभी कोई क्रांति नहीं होगी। क्रांति होगी करुणा से। करुणा का मतलब है मैं भी सम्मिलित हूं, वहीं खड़ा हूं, जहां आप खड़े हैं। आपकी पीड़ा मेरी पीड़ा है। मेरी पीड़ा आपकी पीड़ा है। हम सबकी पीड़ा सामूहिक पीड़ा है और हम सबने मिल कर मनुष्य को दुख के रास्ते पर धक्का दिया है। हम सब मिल कर मनुष्य को आनंद के मार्ग पर भी ला सकते हैं।
करुणा से क्रांति फलित हो तो ही क्रांति फलित हो सकती है। और एक क्रांति अत्यंत जरूरी हो गई, क्योंकि जो आदमी हम पहचानते थे, वह मरने के करीब पहुंच गया। नया आदमी नहीं जन्मेगा, पुराना मर जाएगा, तो मनुष्य-जाति समाप्त हो सकती है। नये आदमी के जन्म की जरूरत है। पुराना तो जाएगा, जा चुका, जा ही रहा है। अगर हमने नये को पैदा न किया तो आगे बहुत अंधकार हो सकता है।
बहुत से प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। कल इन सारे प्रश्नों की चर्चा मैं करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर छिपे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

करुणा और क्रान्ति
छठवां प्रवचन

अंतहीन यात्रा

पिछले चार दिनों की परिचर्चा में बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। जितने प्रश्नों के उत्तर संभव हो सकेंगे, मैं देने की कोशिश करूंगा। एक मित्र ने पूछा है कि शांति और क्रांति में क्या संबंध हो सकता है? करुणा और क्रांति में क्या संबंध हो सकता है और कैसे हो सकता है? ये दोनों बातें तो विरोधी मालूम पड़ती हैं, ऐसा किसी दूसरे मित्र ने भी पूछा है।

रास्ते पर कभी चलती बैलगाड़ी देखी होगी आपने। गाड़ी का चाक चलता है, लेकिन चाक के बीच एक कील ठहरी है और चलती नहीं है। क्या कभी यह दिखाई पड़ा कि ठहरी हुई कील के ऊपर ही चाक का चलना निर्भर होता है। दोनों में विरोध है--कील ठहरी हुई है और चाक चलता है। अगर कील भी चल जाए तो चाक न चल पाएगा। ठहरी हुई कील पर चलते हुए चाक का आधार है।
जीवन बहुत विरोधों से निर्मित है।
कभी जोर का बवंडर देखा हो, तूफान देखा हो, धूल का आकाश में उड़ता हुआ गुब्बारा देखा हो और जमीन पर पड़े हुए उसके चिह्न देखे हों तो एक बात देखकर हैरान होंगे कि सब तरफ जो गुब्बारा के चिह्न बन जाते हैं, लेकिन बीच में एक जगह खाली रह जाती है, वहां कोई तूफान नहीं होता। उठी हुई आंधी के घेरे के बीच में एक जगह होती है, जहां सब शांत होता। जहां कोई तूफान नहीं होता है! शांति मनुष्य के भीतर चाहिए और क्रांति उसके बाहर के जीवन में चाहिए। शांति बनेगी कील और क्रांति होगी घूमता हुआ चाक। और हम सोचते हैं कि
इन दोनों में से एक को बचा लें। या तो हम सोचते हैं कि शांति ही बच जाए, कील ही बच जाए, चाक न रहे, तो कील व्यर्थ हो जाएगी, क्योंकि कील की सार्थकता चाक के साथ ही है।
भारत ने, पूरब के मुल्कों ने यह प्रयोग करके देख लिया है कि शांति ही
बच जाए, क्रांति की कोई जरूरत नहीं है तो हम मुर्दा हो गए जमीन पर, मरे हुए लोग हो गए। हमारा अस्तित्व अनस्तित्व जैसा हो गया, न होने के बराबर हम हो गए और अच्छा था कि न हो जाते। हमारा होना न होने से भी दुखद हो गया। रुग्ण, बीमार, दीनहीन, दरिद्र, दास। हमने जीवन की सारी पीड़ा झेल ली एक गलती के आधार पर कि हमने कहा, हम कील बचाएंगे, हम चाक नहीं बचाएंगे, क्योंकि चाक कील का विरोधी है। हम केवल शांति बचाएंगे, क्रांति की, परिवर्तन की हमें कोई जरूरत नहीं।
पश्चिम ने दूसरी भूल कर ली। उन्होंने चाक बचा लिया और कील फेंक दी। अब चाक को लिए बैठे हैं, लेकिन बिना कील के चाक बेकार है। उन्होंने क्रांति बचा ली है, परिवर्तन बचा लिया है, शांति की फिक्र छोड़ दी है। उनका भी तर्क यही है कि अगर क्रांति करनी है तो शांति की क्या जरूरत है।
और ध्यान रहे, दिखायी पड़ता है कि पूरब और पश्चिम उल्टे हैं, लेकिन दोनों का तर्क एक है। पूरब का तर्क यह है कि अगर शांति चाहिए तो क्रांति की क्या जरूरत है। पश्चिम का तर्क है कि अगर क्रांति चाहती तो शांति की क्या जरूरत है। दोनों का तर्क भिन्न नहीं है। दोनों का तर्क एक है, और वह इस बात पर निर्भर है कि जीवन में हम एक चीज को चुनेंगे, विरोध को हम छोड़ देंगे। लेकिन जीवन विरोध से बना है, जीवन की सारी व्यवस्था विरोध पर खड़ी है।
कभी किसी मकान का दरवाजा देखें। दरवाजे में कारीगर ने विरोधी ईंटें लगा दी हैं। एक तरफ से ईंटें गयी हैं और दूसरी तरफ से ईंटें आयी हैं। और दोनों ईंटों में विरोध है। दोनों के विरोध के ऊपर सारा भवन खड़ा हो गया है! हम कह सकते हैं कि ईंटें एक ही दिशा में लगा सकते थे, लेकिन फिर भवन खड़ा नहीं होता।
दो विरोध के आधार पर बल पैदा होता है, इसलिए जीवन सभी विरोधों के आधार
पर खड़ा हुआ है।
स्त्री और पुरुष एक तरह का विरोध है, ऋण और धन। दोनों में एक तरह का विरोध है। निगेटिव और पाजिटिव पोल्स, एक तरह का विरोध है। अगर हम जिंदगी

को खोजते जाएंगे तो सब तरफ विरोध मिलेंगे और विरोधों के आधार पर जीवन का भवन खड़ा होता हुआ मिलेगा।
लेकिन पूरब ने भी इस बात को न समझा और पश्चिम ने भी न समझा। पूरब ने भी आधी संस्कृति बनाई, कहा कि हम सिर्फ जिंदा रहेंगे, शांत होकर रहेंगे। पश्चिम ने कहा हम जिंदा रहेंगे तो अंत होकर रहेंगे, शांति से क्या संबंध है। यह ऐसा ही है, जैसे मैं कहूं, मैं सांस सिर्फ भीतर ले जाऊंगा, बाहर न ले जाऊंगा, क्योंकि बाहर ले जाने और भीतर ले जाने में विरोध है। अब जब भीतर श्वास ले जानी है तो बाहर श्वास ले जाने की क्या जरूरत है। और जब भीतर ले जानी है तो भीतर ही ले जाइए और रोक रखिए भीतर, श्वास को बाहर मत जाने दीजिए, क्योंकि बाहर और भीतर में विरोध है। लेकिन अगर भीतर ही सांस रोक लें तो मर जाएंगे। दूसरा आदमी कहता है कि जब बाहर ले जानी ही पड़ती है तो भीतर क्यों ले जाएं, बाहर ही रोक दें। दोनों में विरोध है, हम बाहर ही रोक देते हैं। बाहर रोकने वाला भी मर जाएगा। एक भीतर रोक कर मरेगा, एक बाहर रोककर मरेगा, क्योंकि जिंदगी बाहर भीतर आते हुए विरोधों पर निर्भर है।
जिंदगी निरंतर विरोध पर निर्भर है।
लेकिन हम इस विरोध को कभी स्वीकार नहीं कर पाते, इसलिए बड़ी मुश्किल हो जाती है। हम कहते हैं जन्म तो हमें स्वीकार है, मृत्यु हमें स्वीकार नहीं है। यह बड़े पागलपन की बात है। जिंदगी जन्म और मृत्यु के विरोध के आधार पर खड़ी हुई है। जिंदगी जन्म और मृत्यु के विरोध पर ही निर्भर है। हम कहते हैं, जन्म तो बहुत सुखद है, मृत्यु बहुत दुखद है। जन्म स्वीकार करते हैं, मृत्यु हम नहीं चाहते, तो पागलपन की बात कर रहे हैं। जिस दिन हम जन्म और मृत्यु दोनों को एक साथ स्वीकार कर पाएंगे, उस दिन जिंदगी का रस और ही हो जाएगा। शांति और क्रांति एक साथ स्वीकार करेंगे तो जिंदगी कुछ बात और ही हो जाएगी। भीतर एक बिंदु होगा, जहां कोई परिवर्तन नहीं। और बाहर परिवर्तन, परिवर्तन का घूमता हुआ चाक होगा। और भीतर एक कील होगी, जहां कोई परिवर्तन नहीं।
परमात्मा निरंतर वहां है, जहां कोई परिवर्तन नहीं।
संसार वहां है, जहां निरंतर परिवर्तन है।
और वह जो परमात्मा है निरंतर शांत, चुप, मौन, जहां कभी कुछ न बदला, उसके ऊपर ही सारे संसार का चाक घूम रहा है।
संसार शब्द आपके ख्याल में है?
संसार का अर्थ एक चाक होता है। संसार का अर्थ होता है, जो घूम रहा है,
दी व्हील। संसार शब्द का ही मतलब होता है घूमता हुआ, और परमात्मा का अर्थ होता है ठहरा हुआ। लेकिन ये दोनों विरोधी नहीं हैं। इस अर्थ में विरोधी नहीं हैं कि एक को हम बचा लेंगे। यह इस अर्थ में विरोधी हैं कि दूसरा एक पर निर्भर है। भीतर आती सांस बाहर जाती सांस पर निर्भर है। संसार न हो तो परमात्मा भी न होगा और परमात्मा न हो तो संसार भी न होगा। और इस भूल में मत रहना कि परमात्मा एक क्षण भी संसार के बिना रह सकता है। और इस भूल में भी मत पड़ना कि संसार एक क्षण भी परमात्मा के बिना रह सकता है। वे दोनों विरोधी ध्रुव हैं, जो एक दूसरे को सम्हाले हुए हैं।
और इसलिए मुझे सब विरोध स्वीकार है और क्रांति और शांति के विरोध को मैं जिंदगी को बदलने, परिवर्तन करने और जिंदगी को उससे भी जोड़ने में उपयोगी मानता हूं, जो सनातन है, शाश्वत है, जिसका कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है। लेकिन मेरी बातों में इसलिए कठिनाई हो जाती है कि कोई कहता है कि आप इधर क्रांति की बात कर रहे हैं, उधर आप शांति की बात करते हैं। और मैं मानता ही ऐसा हूं कि वही आदमी क्रांति कर सकता है जो शांत है। और जो आदमी शांत नहीं है, अगर क्रांति करेगा तो क्रांति के नाम पर सिर्फ पागलपन करेगा और कुछ भी नहीं कर सकता है। सिर्फ शांत व्यक्ति क्रांति कर सकता है। शांत हाथों में ही क्रांति का हथियार दिया जा सकता है, अन्यथा क्रांति का हथियार खतरनाक सिद्ध हुआ है और खतरनाक सिद्ध होता रहेगा। इसलिए मैं कहता हूं, करुणा पहला सूत्र है, क्रांति उसके पीछे आनी चाहिए, करुणा पहले।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि जो है, उसे समझ लेने से करुणा आ जाएगी। जो है, उसे समझ लेने से करुणा कैसे आ जाएगी?

अगर जो है, उसे हम समझ लें तो करुणा के अतिरिक्त हमारे चित्त में और कुछ भी न रह जाएगा, क्योंकि जो है, वह इतना दुखद हो गया है, जो है, इतना रुग्ण हो गया है, जो है, हमारे चारों तरफ फैला हुआ, वह इतना बीमार और विक्षिप्त हो गया है कि अगर हम उसे देख लें और समझ लें तो करुणा के सिवाय और कोई भाव न आएगा। लेकिन हो सकता है, आप कहें वेध आ जाए। वेध तब आता है, जब हम पूरी स्थिति से अपने को बाहर खड़ा कर लेते हैं। करुणा तब आती है, जब पूरी स्थित में हम भी सम्मिलित होते हैं और एक हिस्सा होते हैं!
अगर आज कोई आदमी चोरी कर रहा है तो हमें वेध आ सकता है कि इस चोर को मिटा डालें। लेकिन अगर हमें पूरी स्थिति--यह पता चल जाए और यह ख्याल आ जाए कि हम भी उसकी चोरी में हाथ बंटा रहे हैं, हम भी उसकी चोरी में साझीदार हैं। वह जो मजिस्ट्रेट अदालत में बैठ कर चोरों का निर्णय कर रहा है, वह भी चोरों की चोरी में साझीदार है। अगर हमें यह ख्याल आ जाए तो मजिस्ट्रेट को वेध नहीं आएगा, करुणा आएगी और चोर को सजा देते वक्त वह यह जानेगा कि मैं अपने को सजा दे रहा हूं और तब सजा देना बहुत मुश्किल हो जाएगा। परिवर्तन और क्रांति करना आसान हो जाएगा।
चोरों को सजा हम कितने दिन से दे रहे हैं, लेकिन एक चोर को हम कम नहीं
कर पाए। जमीन पर चोर रोज बढ़ते गए हैं। जितनी सजा बढ़ी है, उतने चोर बढ़ते गए हैं, जितने जेलखाने बढ़े हैं, उतने चोर बढ़ते चले गए हैं! पृथ्वी पर अनादि से हम चोरों को सजा दे रहे हैं, लेकिन एक चोर कम नहीं कर पाए! और उसका कारण यह है कि चोर को सजा देते वक्त हम अपने को बाहर रख लेते हैं। हम सोचते हैं कि हम तो चोर नहीं हैं, जो चोरी कर रहा है वह चोर है, उसको सजा दे रहे हैं। लेकिन हमारे गहरे हाथ हैं, और इसलिए चोर को सजा मिल जाती है, लेकिन चोरी बंद नहीं होती, क्योंकि हम, जिसका हाथ चोर को पैदा करने में था, तब तक दूसरे चोर पैदा कर लेते हैं। बल्कि हम जिस कारागृह में चोरों को बंद करते हैं, वह चोरों के लिए शिक्षा का प्रशिक्षण महाविद्यालय हो जाता है, और कुछ भी नहीं होता। वहां और पुराने, ज्यादा योग्य, ज्यादा कुशल चोरों का साथ हो जाता है और कुछ भी नहीं होता। वहां और अच्छी चोरी करना सीख कर वापस लौट आते हैं। इसलिए एक दफा जो आदमी जेल चला गया है, फिर वह नियमित रूप से जेल जाने लगता है, वह जेल बार्ड ही हो जाता है, उस पक्षी का घर ही वही हो जाता है। उसे यहां उतना अच्छा नहीं लगता है, जितना वहां अच्छा लगने लगता है। वहां उसके संगी, साथी, मित्र, सब इकट्ठे कर दिए हैं। वहां हमने चोरी के लिए सबको इकट्ठा कर दिया है, पूरे प्रदेश के चोरों को कि तुम साथ सलाह-मशविरा करो और एक दूसरे को तरकीबें बताओ कि कैसे पकड़ा न जा सके। और हम चारों तरफ चोर पैदा किए चले जा रहे हैं। सजा हम इसलिए दे भी नहीं रहे हैं कि चोर को मिटा देना है। क्योंकि चोर तो हम भी हैं। अगर चोर मिटेगा तो हम भी मिट जाएंगे। सजा हम इसलिए दे रहे हैं कि हम जो सजा देने वाले हैं, अपने मन में यह मजा ले सकें कि हम चोर नहीं हैं। चोर कोई और है, इसका हम आनंद ले रहे हैं। यह तो वेध है चोर के ऊपर। इससे कोई परिवर्तन नहीं होगा।
मैंने सुना है, इंगलैंड में सौ वर्ष पहले जो आदमी चोरी करता था, उसे चौराहों पर खड़ा करके कोड़े मारे जाते थे, ताकि और लोग देख लें और लोग सचेत हो जाएं कि चोरी करने वाले की यह गति और यह दुर्गति होती है। लेकिन सौ वर्ष पहले फिर यह सजा बंद कर देनी पड़ी, क्योंकि नतीजे बड़े उल्टे आए। लंदन में एक चौराहे पर कुछ पांच-छह चोरों को कोड़े मारे जा रहे थे। हजारों लोग देखने इकट्ठा हुए थे। आप यह मत सोचना कि यह देखने इकट्ठे हुए थे कि चोरों की क्या गति होती है। वे असल में यह देखने इकट्ठे हुए थे कि जब कोड़े मारे जाते हैं, तो चमड़ा कैसे उधड़ता है, खून कैसे बहता है। उनके दिल में भी कई दफा कोड़े मारने की इच्छा हुई होगी, वह अधूरी रह गई। वह उसे देख कर पूरा कर लेना चाहते हैं। वह वहां से चोरी नहीं करनी चाहिए। यह सीख कर नहीं लौटते हैं। वहां वहां से कोड़ा मारने का कैसा रस और मजा है, इसकी थ्रिल और इसकी पुलक लेकर वापस लौटते हैं।
लेकिन एक दिन तो और अद्भुत घटना घटी। उस दिन नगर मैं जब चार-पांच चोरों को कोड़े से पीटकर बेहोश कर दिया गया और सड़क खून से भर गयी, तो कोई दस हजार आदमी देखने इकट्ठे हुए थे। तभी पता चला कि कुछ लोगों की जेबें कट

गयीं। भीड़ थी, लोग देख रहे थे चोरों को पिटते हुए। कुछ चोरों ने उनकी जेबें काट लीं, तब यह पता चला कि जब चोर पीटे जा रहे हों, उनकी चमड़ी उधेड़ी जा रही हो तो उसी वक्त जेब कट सकती है! तो इससे कोई चोरी नहीं रुक सकती। कोई सजा चोरी नहीं रोक पायी है, क्योंकि सजा हमारी करुणा से नहीं है, सजा हमारे वेध से निकल रही है। वेध से कोई परिवर्तन कभी भी नहीं होता है और वेध से अगर परिवर्तन जबरदस्ती थोप भी दिया जाए तो बहुत जल्दी विद्रोह शुरू हो जाता है, बगावत शुरू हो जाती है। और वेध को कितनी देर थोपा जा सकता है, आज नहीं कल वेध को शिथिल होना पड़ता है।
रूस में एक क्रांति हुई, जो वेध से हुई, करुणा से नहीं। तीस, पैंतीस, चालीस वर्ष तक उन्होंने कोड़े के बल पर क्रांति को बचाने की कोशिश की, बंदूक के बल पर क्रांति को बचाने की कोशिश की। अंदाज किया जाता है कि कोई साठ लाख से एक करोड़ लोगों तक की रूस में हत्या की गयी क्रांति के बाद। क्रांति को बचाने के लिए यह हत्या करनी पड़ी। कोई हर्ज नहीं, अगर क्रांति बच जाए तो समझ में आता है लेकिन इतनी हत्या के बाद, इतने लोगों को इतना कष्ट, इतनी पीड़ा देने के बाद अब वहां क्रांति कितनी देर टिकाई जा सकती है। वापस रूस व्यक्तिगत पूंजी को बांटने की तरफ सोचने लगा है। मकान व्यक्तिगत अब हो सकता है और कार भी अब व्यक्तिगत हो सकती है। और ऐसा लगता है कि आने वाले पचास वर्षों में रूस और अमरीका में फर्क करना बहुत मुश्किल हो जाएगा कि कौन समाजवादी है और कौन पूंजीवादी। क्योंकि अमरीका में भी पूंजीवाद को जबरदस्ती थोपने की कोशिश मुश्किल हुई जा रही है। वे धीरे-धीरे न मालूम कितनी चीजों का राष्ट्रीयकरण करते चले जा रहे हैं! इधर रूस में जबरदस्ती समाजवाद थोपने की बात मुश्किल होती चली जा रही है। धीरे-धीरे पूंजीवाद को मौका दिए चले जा रहे हैं। पचास साल में वे एक जगह आ जाएंगे, जहां दोनों के बीच फासला करना मुश्किल होगा। नाम के फासले रह जाएंगे, एक समाजवादी होगा, एक पूंजीवादी होगा, लेकिन फासले नहीं रह जाएंगे।
जबरदस्ती किसी भी चीज को बहुत देर तक नहीं ठहराया जा सकता है। और एक मजा है कि जिस चीज को हम जबरदस्ती ठहराते हैं, बहुत जल्दी पेंडुलम उलट जाता है। अगर आप किसी दुश्मन की छाती पर बैठ गए हैं जबरदस्ती और पूरी ताकत से उसको दबा रहे हैं, अगर वह होशियार है और चुपचाप पड़ा रहे और ताकत न लगाए तो थोड़ी देर में आप थक जाएंगे, क्योंकि आपको ताकत लगानी पड़ी है और वह ताकत को इकट्ठा कर लेगा उतनी देर में। बहुत जल्दी वह मौका आएगा कि आप नीचे पड़े होंगे और वह आपकी छाती पर बैठा होगा। क्योंकि जो श्रम करता है, वह थक जाता है और जो नीचे दबा होता है, वह विश्राम कर लेता है। इसलिए करवटें बदलते रहते हैं। वेध और प्रतिशोध से क्रांति नहीं होती। सिर्फ वह करवट बदलता रहता है। करवट बदलने से कोई मतलब नहीं है।
क्रांति से मेरा मतलब है, मनुष्य का हमने आज तक जैसा निर्माण किया है, उसमें भूल हो गयी है। उस भूल की वजह से हम बहुत दुख और बहुत पीड़ा और चिंता उठा रहे हैं। उस भूल के कारण पूरी मनुष्य जाति पागल होने के करीब पहुंच गयी है। उस भूल को समझ कर, उस भूल को पहचान कर, उस भूल को देख कर स्वभावतः करुणा पैदा होगी, क्योंकि वह भूल हमने ही मिलजुल कर की है। यह भाव हमने ही मारे, चाहे नींद में मारे हों, चाहे बेहोशी में मारे हों। हमने अपने ही पैर अपने हाथ से काट लिए हैं और हमने अपनी आंखें अपने हाथों से फोड़ ली हैं और अपने को सब तरह से अपंग कर लिया है। यह मनुष्य की जो अपंग स्थिति है, पैरालाइज्ड, लकवा लगी हुई, सड़क पर घिसटती हुई, घावों से भरी हुई--इसमें हम भी जिम्मेवार हैं। अगर यह प्रतीति हो तो करुणा पैदा होगी।
करुणा का मतलब यह नहीं है कि किसी और पर करुणा पैदा होगी। करुणा का मतलब हम अपने पर करुणा कर पाएंगे। वेध असंभव हो जाएगा। और अगर ऐसी करुणा पैदा हो तो परिवर्तन अनिवार्य है। अगर हमें दिखायी पड़ जाए कि कुछ गलत हो गया है तो गलत को फिर खींचने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। वह अपने आप गिर जाएगा। करुणा से आने वाली क्रांति का अर्थ है कि हमें कुछ तोड़ने-फोड़ने को उतना सवाल नहीं है, जितना समझने का सवाल है। अगर समझ पूरी हो जाए तो शायद चीजें अपने आप छूट जाएं, टूट जाएं, अलग हो जाएं। इतनी समझ विकसित करने की

बात है। और वह समझ विकसित हो सकती है। अगर हम अपने दुखों के मूल कारणों की खोज करें तो समझ के विकसित होने में कोई बाधा नहीं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप करुणा, अहिंसा, दया, प्रेम इन शब्दों में क्या फर्क करते हैं? ये तो सब एक ही अर्थ रखते हैं।
ये एक ही अर्थ नहीं रखते। इनमें बहुत बुनियादी फर्क है। असल में सही अर्थों में दो समानर्थक शब्द होते ही नहीं हैं। कितने ही समानार्थक मालूम पड़ते हों, उनमें कुछ बुनियादी फर्क होता है, इसलिए दो शब्द ईजाद करने पड़ते हैं। अब जैसे प्रेम और अहिंसा और करुणा और दया, इन्हें थोड़ा समझ लेना उपयोगी है, क्योंकि हम इन शब्दों से बहुत ज्यादा भरे हुए हैं।
अहिंसा का मतलब है दूसरे को दुख न पहुंचाना। वह बिल्कुल निगेटिव है।
एक आदमी किसी को प्रेम किए हुए भी अहिंसक हो सकता है, क्योंकि किसी को दुख न पहुंचाना, इतना ही अहिंसा शब्द का अर्थ है--किसी की हिंसा न करना, किसी को दुख न पहुंचाना।
लेकिन प्रेम पॉजीटिव है। प्रेम का मतलब है किसी को सुख पहुंचाना। प्रेम का मतलब यह नहीं है कि किसी को दुख न पहुंचाना। प्रेम का मतलब है किसी को सुख पहुंचाना।
तो प्रेम तो आएगा किसी को सुख पहुंचाने से। और अहिंसक सिकुड़ जाएगा कि किसी को दुख न पहुंचे, काफी है। अगर आपके रास्ते पर कांटे बिछे हैं तो प्रेम उन्हें आकर उठाएगा। अहिंसक आपके रास्ते पर कांटे नहीं बिछाएगा, बस इतना ही है। लेकिन आपके रास्ते पर पड़े कांटे को उठाने नहीं आएगा अहिंसक, क्योंकि अहिंसक को आपको दुख नहीं पहुंचाना, उतना ही ध्यान रखना पर्याप्त है। शर्त ही इतनी है कि आपको दुख नहीं पहुंचाना है। और यह भी, आपको दुख क्यों नहीं पहुंचाना है कि आपको दुख पहुंचाने से मेरे नर्क जाने की संभावना है। आपको दुख पहुंचाएंगे तो मेरे नर्क में सड़ने का उपाय हो जाएगा। और अगर आपको दुख न पहुंचाया तो मेरी मोक्ष की सीढ़ी बन जाएगी। आपसे कोई प्रयोजन नहीं है अहिंसक को। अहिंसक को प्रयोजन है अपने से। वह इस फिक्र में लगा है कि मैं मोक्ष कैसे जाऊं, नर्क से कैसे बचूं इसलिए किसी को दुख नहीं पहुंचाना है। दुख पहुंचाने से कहीं नर्क न हो जाए।
लेकिन प्रेम का मतलब बहुत भिन्न है। प्रेम का मतलब यह है कि किसी को सुख पहुंचाना है। और किसी को सुख पहुंचाने में ही हमारा सुख है। और तब प्रेम आपको स्वर्ग पहुंचाने के लिए नरक जाने के लिए भी तैयार हो सकता है, लेकिन अहिंसक आपको सुख पहुंचाने के लिए नरक जाने को तैयार नहीं हो सकता है। अहिंसक आपको दुख नहीं पहुंचाता, ताकि उसके स्वर्ग जाने की तैयारी पूरी हो सके। अहिंसा निषेध है, निगेटिव है, प्रेम पाजिटिव है, विधायक है। लेकिन प्रेम और करुणा में भी बहुत फर्क है। प्रेम का अर्थ है कि हम किसी को सुख पहुंचाना चाहते हैं और हम किसी के सुख में भागीदार होना चाहते हैं। करुणा का अर्थ है कि हम उसके दुख में भागीदार हैं और सबका दुख हमें दिखायी पड़ गया है और चित्त करुणा से भर गया है।
फर्क को समझ लेना।
प्रेम का अर्थ हैः सबके सुख में भागीदार होना चाहते हैं।
करुणा का अर्थ हैः सबके जीवन में जो सुख है, उसमें हम हिस्सेदार हैं, इसकी प्रतीति, इसका बोध, इसकी सफरिंग, इसकी पीड़ा।
तो प्रेम में तो एक आनंद है। करुणा में एक पीड़ा है। प्रेम में एक रस है, करुणा में एक घाव है। करुणा एक फोड़ा की तरह दुखता हुआ घाव है, प्रेम एक फूल है। करुणा एक कांटा की तरह चुभन है, इसलिए प्रेम और करुणा समानार्थी नहीं हैं।
करुणा और दया तो बहुत ही भिन्न बातें हैं।
करुणा का अर्थ हैः सबके दुख की प्रतीति और उस दुख में मैं भी जिम्मेदार हूं इसकी प्रतीति।
दया में? दया में दूसरे के दुख की प्रतीति है लेकिन दूसरा अपने दुख के लिए जिम्मेदार है, इसकी भी प्रतीति है और मैं इसके दुख को दूर करने का थोड़ा बहुत उपाय कर रहा हूं, इसके अहंकार का भी बोध है। इसलिए दया करने वाला ऊपर खड़ा होता है। दया करने वाला दान दे रहा है, दया करने वाला कृपा कर रहा है,

दया करने वाला बहुत सूक्ष्म अपमान कर रहा है, जिसके साथ दया कर रहा है। दया शब्द बहुत बेहूदा और कुरूप है, बहुत अच्छा नहीं है। इसलिए भूल कर भी आप दया मत करना, क्योंकि जिस पर भी दया करेंगे, उसका अपमान करेंगे ही।
प्रेम करना समझ में आ सकता है, लेकिन प्रेम में बड़ा फर्क है। जब प्रेम किसी को देता है तो ऐसा अनुभव नहीं करता है कि मैंने दिया। प्रेम सदा ऐसा ही अनुभव करता है कि जितना देना चाहिए था, उतना नहीं दे पाया। एक मां से पूछें कि तूने अपने बेटे के लिए कितना किया। वह आंख से आंसू बहाने लगेगी और कहेगी कि मैं कुछ भी नहीं कर पायी। जो कपड़े मुझे देने थे, वह नहीं दे पायी, जो खाने मुझे खिलाने थे, वह नहीं खिला पायी, जो शिक्षा मुझे देनी थी, वह मैं नहीं दे पायी। मां एक पूरी की पूरी फेहरिस्त बता देगी, जो वह नहीं कर पायी। लेकिन जाएं, एक धर्मादा कमेटी के सेक्रेटरी से पूछें कि आपने गरीबों के लिए क्या-क्या किया, तो पूरी फेहरिस्त बता देगा कि हमने यह किया, हमने वह किया। जो उन्होंने नहीं किया, वह भी उसमें जोड़ देंगे कि हमने यह किया। दया करने वाला कहता है, हमने यह किया। वह अहंकार की तृप्ति कर रहा है। प्रेम करने वाला कहता है, हम यह नहीं कर पाए, करना था। उसका अहंकार टूट गया है।
प्रेम अहंकार तोड़ जाता है, दया अहंकार मजबूत कर जाती है।
यह सब शब्द बड़े अलग-अलग हैं। ये समानार्थी नहीं हैं। इनके पीछे गहरे भेद हैं। दया से कोई क्रांति नहीं होती। इसलिए हिंदुस्तान में दया पांच हजार साल से चल रही है, लेकिन क्रांति नहीं हुई है। दया पुरानी है। हम बड़े दयावान लोग हैं और जैसे कि दयावान लोग खतरनाक होते हैं, हम खतरनाक हैं। हम पांच हजार साल से दया कर रहे, दान कर रहे हैं। हम कह रहे गरीब पर दया करो बीमार पर दया करो, क्यों? क्योंकि गरीब पर दया करने से आपके स्वर्ग की सीढ़ी उपलब्ध होगी।
करपात्री जी ने एक किताब लिखी है। बहुत अदभुत किताब है। उसे खूब सबको
पढ़ लेना चाहिए। उस किताब में उन्होंने समाजवाद का विरोध किया है और कहा है, समाजवाद के विरोध के कई कारण हैं। उसमें एक कारण यह है कि समाजवाद में कोई गरीब नहीं रह जाएगा कोई अमीर न रह जाएगा तो फिर दया कौन करेगा, दान कौन करेगा? दया कौन लेगा, दान कौन लेगा? और बिना दान के मोक्ष असंभव है, इसलिए समाजवाद में फिर मोक्ष संभव न रह जाएगा! अगर मोक्ष चाहिए तो समाजवाद मत आने देना। अगर मोक्ष चाहिए तो गरीब को गरीब बनाकर रखना और सड़क पर भिखमंगे को खड़ा रखना, क्योंकि उसी के कंधे पर दया करके आप मोक्ष जा सकेंगे और तो कोई रास्ता नहीं।
ये दया करने वाले लोग हैं, इनमें करुणा है? इनकी बात सुन कर तो ऐसा लगता है कि करुणा का इनमें कहीं कोई पता नहीं। वे यह कह रहे हैं कि गरीब को रखना पड़ेगा, नहीं तो दान कौन लेगा! आज रूस में कोई दान तो नहीं लेगा। अगर आप किसी को दान देने जाएंगे, तो हो सकता है पुलिस में पकड़ कर रिपोर्ट लिखवा दे कि यह आदमी हमको दान देने की कोशिश कर रहा है। हमारा अपमान करना चाहता है। आज कोई भीख मांगने हाथ तो नहीं फैलाएगा आपके सामने। आज रूस में दानी होने का कोई उपाय नहीं। तो करपात्री जी ठीक कहते हैं। शास्त्रों में यही लिखा है कि बिना दान के मोक्ष नहीं, क्योंकि दान सबसे बड़ा धर्म है। तो रूस में सबसे बड़े धर्म की तो जड़ कट गई। तो वह ठीक कह रहे हैं। शास्त्र के हिसाब से बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि अगर मोक्ष को बचाना है तो गरीब को बचाओ, भिखमंगे बीमार को बचाओ। बीमार रहेगा, तब तो अस्पताल बना पाओगे। और जब गरीब रहेगा, तभी तो धर्मशाला काम आएगी। और जब भिखमंगे भीख मांगेंगे, तब दया करने वाले लोगों को मजा आएगा, नहीं तो सब मुश्किल हो जाएगा।
दया करने वाले में करुणा नहीं है, दया करने वाले में बहुत गहरी कठोरता
और क्रूरता है। वह दया में भी रस ले रहा है। वह जब दो पैसे आपको दे रहा है तो दो हजार रुपये का अहंकार वापस खरीद ले रहा है। वह दो पैसे इसीलिए चिल्ला कर देता है, अखबार में खबर करके देता है, पत्थरों पर खोद कर देता है! धर्मशालाओं पर पत्थर लगा देता है कि मैंने दिए! उसे रस इसमें नहीं है कि कोई पीड़ित था, उसे रस इसमें है कि उसने किसी की पीड़ा दूर करने का बड़ा भारी काम किया है।

दया क्रांति नहीं लाती, इसलिए भारत में क्रांति नहीं आ सकी। दया बिल्कुल क्रांति को रोकती है, क्योंकि दया भिखमंगे को दो पैसे दे देती है, लेकिन भिखमंगे क्यों पैदा होते हैं, इसकी तलाश में नहीं जाती। और भिखमंगे को दो पैसे मिल जाते हैं तो भिखमंगा भी राहत अनुभव करता है। वह भी उस सीमा पर नहीं पहुंच पाता कि दान देने वाले की गर्दन पकड़ ले और कहे कि दान नहीं लेंगे। और कहे कि पहले हमारी जेब काटते हो और फिर हमको दान देने आते हो। वह कहे कि पहले हमें भिखमंगा बना देते हो और फिर दान देने आते हो। वह कहे कि पहले तो हमें चूस लेते हो और फिर हमारे लिए अस्पताल बनाते हो। खून का दान चल रहा है! यह जाल कैसा है?
नहीं, दया यह भी नहीं होने देगी। दया कांशेलेशन बन जाती है। और गरीब
को लगता है कि अमीर कितना दयावान है। अमीर को बचाने में दया ने जितना काम किया है, उतना और किसी चीज ने काम नहीं किया। अमीर को बचाने में धर्मशालाओं ने जितनी आड़ की है और मंदिरों ने, उतनी और किसी चीज से नहीं की है, क्योंकि ऐसा लगता है कि कितना दयावान है अमीर। लेकिन यह नहीं दिखाई पड़ता है कि धन इकट्ठा करना क्रूरता है! एक लाख एक आदमी क्रूरता से इकट्ठा करता है, दस हजार रुपये दान करता है, फिर वह महान दानी हो जाता है। फिर हम उसको नमस्कार करते हैं कि वह परम दानी है। लेकिन कोई नहीं पूछता कि दान में जो धन दिया गया, वह आया कहां से, वह आया कैसे?
नहीं, दया से क्रांति नहीं हो सकती, अहिंसा से भी क्रांति नहीं हो सकती, क्योंकि अहिंसा निगेटिव है। अहिंसा से क्रांति इसलिए नहीं हो सकती कि अहिंसा ही कहती है कि दूसरे को दुख मत दो। तो कुछ लोग अहिंसक हो जाते हैं, वह दूसरे को दुख नहीं देते। लेकिन दूसरे के दुख को दूर करने के लिए वे कोई उपाय भी नहीं करते, दूसरे के सुख की कोई व्यवस्था भी नहीं करते। वे केवल हाथ अलग करके रास्ते से किनारे हट जाते हैं कि हम इस रास्ते पर न चलेंगे, जहां दूसरे को दुख दिया जाता है। बस इतना ही वे करते हैं। वे नकारात्मक लोग हैं, जैसे कोई आदमी कहे कि दूसरे को बीमार मत करो। ठीक है, हम किसी को बीमार नहीं करेंगे, लेकिन दूसरे लोग बीमार हैं, उनके लिए भी हम कुछ नहीं करेंगे, क्योंकि हमें उनसे कोई संबंध नहीं है। हमने उनको बीमार नहीं किया है। किसी की आंख मत फोड़ो, यह ठीक है, लेकिन किन्हीं की आंखें फूटी हुई हैं, अंधा है। उनकी आंखों को ठीक करने का उपाय अहिंसा से नहीं चलता।
अहिंसा की वृत्ति नकारात्मक है।
हिंदुस्तान में अहिंसा भी चल रही है कोई साढ़े तीन हजार साल से, लेकिन उससे भी कोई हल नहीं हुआ, क्योंकि उसने लोगों को सिकोड़ दिया बुरी तरह। उन्होंने सब तरफ से हाथ खींच लिए। वे पैर फूंक-फूंक कर रखने लगे कि कोई कीड़ा जमीन पर न मर जाए। वे मुंह पर पट्टियां बांधने लगे कि कहीं नाक की गरम हवा से कोई कीड़ा न मर जाए। वे रात करवट नहीं बदलते हैं कि कहीं कोई कीड़ा न मर जाए। वे हरी सब्जी नहीं खाते हैं कि कहीं कोई कीड़ा न मर जाए। वे रात खाना नहीं खाते कहीं कोई कीड़ा न मर जाए। लेकिन जो चल रहा है दुख, हिंसा, उसे बदलने को वह कहीं भी नहीं जाते। और उसमें उन्हें डर लगता है कि बदलने जाएं तो हिंसा न हो जाए। एक आदमी को घाव है और उसके घाव में कीड़े पड़ गए हैं। अहिंसक आदमी उसके घाव पर मलहम नहीं बांध सकता, क्योंकि मलहम बांधने से कीड़े मर जाएंगे। वह अहिंसक आदमी कहेगा कि हमने तो घाव नहीं किया, आप जानें आपका काम जानें। हम कीड़े मारने की झंझट नहीं लेते।
कलकत्ते में मारवाड़ी जैन खाटों में खटमल पड़ जाएं तो उनको मारते नहीं रहे हैं, अहिंसक लोग हैं। लेकिन अगर खाट में कोई न सोए तो वे मर ही जाएंगे। तो एक रुपया देकर रात में आदमी किराए पर रख लेते हैं और उस खाट पर सुला देते हैं कि तुम इस पर सो जाओ। खटमल न मर जाएं तुमने अपना काम कर लिया, हमने दो रुपया दे दिया। तुमने मुफ्त काम भी नहीं लिया। अहिंसा उसकी पूरी हो गयी। खटमल भी नहीं मरे और उनको खून भी पिलवा दिया, खून के पैसे भी चुका दिए। लीगल रास्ता खोज लिया, कोई झंझट नहीं रही उसमें!
अहिंसक आदमी जीवन के दुख को नहीं मिटाने आएगा। उसकी सिर्फ चेष्टा इतनी है कि मैं दुख न दूं। लेकिन इतनी चेष्टा अधूरी है। इससे कुछ हो नहीं

सकता। प्रेम करने वाले लोग भी सदा से रहे हैं। प्रेम सदा से है, प्रेम निरंतर रहा है। प्रेम सुख देना चाहता है, दूसरे को सुख देना चाहता है। अहिंसा से बहुत ऊपर है प्रेम। दूसरे को सुख देने की खोज करता है।
लेकिन दूसरे को सुख देने की खोज काफी नहीं है, जब तक कि दूसरे के दुख
के बुनियादी कारणों में भी हमारा हाथ है, इसका हमें पता न चल जाए। एक पति अपनी पत्नी को सुख देना चाहता है। वह प्रेम करता है उसे, लेकिन उसका पति होना भी उसकी पत्नी के दुख का एक हिस्सा है, यह उसे कभी दिखाई नहीं पड़ने वाला है। एक पति अपनी पत्नी को सुख देना चाहता है सब तरह का। वह उसे प्रेम करता है। वह उसे साड़ियां ला रहा है, गहने खरीद रहा है, मकान बना रहा है, बड़ी कारें खरीद रहा है, वह अपनी जिंदगी लगाए दे रहा है उसको सुख देने के लिए। पत्नी को अगर करुणा हो, प्रेम की जगह और वह देख सके कि पत्नी का दुख क्या है तो शायद उसका पति होना भी पत्नी के दुखों में एक कारण है।
जब भी कोई किसी का मालिक बन जाता है तो दुख देने वाला हो जाता है। मालिक सदा ही दुख देता है। और जब कोई किसी को बांध लेता है तो दुख देने वाला हो जाता है। और जब कोई किसी की परतंत्रता बन जाता है तो दुख देने वाला हो जात है। और जब कोई किसी को पजेस कर लेता है और मालकियत कर लेता है, तब दुख देने वाला हो जाता है। पर यह उसे पता नहीं है।
एक फूल को मैं प्रेम करता हूं, इतना प्रेम करता हूं कि मुझे डर लगता है
कि कहीं सूरज की रोशनी में कुम्हला न जाए और मुझे डर लगता है कि कहीं जोर की हवा आए, इसकी पंखुड़ियां न गिर जाएं और मुझे डर लगता है कोई जानवर आकर इसे चर न जाए और मुझे डर लगता है कि पड़ोसी के बच्चे इसको उखाड़ न लें तो मैं फूल के पौधे को मय गमले के तिजोरी में बंद करके ताला लगा देता हूं। प्रेम तो मेरा बहुत है, लेकिन करुणा मेरे पास नहीं है। मैंने पौधे को बचाने के सब उपाय किए। धूप से बचा लिया, हवा से, जानवरों से। मजबूत तिजोरी खरीदी, उसको भी मेहनत करके बनाया, ताला लगाकर पौधे को बंद कर लिया। लेकिन अब यह पौधा मर जाएगा। मेरा प्रेम इसे बचा नहीं सकेगा और जल्दी मर जाएगा। हो सकता था, बाहर हवाएं थोड़ी देर लगतीं और पड़ोसी के बच्चे हो सकता था, इतनी जल्दी न भी आते, और सूरज की किरणें फूल को इतनी जल्दी न मुर्झा देतीं, लेकिन तिजोरी में बंद पौधा जल्दी ही मर जाएगा। प्रेम तो पूरा था, लेकिन करुणा जरा भी न थी।
जगत में प्रेम भी रहा है, अहिंसा भी रही है, दया भी रही है, लेकिन करुणा नहीं। करुणा का अनुभव ही नहीं रहा है। और करुणा का अनुभव आए तो हम जीवन को बदलेंगे। और करुणा से अगर दया निकले तो वह दया न रह जाएगी। उसमें कोई अहंकार की तृप्ति न होगी। और करुणा से अगर अहिंसा निकले तो वह निषेधात्मक न रह जाएगी। वह सिर्फ इतना न कहेगी कि दुख मत दो, वह इतना ही कहेगी दुख मिटाओ भी, दुख बचाओ भी, दुख से मुक्त भी करो, सुख भी लाओ। और अगर करुणा से प्रेम निकले तो प्रेम मुक्तिदायी हो जाएगा, बंधनकारी नहीं रह जाएगा।
अब तक का सारा प्रेम गुलामी लाने वाला सिद्ध हुआ है। सब प्रेम ने जंजीरें बांध दी हैं। हां, गरीब आदमी लोहे की जंजीर बांधता है, अमीर आदमी सोने की जंजीर। अगर करुणा से प्रेम निकलेगा तो वह मुक्ति लाएगा। मैं जिसे प्रेम करता हूं, उसे मुक्त करूंगा, अगर मेरी करुणा भी उसके साथ है। मैं जिससे प्रेम करता हूं, उसके जीवन के संकटों को, कष्टों को, पीड़ाओं को, भीतर की स्थितियों को, समझूंगा, सहयोगी बनूंगा। मैं जिसे प्रेम करता हूं, अगर वह किसी और को प्रेम करके सुखी देखना होता हो तो मैं सुखी होऊंगा, क्योंकि जिसे मैं प्रेम करता हूं, उसे मैं सुखी देखना चाहता हूं।
लेकिन जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह बरदाश्त नहीं कर सकेगा। मैं जिसे प्रेम करता हूं, अगर वह किसी की तरफ प्रेम की नजरों से देख ले तो मैं उसकी गर्दन पकड़ लूंगा और मैं कहूंगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तुमने दूसरे की तरफ प्रेम की नजर से कैसे देखा? यह करुणा नहीं है, यह अत्यंत कठोरता है और प्रेम के नाम पर गहरी हिंसा है। इसलिए प्रेमी एक दूसरे के साथ जितने हिंसक हो जाते हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और जब प्रेमी हिंसक होते हैं तो उन जैसा हिंसक और कोई भी नहीं हो सकता है। आज जब वे एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या से भर जाते हैं, तब वे जितना कष्ट जगत में पैदा

करते हैं, उतना कोई भी नहीं करता। नहीं, करुणा से अगर प्रेम निकले तो प्रेम मुक्तिदायी होगा। और करुणा से दया निकले तो निरहंकार होगी। और करुणा से अहिंसा निकले तो विधायक होगी, निषेधात्मक नहीं होगी। इसलिए मैंने करुणा पर जोर दिया है। वह सिर्फ शब्दों का ही फासला नहीं है, भीतर कोई दृष्टि है। इसलिए मैंने कहा, करुणा की छाया है क्रांति। अहिंसा की नहीं तथाकथित प्रेम की नहीं, तथाकथित दया की नहीं।
एक मित्र ने पूछा है कि मैं निरंतर कहता हूं कि हम सब परमात्मा में, प्रभु में, सत्य में एक हो जाएं। कहां है वह सत्य, कहां है वह प्रभु, कहां है वह परमात्मा, कैसा है वह?
किसको कहते हैं परमात्मा, इसे भी थोड़ा समझ लेना उचित है, क्योंकि मनुष्य के जीवन में जो क्रांति लानी है, उसमें अगर प्रभु की मौजूदगी न रही तो वह क्रांति बहुत गहरी न हो सकेगी। अगर उस क्रांति को गहरा करना है और जड़ मूल तक ले जाना है तो उसमें प्रभु का हाथ और मौजूदगी बहुत जरूरी है। प्रभु- विहीन क्रांतियां हो गयी हैं। असल में जिन्हें मैं कह रहा हूं वेध से निकली हुई क्रांतियां, वे प्रभु-विहीन क्रांतियां हैं।
और जिसे मैं कह रहा हूं करुणा से आने वाली क्रांति, वह प्रभु की मौजूदगी को स्वीकार करके आने वाली क्रांति है। ऐसी क्रांतियां हो गयी हैं जिनमें ईश्वर को हमने स्वीकार नहीं किया है, बल्कि क्रांतिकारी अक्सर ईश्वर को इंकार करता रहा है। उसे ऐसा लगता रहा है कि ईश्वर भी क्रांति में बाधा है। उसने ईश्वर को भी तोड़ देना चाहा है। वह ईश्वर पर भी क्रोधित हो गया है। उसे लगा है कि इतनी गरीबी है दुनिया में, तो कहां है ईश्वर, कैसा है ईश्वर! इतनी पीड़ा है तो ईश्वर नहीं हो सकता है। उसने ईश्वर को भी पोंछ देना चाहा है।
लेकिन पीड़ा और गरीबी और तकलीफ ईश्वर के कारण नहीं है, हमारे कारण है।
और ईश्वर की अनुकंपा इतनी है कि वह हमें सब तरह से स्वीकार किए हुए है। वह हमें भटकने के लिए भी और पाप करने के लिए भी स्वीकार किए हुए है। और स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं होता है। अगर ईश्वर हम सबको जन्म लेने के पहले ही चिट्ठी लिख कर दे दे और कहे कि आपको अच्छे काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, लेकिन बुरा काम करने की बिल्कुल स्वतंत्रता नहीं है। और वह हमसे कह दे कि आपको प्रेम की पूरी स्वतंत्रता नहीं है, तो क्या वह स्वतंत्रता स्वतंत्रता होगी? अगर हमसे कहा जाए कि आपको संत बनने की पूरी स्वतंत्रता है, बनो, असाधु बनने की स्वतंत्रता है, जितना चाहो प्रेम करो, लेकिन घृणा करने की बिल्कुल स्वतंत्रता है, तो संत बनने की स्वतंत्रता भी समाप्त हो जाएगी। क्योंकि संत बनने की स्वतंत्रता असंत बनने की स्वतंत्रता से ही जुड़ी हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती। अगर हमसे कहा जाए कि आपको जागने की पूरी स्वतंत्रता है, लेकिन सोने की नहीं, तो जागने की स्वतंत्रता फौरन खो जाएगी, क्योंकि जागने की स्वतंत्रता सोने की स्वतंत्रता के साथ ही जुड़ी है। अलग-अलग नहीं हो सकती। आदमी को शुभ करने की स्वतंत्रता इसीलिए उपलब्ध है कि उसे अशुभ करने की भी स्वतंत्रता उपलब्ध है। और परमात्मा ने आदमी को इतना स्वतंत्र कर दिया है कि उसने अपने को सबके सामने मौजूद भी नहीं रखा है। यह भी परमात्मा की स्वतंत्रता का उपक्रम है।
हम सब पूछते हैं, ईश्वर सामने क्यों नहीं है?
अगर ईश्वर सामने हो तो हमारी स्वतंत्रता में पूरी बाधा पड़ेगी। आप एक
घर में चोरी करने गए और परमात्मा आपके साथ ही लगा हुआ है। वह आपके बगल में ही खड़ा हुआ है। ऐसे तो वह खड़ा ही हुआ है। लेकिन जिनको वह दिखाई पड़ जाता है कि खड़ा हुआ है, उसकी चोरी मुश्किल हो जाती है। लेकिन हमको दिखाई नहीं पड़ता है, इसलिए स्वतंत्रता है, हम चोरी कर सकते हैं। और सोच सकते हैं कि कोई दिक्कत नहीं, सबको धोखा दे दिया है।
मैंने सुना है, एक फकीर के पास कुछ युवक आए। उन्होंने कहा कि हम अज्ञात की खोज करना चाहते हैं, वह कहां है? जैसा कि इस मित्र ने पूछा है कि कहां है वह ईश्वर, कैसा है वह प्रभु? उन्होंने पूछा। उस फकीर ने कहा, एक छोटा सा काम कर लाओ, फिर मैं तुम्हें बताऊंगा। चार शिष्य थे, उन्होंने एक-

72

एक कबूतर उनको दे दिया और कहा, यह ले जाओ और जहां कोई न देखता हो, जल्दी से कबूतरों को मारकर वापस लौट आओ।
एक शिष्य बाहर सड़क पर गया। दोनों तरफ देखा, भरी दोपहरी थी, कोई भी नहीं था, लोग घरों में सोए पड़े थे। उसने कबूतर को मरोड़ा और भीतर वापस आ गया और कहा यह लीजिए। कोई भी नहीं देख रहा था।
दूसरा शिष्य सड़क पर गया। उसने सोचा कि अभी सड़क पर कोई नहीं है, लेकिन भरी रोशनी है, दोपहरी है, मैं मरोड़ू और कोई आ जाए या खिड़की से झांक ले। तो वह अंधेरी गली में गया, जहां कोई द्वार न थे, बड़ी दीवालें थीं। गांव के किले की मजबूत दीवाल थी पत्थरों की। वह उसकी आड. में गया। जब वह सब तरह निश्चिंत हो गया कि अब दूर मीलों तक कोई दिखाई नहीं पड़ता है, तब उसने गर्दन मरोड़ी और वापस आकर गुरु को दे दिया।
तीसरे शिष्य ने सोचा, दिन में कोई न कोई देख ही सकता है। प्रकाश देखने
का माध्यम है। वह रात तक रुका, फिर अपने घर के अंधेरे में भीतर द्वार बंद करके उसने गर्दन मरोड़ी और लेकर गुरु को दे दिया।
लेकिन चौथा शिष्य, महीने भर हो गया, कोई पता न चला। गुरु बहुत चिंतित थे। अपने शिष्यों को कहते हैं खोजो, कहां गया। महीने भर के बाद उसे जंगल में पकड़ा गया। वह करीब करीब पागल हालत में था। गुरु के सामने लाया गया। गुरु ने पूछा, वह कबूतर कहां है? वह हाथ में लिए था। उसने कहा, बहुत मुश्किल में डाल दिया। मैं अंधेरी से अंधेरी जगह में गया, लेकिन कबूतर की गर्दन पर जब हाथ रखा तो मैंने देखा कबूतर देख रहा है। तब मैं मुश्किल में पड़ गया। फिर मैंने बहुत तरकीबें खोजीं, कबूतर की आंख पर पट्टी बांध दी और एक घनघोर अंधेरे गड्ढे में गया, जहां कि पट्टी के भीतर से देखना क्या, पट्टी के बाहर से भी कबूतर को देखना संभव नहीं होता। वहां जाकर जब मैंने उसकी गर्दन मरोड़ी तब मुझे दिखाई पड़ा कि मैं देख रहा हूं। और गहरे गड्ढे में गया, जहां हाथ को हाथ न सूझता था और जब मैं उसे दबाने लगा, तब मुझे अचानक प्रतीत हुआ कि परमात्मा देख रहा है। मुझे मुश्किल में डाल दिया है। यह काम नहीं हो सकता। कबूतर आप वापस ले लें। मैं बिल्कुल पागल हो गया। मैं वह जगह खोज रहा हूं, जहां परमात्मा न हो। सब जगह घूम आया, जंगल, पहाड़, सब देख डाले वह सब जगह है।
उस फकीर ने उन तीनों को जो कबूतर को मार लाए थे कहा कि तुम भाग जाओ। तुम अदृश्य को नहीं खोज सकोगे। तुम्हारी आंखें बड़ी स्थूल हैं। तुम सूक्ष्म को नहीं देख सकोगे। आंखों को थोड़ा सूक्ष्म करके आओ। यह युवक कुछ काम कर सकता है। इसकी आंखें बड़ी सूक्ष्म हैं। यह किसी की उपस्थिति को अनुभव करता है। कबूतर की भी उपस्थिति अनुभव करता है, अपनी भी। और सब तरफ से रोक लेता है तो भी इसे किसी की उपस्थिति मालूम पड़ती है।
परमात्मा अद्भुत है कि उसने हटा लिया है अपने से हमको, हमसे दूर, अलग, अदृश्य, ताकि हम पूरी तरह स्वतंत्र हो सकें, अन्यथा हम स्वतंत्र न हो पाएं। बेटा बाप के सामने सिगरेट नहीं पीता है, बगल के कमरे में जाकर पी लेता है। लेकिन अगर पता चला कि वहां परमात्मा मौजूद है, तो किस कमरे में जाएं, कहां छिपें, फिर बहुत मुश्किल हो जाए। और निरंतर यह मालूम होने लगे कि दो आंखें सदा झांक रही हैं, हर जगह, हर कोने में, तब बहुत मुश्किल हो जाएगा। स्वतंत्रता असंभव हो जाए।
मनुष्य पूरी तरह स्वतंत्र हो सके, इसलिए परमात्मा अदृश्य हो गया है। परमात्मा का अदृश्य होना मनुष्य को दी गयी पूरी स्वतंत्रता के आधारभूत कारणों में से है।
लेकिन क्या मतलब है परमात्मा से?
कोई व्यक्ति, कोई पर्सनालिटी, कहीं कोई छिपा हुआ बैठा है?
नहीं, इस भाषा में सोचने के कारण ही बहुत कठिनाई हो गयी है। इस भाषा में सोचने के कारण ही हमने मंदिर बना लिए हैं, मूर्तियां बना ली हैं, पूजा चल रही है, भजन कीर्तन चल रहे हैं, जिनका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है, नहीं हो सकता, ये हमारे गढ़े हुए परमात्मा हैं, जो हमने अपनी कल्पना से गढ़ लिए हैं।

परमात्मा का अर्थ है: समग्र, दी टोटल, वह जो सारा जगत है, सारा जीव है उसका जोड़।
खंड-खंड हम देखते हैं। एक आदमी है, एक पौधा है, एक जमीन है, एक चांद है,
एक पहाड़ है, एक सागर है। खंड-खंड हैं, अलग-अलग हैं। लेकिन सबका अस्तित्व गहरे में जुड़ा हुआ है और संयुक्त है।
दस करोड़ मील दूर है सूरज, लेकिन अभी अगर ठंडा हो जाए तो सुबह फिर कोई पता न चलेगा कि कहां गए, हम साथ ही ठंडे हो जाएंगे। दस करोड़ मील दूर है, उसकी किरणें हमें जिलाए हुए हैं, गरम किए हुए हैं। ऐसा नहीं है कि थर्मामीटर से फिर आप नापेंगे, सूरज के ठंडे हो जाने पर, तो आपको शरीर ठंडा होता हुआ मालूम पड़ेगा। नहीं, थर्मामीटर भी ठंडा हो चुका होगा। वह भी गर्मी नहीं बताएगा। आप भी ठंडे हो चुके होंगे। और कोई नहीं होगा जो जान सके कि गरम है। तो सारी गर्मी दस करोड़ मील दूर से चली आ रही है। दस करोड़ मील दूर से हम बंधे हैं। एक फूल खिल रहा है पृथ्वी पर वह सूरज की किरणों से बंधा है, एक बीज अंकुरित हो रहा है, वह सूरज से बंधा है लेकिन सूरज से ही बंधा है, ऐसा नहीं। और गहरे, दूर से दूर तारे से हमारा संबंध है। उससे भी हम बंधे हैं। एक अनंत जाल है अस्तित्व का, जिसमें सब जुड़े हुए हैं।
फूल की एक माला कोई मेरे गले में डाल जाता है। फूल ही दिखाई पड़ते हैं, भीतर का सूत नहीं दिखाई पड़ता है। लेकिन फूल अगर अलग अलग होते तो माला नहीं होती। भीतर कोई सूत है, जो पिरोया हुआ है, इसलिए माला है। यह सारा अस्तित्व पिरोया हुआ है। इस सारे अस्तित्व में हम एक दूसरे के भीतर प्रवेश कर गए हैं। हमें ख्याल में नहीं आता!
आप हैं। आप ने कभी सोचा है कि आप के भीतर करोड़ों-करोड़ों साल का अस्तित्व पिरोया हुआ है। एक छोटा बच्चा मां के पेट में निर्मित होता है, तो चौबीस अणु पिता से आते हैं उसके पास, चौबीस अणु उसकी मां से आते हैं। पिता के चौबीस अणु में से उसके पिता के बारह अणु होते हैं उसकी मां के बारह अणु होते हैं। पिता के पिता के अणुओं में भी उसके पिता के पिता के होते हैं, यह उसकी मां के मां के होते हैं और यह सारे अणुओं की यात्रा अंतहीन चल रही है। आप आज ही अचानक पैदा नहीं हो गए, हजारों, लाखों साल कीशृंखला की एक कड़ी हैं आप। एक लंबीशृंखला की कड़ी हैं, जो जुड.ी हुई है। और ऐसा नहीं है कि आप पीछे से ही जुड़े हैं, भविष्य में भी जोड़ जारी रहेगी। वहां भी यात्रा जारी रहेगी आज आपकी बगिया में कोई फूल खिला है, वह अचानक नहीं खिल गया है। उसके पीछे की यात्रा अनंत है।
और अब तो वैज्ञानिक सोचते हैं कि किसी न किसी दिन जब पहली दफा कोई भी जमीन पर आया होगा तो वह पैदा कैसे हो गया होगा। जरूर किसी दूसरे ग्रह-उपग्रह से उड़ कर आया होगा या कोई दूसरा ग्रह-उपग्रह से किसी यात्री के साथ चला आया होगा। अभी हमारे यात्री चांद पर गए तो लौट कर हमने उनकी महीने भर परीक्षा की और जांच पड़ताल की कि चांद से वे कोई कीटाणु तो नहीं ले आए। लेकिन चांद पर वे कुछ कीटाणु जरूर छोड़ आए होंगे, जिसकी कोई परीक्षा नहीं हुई और हो सकता है चांद से हमारा संबंध टूट जाए, आगे न हो, और वे कीटाणु विकसित होते रहें और करोड़ों साल में वहां एक प्राणी पैदा हो जाए। कभी न कभी किसी अंतहीन काल में इस पृथ्वी पर, किसी दूसरे ग्रह से जीवन के कोई पहले चरण इसी भांति आए होंगे। उनसे हमारा जोड़ है।
अंतहीनशृंखला है, उससे हम जुड़े हैं। यह श्रृंखला बहुत दिशाओं में, मल्टी डाईमेंशनल, बहुआयाम में फैली हुई है। पीछे-आगे, चारों तरफ, नीचे-ऊपर, सब तरफ जितनी दिशाएं हैं, सब दिशाओं में हम जुड़े हुए हैं। उन सब दिशाओं के जोड़ पर हमारा छोटा सा बिंदु का अस्तित्व है और इस अस्तित्व को हम कहते हैं "मैं"। "मैं" कहने का अधिकार सिवाय परमात्मा को और किसी को भी नहीं हो सकता है, क्योंकि हम "मैं" कह भी न पाएंगे और बिखरने का क्षण आ जाएगा। लेकिन सब बिखरता रहे, सब बनता रहे, जिसमें बिखरता है और जिसमें बनता है, वह है, वह है। वह न बिखरता है, न वह बनता है।
एक सागर है, उस पर लहरें बन रही हैं। अभी एक लहर उठी कितनी शान से, कितनी अकड़ से। आकाश को छूने की हिम्मत से, आकांक्षा से। कितनी जोर से उछलकर उसने सागर के चारों तरफ देखा है और आस-पड़ोस की छोटी लहरों से कहा है,

देखती हो, "कौन हूं मैं!" लेकिन जब वह कह रही है, देखती हो, "कौन हूं मैं", तभी बिखराव शुरू हो चुका है। वापस गिरना शुरू हो गई है। वह कह भी नहीं पायी है और गिरना शुरू हो गया है! उसका कहना पूरा भी न हो पाएगा। दूसरी लहरें शायद सुन भी न पाएंगी और लहर खो जाएगी। सागर में लहरें उठती रहती हैं, खोती रहती हैं।
आप ऐसा तो सोच सकते हैं कि सागर हो बिना लहरों के, ऐसा भी हो सकता है कि शांत हो, कोई लहर न हो, सागर हो। लेकिन ऐसा आप नहीं सोच सकते हैं कि लहरें हों बिना सागर के। समुद्र ही छाती पर लहरें उठती, बनती, बिगड़ती रहती हैं। अगर हम लहर, लहर को देखते रहें तो सागर का हमें कोई पता न चलेगा। हम सब लहर को, जोड़ को देख लेते हैं, इसलिए सागर का पता चलता है। परमात्मा का अर्थ है, वह जो अस्तित्व की अनंत अनंत लहरें हैं उनको हम देखने, जोड़ने में समर्थ हो जाएं तो परमात्मा का पता चलता है और अगर समग्र को न देख सकें, एक-एक टुकड़े को देखते रहें तो हमें आदमियों का पता चल जाएगा पौधों का पता चलेगा, पत्थर का पता चलेगा, पहाड़ों का पता चलेगा, लेकिन परमात्मा का पता नहीं चलेगा। परमात्मा है सबका जोड़। अगर सारे जगत के समस्त अस्तित्व को जोड़ा जा सके तो जो हिसाब आएगा नीचे, वह परमात्मा है। लेकिन वह पूरी तरह जोड़ा नहीं जा सकेगा, क्योंकि वह अंतहीन और अनंत है, इसलिए हम सिर्फ कंसीव कर सकते हैं, हम केवल भाव के अनुभव कर सकते हैं उस जोड़ का। लेकिन किसी दिन हम जोड़कर बता नहीं सकते कोई फार्मूला बनाकर कि इतना रहा जोड़। इसके भी कुछ कारण हैं कि हम नहीं बता सकते। इसे थोड़ा सोच लेना उपयोगी होगा ईश्वर को समझने में आधारभूत होगा।
हम कभी नहीं सोच सकते कि कोई चीज असीम हो सकती है। हमारी कल्पना सीमा
पर जाकर रुक ही जाती है। हम कितनी ही दूर सीमा को ले जाएं फिर भी सीमा हटती है, मिटती नहीं। अगर हम सोचें कि जगत असीम है, तो हम इतना कर सकते हैं कि बहुत करोड़ों-करोड़ों, अरबों-अरबों मीलों दूर कहीं सीमा होगी, लेकिन हमारी बुद्धि में सीमा नहीं होगी यह पकड़ में नहीं आता! हम कहेंगे, और थोड़ा आगे, और थोड़ा आगे। जैसे छोटे बच्चे को कहानी कहो तो वह पूछता है, फिर और, फिर और। वह पूछता चला जाता है। उसकी समझ में यह नहीं आता कि बात एकदम खत्म कैसे हो जाएगी। आगे तो होगा न कुछ। और हम भी अगर पूछते हैं तो हम सोच सकते हैं कि और आगे, और आगे। लेकिन हम यह नहीं सोच सकते कि ऐसा भी है यह जगत कि इसकी कोई सीमा ही न होगी। इसे सोचने में सिर घूम जाता है। इसे कभी सोचना चाहिए, सिर को कभी-कभी घुमाना भी चाहिए, ताकि सिर की जो अकड़ है, वह थोड़ी कम हो जाए। सिर को बहुत अकड़ है, वह सोचता है, सभी हम सोच सकते हैं। वह नहीं सोच सकता। हम असंख्य नहीं सोच सकते।
बड़े से बड़ा गणितज्ञ भी सोचेगा तो बड़ी से बड़ी संख्या सोचेगा। वह कहेगा
और इतना जोड़ दें और इतना जोड़ दें। लेकिन कोई कहता है असंख्य, तो हमको असंख्य का मतलब होता है ऐसा, जो गिना न जा सके। लेकिन हम सोचते हैं, अगर मेहनत की जाए तो गिना जा सकता है। अगर कोई आपसे पूछे कि आदमी के सिर पर कितने बाल हैं तो आप कह देंगे कि असंख्य। उसका यह मतलब नहीं कि असंख्य हैं। बाल तो गिने जा सकते हैं। कुछ बुद्धिमानों ने मेहनत करके गिन भी लिए। कुछ बुद्धिमान ऐसी ही नासमझी के काम भी किया करते हैं। आदमी की खोपड़ी के बाल गिने जा सकते हैं, आकाश के तारे गिने जा सकते हैं, लेकिन हम यह नहीं सोचते कि ऐसा भी हो सकता है कि संख्या समाप्त ही न होती हो। कहीं भी समाप्त न होती हो। तब सिर घूम जाता है। सीमा समझ में आती है, असीम समझ में नहीं आता। शुरुआत हुई यह समझ में आता है। यह समझ में नहीं आता कि कोई चीज शुरू ही नहीं हुई। शुरू ही नहीं हुई, तो अंत भी नहीं होगी। अगर बुद्धि से नापने जाएंगे तो परमात्मा की पकड़ कभी न आ पाएगी, क्योंकि बुद्धि न असीम का सोच सकती, न पूर्ण को सोच सकती, न अनंत को सोच सकती।
लेकिन अनंत को सोचने की कोशिश करें, यह भी एक ध्यान का प्रकार है। अनंत को सोचें और सोचते चले जाएं और सीमाओं को आगे हटाते जाएं हटाते जाएं और अंततः मिटा देने की कोशिश करें। कोई भी सीमा नहीं है। सीमा मिटी कि भीतर बुद्धि भी मिट जाएगी। ये दोनों एक साथ मिट जाते हैं। वहां सीमा मिटी, यहां बुद्धि मिटी। वहां प्रभु और अनंत मिटा, वहां बुद्धि मिटी। वहां

संख्या मिटी, यहां बुद्धि मिटी। और जिस क्षण बुद्धि मिट जाती है, उस क्षण असीम, अनंत, समग्र, का बोध शुरू हो जाता है। वह बोध है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, समग्र, जोड़ का नाम है। लेकिन वह जोड़ भी हमारी बुद्धि का कोई गणित नहीं है, हमारी बुद्धि की असफलता है। और अंत में इतनी ही बात ठीक से समझा दूं कि बुद्धि की असफलता जहां से हो, वहीं से धर्म का प्रारंभ है। बुद्धि जहां पूरी तरह असफल हो जाती है। ध्यान रहे, अगर थोड़ी भी बची रही तो उसने कहा, ठहरो अभी हम और थोड़ी कोशिश करें। टोटल फेल्योर, जहां पूर्ण असफलता आ गयी।
एक मित्र से मैं बात कर रहा था परसों ही रात और मैंने उनसे कहा कि जब पूर्ण असफलता हो जाती है मनुष्य को सोचने में, जब सोचना समाप्त हो जाता है, तब जानना शुरू होता है। जहां थिंकिंग समाप्त होता हे, वहां नोइंग शुरू होती है। जहां विचार बंद होते हैं, वहां जानना शुरू होता है। तो उनसे मैं कह रहा था कि जहां बुद्धि पूरी तरह असफल हो जाती है। उन्होंने कहा, तब तो मन में बड़ा विषाद मालूम पड़ता होगा। मैंने कहा, अगर विषाद मालूम पड़ता हो तो अब भी पूरी तरह असफलता नहीं हुई, क्योंकि अभी सफलता की कोई आशा मन में शेष है, उसी की वजह से विषाद मालूम होता है। पूर्ण असफलता का अर्थ है कि अब सफलता की कोई आशा भी न रही। आशा भी न हो, निराशा भी नहीं, असफलता पूरी हो गयी और यह पता चल गया कि यह हो ही नहीं सकता था, यह हो ही नहीं सकता है। बुद्धि से असीम को जाना नहीं जा सकता। फिर जैसे ही यह पता चल जाए, बुद्धि ठहर कर खड़ी हो जाती है।
कितनी बार हम कहते हैं कि बुद्धि बड़ी चंचल है। बुद्धि चंचल रहेगी। आप ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर लगाते हैं। जरा असीम पर लगा कर देखें और आप पाएंगे कि बुद्धि ठहर गयी, फिर वहां चंचलता नहीं रहेगी। बुद्धि को आप लगाते हैं इतनी क्षुद्र चीजों पर कि वह चंचल हो ही जाएगी, ऊब जाएगी, दूसरे पर जाएगी, तीसरे पर जाएगी। असीम पर लगा दें बुद्धि को और आप अचानक पाएंगे कि वह असफल हो गयी, जाने को कहीं नहीं रहा, नो व्हेयर टु गो, असीम है, जाऊं कहां, कोई सीमा न रही, कोई अंत नहीं। और जहां असीम पर बुद्धि को लगाया जाता है, वहीं बुद्धि टूटकर बिखर जाती है एक्सप्लोजन की तरह, एक विस्फोट की तरह बुद्धि बिखर जाती है। फिर जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है। ऐसा नहीं है, कि वह परमात्मा आपके सामने होगा, ऐसा कि आप भी उसमें ही होंगे। ऐसा नहीं कि आप इधर खड़े होंगे, उधर परमात्मा होगा। नहीं, जहां आपकी बुद्धि बिखर गयी, तब जो शेष रह जाएगा आपमें आपके बाहर, आपसे दूर, आपके पास, भीतर, बाहर, यहां, वहां, सब कहां, जो शेष रह जाएगा, वह परमात्मा है।
परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कि आप उसका दर्शन कर लेंगे
और नमस्कार कर लेंगे। हां, रामचंद्र जी मिल सकते हैं, क्राइस्ट मिल सकते हैं, कृष्ण जी मिल सकते हैं, बुद्ध, महावीर मिल सकते हैं, परमात्मा नहीं मिल सकता। क्योंकि इनको आप अपनी ही कल्पना से पैदा कर सकते हैं, लेकिन परमात्मा आपकी कल्पना से पैदा नहीं हो सकता। जहां कल्पना हार के थक जाती है, विश्राम करने लगती है, वहां उसका अनुभव शुरू होता है। और मैं कह रहा हूं कि इस परमात्मा की उपस्थिति अगर मौजूद रहे तो ही वास्तविक क्रांति हो सकती है, क्योंकि तब हम अस्तित्व की जड़ों से उतर जाते हैं और जड़ों से रूपांतरण होता है।
प्रभु में जीने के अतिरिक्त और कोई क्रांति नहीं है, प्रभु से संबंधित होने के अतिरिक्त और कोई म्युटेशन रूपांतरण नहीं है। प्रभु से संबंधित होने के अतिरिक्त न कोई परिवर्तन, न कोई रूपांतरण, न कोई अनुभव, न कोई आनंद, न कोई आलोक, न सत्य, न कोई मुक्ति। इसलिए प्रभु पर जोर दे रहा हूं।
इधर मेरे पास मित्र हैं, वह कहते हैं कि प्रभु को बीच में लाने की कोई
भी जरूरत नहीं। अगर चल सकता बिना लाए तो ठीक था, लेकिन वह मौजूद है ही। उसे हटा सकते तो भी ठीक था। लेकिन वह हटता नहीं वह मौजूद ही है। हां, जो देख नहीं रहे, उन्हें पता नहीं चलता है। जैसे अंधों की एक बस्ती हो और वे कहें कि प्रकाश को बीच में लाए बिना बात नहीं बनेगी और आंख वाला कहे कि मैं बीच में लाता नहीं, वह बीच में है ही। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, यह दूसरी बात

है और तुम अंधे हो, फिर भी चलते प्रकाश में ही हो। अंधे कहें कि प्रकाश की बात ही बीच से हटा दो। तो भी आंख वाला कहेगा, बात हटाने से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, प्रकाश बीच में है ही और अच्छा है कि हम उसे जान ही लें, क्योंकि वह हमें टकराने से बचा सकेगा। हम उसे पहचान ही लें, क्योंकि वह हमारे रास्ते पर साथी बन जाएगा। हम उसे देख ही लें, क्योंकि उसे देख लेने के बाद ही चल पाएंगे और ठीक से पहुंचेंगे। अंधे को प्रकाश नहीं दीखता, हमें परमात्मा नहीं दीखता। निश्चित ही किसी अर्थ में हम अंधे हैं। उस अंधेपन को तोड़ने का उपाय ही ध्यान है।

करुणा और क्रान्ति
सातवां प्रवचन

पूर्ण का द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछले चार-पांच दिन ध्यान का प्रयोग हम कर रहे थे और ध्यान को समझने
की कोशिश भी कर रहे थे। उस संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। आज आखिरी दिन उन प्रश्नों पर विचार कर लेना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा हैः बहने का प्रयोग जब हम करते हैं, तो क्या हम उसका
भी विरोध न करें, जो हमें बुरा मालूम पड़ता है?

यदि बुरे का विरोध किया तो बह ही न सकेंगे। अगर बुरे को बुरा समझा तो
भी बह नहीं सकेंगे। बुरे का विरोध करने की जरूरत नहीं है। बुरे को बुरा समझना ही1 विरोध शुरू हो जाता है। मन के किसी विचार को बुरा कहना ही विरोध हो गया। विरोध अलग से करना नहीं पड़ेगा। एक ख्याल कि यह बुरा है, और विरोध शुरू हो गया। न तो बुरे का विरोध करना है और न अच्छे का स्वागत करना है। बुरे का विरोध करेंगे और अच्छे का स्वागत करेंगे तो बह नहीं सकते हैं। जहां चुनाव है, जहां च्वाइस है, वहां बहाव नहीं हो सकता। बहाव तो च्वाइसलेस ही होगा। वह तो चुनाव रहित ही होगा। इसलिए बुरे आदमी-बुरे आदमी ध्यान नहीं कर पाते, और अच्छे आदमी भी ध्यान नहीं कर पाते। बुरे आदमी की पकड़ है कि बुरे को छोड़ूं। अच्छे आदमी की पकड़ है कि अच्छे को पकडूं--लेकिन पकड़ दोनों की है। और एक सबसे बड़े मजे की बात यह है कि जिसे हम अच्छा कहते हैं और जिसे हम बुरा कहते हैं, ये दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब कोई आदमी कहता है कि मैं अच्छे को पकडूं तो वह इतना ही कर सकता है कि सिक्के के अच्छे पहलू को ऊपर कर ले, नीचे का बुरा पहलू सदा मौजूद रहेगा। और जब वह अच्छे को पकड़ेगा तो बुरा भी पकड़ा ही जाएगा, क्योंकि वह दूसरी चीज नहीं है, वह अच्छे का ही दूसरा पहलू है। अगर एक रुपये के मैं एक पहलू को पकड़ना चाहूं और कहूं कि दूसरे को छोड़ दूं और एक को पकडूंगा तो इतना ही हो सकता है कि एक को मैं ऊपर कर लूं, दूसरे को नीचे छिपा लूं। अच्छा आदमी वह है, जिसने अच्छे पहलू को ऊपर कर लिया है और बुरे पहलू को नीचे कर दिया है। बुरा आदमी वह है, जिसने बुरे पहलू को ऊपर कर लिया है और अच्छे पहले को नीचे कर दिया है। बुरे और अच्छे आदमी में बुनियादी फर्क नहीं है, वे एक ही तरह के आदमी हैं। सिक्का उलटा और सीधा, इतना ही फर्क है, एक सिक्का उलटा पड़ा है, एक सीधा पड़ा है। उन दोनों में कोई फर्क है?
बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी हमेशा मौजूद रहता है। वह उससे हमेशा कहता रहता है, क्या कर रहे हो बुरा, क्या कर रहे हो बुरा, क्या कर रहे हो बुरा। कुछ अच्छा करो, अच्छा करो। पापी से पापों के भीतर भी पुण्यात्मा सलाह दिए चला जाता है कि कुछ अच्छा करो, कुछ अच्छा करो, और अच्छे आदमी के भीतर भी बुरा आदमी सदा मौजूद है, वह कहता है, किस पागलपन में पड़े हो, क्या अव्यावहारिक, इनप्रेक्टिकल हुए जा रहे हो? कुछ बुरा करो, नहीं तो चूक जाओगे। बाकी लोग बुरा किए आगे बढ़े जा रहे हैं। तुम चूके चले जा रहे हो। और अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी पूरे वक्त कह रहा है बुरा करो, नहीं तो पछताओगे, यह क्या कर रहे हो, सब खो दोगे, सब बरबाद हो जाएगा।
अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी दबा हुआ है, बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी दबा हुआ है। ध्यान दोनों से मुक्त हो जाना है। दोनों में से किसी को भी पकड़ नहीं लेना है। और दोनों से केवल वही मुक्त हो सकता है, जो कोई चुनाव ही नहीं करता, जो कहता नहीं यह अच्छा है, जो कहता नहीं यह बुरा है। जो दोनों को ही देखता रहता है और कहता है तुम भी हो और तुम भी हो। जो गुलाब के फूल के पास जाता है और फूल को भी कहता है, तुम भी हो और कांटे को भी कहता है तुम भी हो। न कहता है, कांटे को चुनेंगे, न वह यह कहता है कि गुलाब को चुनेंगे। चुनाव ही नहीं करता, गुलाब के पास चुपचाप बैठ जाता है। फूल और कांटे दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेता है। और ध्यान रहे, एक क्रांति घट जाती है, जब फूल

और कांटे को कोई एक साथ स्वीकार करता है, तो फूल और कांटे एक दूसरे को काट कर विदा हो जाते हैं, पीछे कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जब कोई बुरे और अच्छे दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेता है तो बुरा और अच्छा दोनों एक दूसरे को काट देते हैं और पीछे कुछ भी शेष नहीं रह जाता।
ध्यान है वह अवस्था, जहां न बुरा रह गया है, न अच्छा रह गया है। अगर आपने अच्छे को बचाने की कोशिश की और बुरे को हटाने की कोशिश की तो अच्छे आदमी बन सकते हैं, साधु बन सकते हैं, संत नहीं। साधु और संत के फर्क को समझ लें। साधु वह है, जो अच्छा हैः असाधु नहीं है, बुरा नहीं है। संत वह है, जो न साधु है, न असाधु है, वह दोनों के बाहर चला गया है। अगर अच्छे को बचाया तो ज्यादा से ज्यादा साधु बन सकते हैं, पर पीछे असाधु सदा मौजूद रहेगा और प्रतीक्षा करेगा कि जब आप साधु से ऊब जाएं तो असाधु हो जाएं।
और हर चीज से ऊब हो जाती है। अगर एक आदमी चौबीस घंटे साधु रहे तो साधु होने से भी ऊब जाता है। वह छुट्टी चाहता है थोड़ी देर के लिए कि साधु न रह जाए। इसलिए साधु को भी असाधु होने का मौका मिलता हो तो छोड़ता नहीं है, मौके का उपयोग कर लेता है। असाधु भी असाधु होने से ऊब जाता है, इसलिए बुरे से बुरा आदमी भी किसी क्षण में बिल्कुल साधु मालूम पड़ता है। किसी क्षण में ऐसे काम करता है, जो साधु भी न कर सके। वह भी ऊब जाता है, मोनोटोनस हो जाता है। बुरे आदमी अच्छे काम कर लेते हैं, अच्छे आदमी बुरे काम कर लेते हैं। और जिसे हमने जोर जबरदस्ती से पकड़ा है, वह थोड़ी देर में थक जाता है। अगर मैं मुट्ठी को बांधे रहूं, बांधे रहूं जोर जबरदस्ती से, तो कितनी देर बांधे रहूंगा। थक जाऊंगा, फिर मुट्ठी खुल जाएगी। अगर मैं दौडूं ताकत से, दौड़ता रहूं तो कितनी दूर दौड़ूंगा, मेरे पैर थक जाएंगे और गिर जाऊंगा।
जो भी प्रयास से हम करेंगे, वह थक जाएगा। अगर हम अच्छे हुए प्रयास से
तो थकान आ जाएगी, फिर हमें बुरा होना पड़ेगा। अगर बुरे हुए प्रयास से तो थकान आ जाएगी, फिर हमें अच्छा होना पड़ेगा और यह घड़ी का पेंडुलम बुरे से अच्छे के बीच घूमता रहेगा जन्मों-जन्मों तक। इसलिए ध्यान बुरे को बुरा नहीं कहता, अच्छे को अच्छा नहीं कहता। वह कहता है, तुम अच्छे भी हो, तुम बुरे भी हो--ठीक है, दोनों रहो। हमें सब स्वीकार है। ध्यान की स्वीकृति में वे दोनों ही विदा हो जाते हैं। क्योंकि फिर कोई पकड़ नहीं रह जाती, विदा होने को कोई बाधा नहीं रह जाती। इसलिए जब ऐसा हम पूछते हैं कि क्या बुरे को भी स्वीकार करना है? तो अस्वीकृति तो प्रारंभ हो गई, जब हमने कहा, बुरा है। जब हम कहते हैं कि क्या शूद्र को भी घर में बिठा लें? वह जब हमने शूद्र कहा, तभी हमें बिठालने का अस्वीकार हो गया। सवाल यह नहीं है कि शूद्र को घर में बिठाल लें सवाल यह है कि शूद्र अगर दिखाई न पड़े, तब वह घर में बैठ सकेगा। और अगर कभी किसी ने कोशिश करके शूद्र को घर में बिठाल लिया तो वह कोशिश में तनाव होगा और वह तनाव शूद्र को शूद्र ही बनाए रखेगा। इसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। नहीं, वह शूद्र ही न रह जाए, वह बुरा ही न रह जाए, बुरे-भले का भाव ही छूट जाए, तभी हम बाहर हो सकते हैं। अन्यथा बाहर नहीं हो सकते हैं।

एक बात और उन्होंने पूछी हैः उन्होंने पूछा है कि जब हम सब मिट जाते हुए देखते हैं, कि चिता में सब जल गया, सब समाप्त हो गया, तो फिर "मैं" मिट जाता है, फिर पीछे आब्जर्वर कौन है, साक्षी कौन है? फिर कौन देखेगा?

हमें ख्याल है कि हमारे भीतर हम ही हैं और कुछ भी नहीं है। इसलिए सवाल उठता है कि जब हम मिट जाएंगे तो देखेगा कौन? ऐसी ही हमारी हालत है, जैसे किसी घर का मालिक घर के भीतर रहता हो और घर का पहरेदार घर के बाहर रहता हो और मालिक और पहरेदार की मुलाकात न हुई हो बहुत दिन से और पहरेदार भूल गया हो कि भीतर मालिक है और मालिक भूल गया हो कि बाहर पहरेदार और है, अगर हम पहरेदार से कहें कि तू अब विदा हो जा यहां से, तो वह कहे कि मैं अगर विदा हो जाऊंगा तो इस घर में रहेगा कौन? इस घर में फिर कोई बचेगा ही नहीं।
जिसको हम "मैं" कह रहे हैं, बिल्कुल काम चलाऊ पहरेदार हे, वह हमारा अस्तित्व नहीं है। असल में चूंकि हमें अस्तित्व का पता नहीं है, आत्मा का पता नहीं है, इसलिए हमने एक सब्स्टीट्यूट आत्मा, एक कामचलाऊ आत्मा विकसित

कर ली है, जिसको हम "मैं" कहते हैं। तो यह मैं पूछता है कि अगर हम विदा हो जाएंगे तो फिर पीछे बचेगा कौन, जानेगा कौन? और स्थिति बिल्कुल उलटी है। जब तक यह "मैं" "है", तब तक ही जानने वाला खोजना मुश्किल है कि कहां है, कौन है, कैसा है। जिस दिन "मैं" विदा हो जाता है, उस दिन जो शेष रह जाता है, वह जानता है, वह देखता है, वह पहचानता है, वह साक्षी है। लेकिन, आप वह नहीं हैं। वह मैं नहीं हूं। फिर वह कौन है, जो देखता है, जानता है, पहचानता है? जहां "मैं" नहीं रह जाता है, फिर जो शेष रह जाता है, वही परमात्मा है। इसलिए कल मैंने कहा था कि परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हो सकता। परमात्मा तो वह है, जिसको सबका दर्शन हो रहा है। परमात्मा द्रष्टा है, दृश्य नहीं है। हम कभी उसे देख न पाएंगे जब हम न होंगे, तो जो देखता हुआ रह जाएगा, वही परमात्मा है। जब मैं नहीं रहूंगा, तब जो देखेगा, वही परमात्मा है।
एक फूल के पास मैं खड़ा हूं, या एक आदमी के पास, एक बच्चे के पास या एक स्त्री के पास मैं खड़ा हूं और उसकी आंखों में देख रहा हूं। जब तक मैं हूं, तब तक शरीर से ज्यादा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। "मैं" चला गया, अब वही रह गया, जो भीतर है, "मैं" के अतिरिक्त। वही देख रहा है। अब शरीर दिखाई नहीं पड़ेगा। अब दूसरी तरफ भी वही दिखाई पड़ने लगेगा--वही। और ऐसा नहीं दिखाई पड़ेगा कि दूसरी तरफ कोई और खड़ा है। ऐसा दिखाई पड़ेगा कि मैं ही वहां भी है-- वही जो यहां देख रहा है, वही वहां दिखाई भी पड़ रहा है।
अट्ठारह सौ सत्तावन के गदर में एक संन्यासी को अंग्रेजों ने मार डाला। वह विद्रोह के दिन थे। और अंग्रेजों की छावनी के पास से रात एक नंगा फकीर निकल रहा था। उसे पकड़ लिया, उसे समझा कि कोई जासूस है। और जासूस है, यह और पक्का हो गया, जब वे उससे पूछने लगे, तब कुछ न बोला, बस हंसने लगा। तो उन्होंने समझा कि धोखा देने की कोशिश कर रहा है। वह संन्यासी पंद्रह वर्ष से मौन था। इसलिए कुछ बोल नहीं सकता था। वे पूछते थे कि तुम कौन हो, तो वह हंसता था। फिर उन्होंने उसकी छाती में संगीन डाल दी। जब वह मर रहा था तो उसने सिर्फ एक शब्द कहा। उसने नियम बना लिया था कि अब, अब अंतिम तक नहीं बोलूंगा, आखिरी बार अगर कुछ ख्याल में आएगा तो एक बात बोल दूंगा और विदा हो जाऊंगा। आखिर बहुत बोलने का मतलब भी क्या है? तो उसने एक ही बात कही, जब उसकी छाती में संगीन भोंकी गई और उससे खून का फव्वारा फूट पड़ा तो उसने उपनिषदों का एक पुराना वचन कहा, उसने कहा, तत्वमसि श्वेतकेतु! श्वेतकेतु, तू भी वही है! उस मरते हुए संन्यासी को उन अंग्रेजों ने घेर लिया और पूछा कि क्या मतलब है? दैट, दाउ आर्ट, इसका मतलब क्या है? तुम वही हो, इसका मतलब क्या है? उस संन्यासी ने कहा, आज पंद्रह वर्ष का मौन पूर्ण हो गया। तुमने जब मुझे छुरा भोंका, मैं देख सका कि "मैं" ही मरने वाला हूं, "मैं" ही मारने वाला हूं। इस तरफ भी "मैं" उस तरफ भी "मैं"। वह जो छुरा मार रहा है, वह भी "मैं" हूं और जिसको छुरा मारा जा रहा है, वह भी "मैं" हूं। पंद्रह वर्ष का मेरा मौन सफल हो गया। आज मैं देख पाया कि दोनों तरफ "मैं" ही हूं।
लेकिन दोनों तरफ "मैं" ही हूं, यह तभी पता चलेगा, जिसको हम अभी मैं कहते हैं, वह चला जाए, नहीं तो पता नहीं चलेगा। क्योंकि जिसको हम "मैं" कहते हैं, वह सदा एक ही तरफ है, वह इस तरफ है। उस तरफ तू है, इस तरफ मैं हूं। एक ओर "मैं" है, जब यह मैं चला जाता है तो दोनों तरफ से वही होता है--इस तरफ से भी वही है, उस तरफ से भी वही है। वह जागता रहेगा, वह देखता रहेगा। जब मैं मिट जाता है, तब जो देखता है, वही परमात्मा है। तब जो दिखाई पड़ रहा है, वह भी परमात्मा है। जो देख रहा है, वह भी परमात्मा है। तब परमात्मा ही है, और कुछ भी नहीं है। लेकिन इस "मैं" को-इस "मैं" को विदा करने की बात है।
मैंने सुना है, एक समुद्र के किनारे एक मेला भरा हुआ था। बहुत लोग आए हुए थे और समुद्र के किनारे बड़ी भीड़-भाड़ थी और लोगों में बड़ा विवाद था। कहानी कहती हैः दो नमक के पुतले भी उस मेले में गए हुए थे, वे भी समुद्र के किनारे खड़े थे। और बड़ा विवाद चलने लगा, और लोग पूछने लगे कि समुद्र कितना गहरा है। तो नमक के एक पुतले ने कहा कि इतनी बातचीत से क्या पता चलेगा, जरा डुबकी लगा कर पता ही लगा आता हूं। वह नमक का पुतला कूदा, समुद्र में पता लगाने कि कितना गहरा है। लेकिन लौटा नहीं। भीड़ थोड़ी देर राह देखती रही। उन्होंने पूछा, क्या हुआ तेरे मित्र को, दूसरे पुतले से पूछा। उसने कहा कि

मैं उसका पता लगा आता हूं। वह भी कूद गया। वह भी नहीं लौटा। सैकड़ों वर्ष बीत गए हैं, अब भी उस दिन पर उस समुद्र के किनारे लोग इकट्ठे होते हैं कि शायद वे पुतले लौट आएं, वे नहीं लौटे। अब वे कभी नहीं लौटेंगे, क्योंकि नमक का पुतला सागर की गहराई कैसे पता लगा पाएगा? जब तक वह गहराई में पहुंचेगा, तब तक खुद न रह जाएगा और जब तक खुद रहेगा, तब तक गहराई में न पहुंच पाएगा। ठीक ऐसा ही कुछ है--जब तक हम हैं, "मैं" हूं, तब तक परमात्मा के सागर में गहरे उतरना मुश्किल है। जब हम खो जाते हैं, "मैं" मिट जाता है, तब उतर पाते हैं। लेकिन तब कौन उतर पाता है? उस नमक के पुतले को कैसा अनुभव हुआ होगा, थोड़ा सोचें उसकी जगह खड़े करके अपने को। गया था पता लगाने कि सागर की गहराई कितनी है। फिर बिखरने लगा होगा, पिघलने लगा होगा। सागर की गहराई तो पता लग गई होगी। और एक ही तरह से पता लग सकती थी, उसी तरह से पता लगी होगी। सागर की गहराई तो पता लगी होगी सागर होकर, और कोई रास्ता भी नहीं है सागर की गहराई पता लगाने का। लग गई होगी पता? जब पुतला बिखर कर सागर ही हो गया होगा, तो पता भी लग गया होगा गहराई का। लेकिन तब लौटकर कहने का उपाय नहीं रह गया। हम जैसे-जैसे गहरे जाएंगे, वैसे-वैसे "मैं" विदा हो जाएगा। गहराई का
तो पता लग जाएगा परमात्मा की, लेकिन हम खो जाएंगे। क्योंकि हमारा अस्तित्व सतह का अस्तित्व है, गहराई का अस्तित्व नहीं है। जिसको हम "मैं" कहते हैं, वह सतह का अस्तित्व है, वह गहरे में नहीं जी सकता, गहरे में विदा हो जाएगा, विलीन हो जाएगा। लेकिन, जरूर कुछ शेष रह जाएगा। और जो शेष रह जाता है, वही है। जो समाप्त हो जाता है, वह नहीं है। जो आज समाप्त होता है, कल समाप्त होता हैः जो समाप्त हो जाएगा, वह नहीं है। हम, "मैं" नहीं है। लेकिन हम "मैं" ही बने हुए हैं! वही हमारा कष्ट, वही हमारी पीड़ा है।
ध्यान "मैं" का विसर्जन है, ताकि हम उसे जान लें, जो है।

एक और मित्र ने पूछा हैः एकाग्रता, विचारणा और ध्यान, कनसनट्रेशन, कनटेंप्लेशन और मेडिटेशन क्या अलग-अलग हैं? ध्यान साकार पर करना है कि निराकार पर? निर्विकल्प समाधि क्या है? और निर्विकल्प समाधि कब पूरी होती है, यह कैसे पता चलेगा?

एकाग्रता, विचारणा और ध्यान बड़ी अलग-अलग बातें हैं। न केवल अलग-अलग, बल्कि बड़ी विरोधी।
एकाग्रता का मतलब हैः चित्त एक विचार पर ठहर जाए। लेकिन चित्त भी होगा, विचार भी होगा। चित्त एक विचार पर ठहर जाए, उसका नाम है कनसनट्रेशन, लेकिन चित्त भी होगा, विचार भी होगा, सिर्फ ठहरा हुआ होगा। जैसे कोई फिल्म को एक्सपोज करता है, कैमरा खुलता है, और फिल्म एक चीज पर ठहर जाती है। कैमरा बंद हो गया, फिर फिल्म एक चीज को पकड़ लेती है। फिल्म बड़ी कनसनट्रेशन, एकाग्रता कर पाती है।
दर्पण है, दर्पण एकाग्रता में नहीं है, चंचलता में है। कोई भी आए, आए। जाए, जाए। आता है तो दिखता है, जाता है तो चला जाता है। प्रतिपल दर्पण पर बदलता रहता है सब। चंचल चित्त में सब बदलता रहता है।
एकाग्र चित्त में एक चीज ही ठहर जाती है, फिक्स्ड हो जाती है। फिल्म
के कैमरे की तरह रुक जाती है, ठहर जाती है। एकाग्रता में विचार भी है, चित्त भी है।
कनटेंप्लेशन में विचारणा है, प्रवाह है1 एक विचार, दूसरा विचार, तीसरा विचार, चौथा विचार। लेकिन, एक ही चीज के संबंध में। जैसे, एक आदमी ईश्वर के संबंध में सोचे, तो यह कनटेंप्लेशन न हुआ, यह चंचल चित्त का प्रवाह हुआ, कुछ भी सोच रहा है। और एक आदमी एक ही धारा में सोचे, ईश्वर के संबंध में, तो ईश्वर के संबंध में ही सोचे तो यह कनटेंप्लेशन हुआ, विचारणा हुई संबद्ध। लेकिन, मेडिटेशन, ध्यान बड़ी अलग बात है। ध्यान में न तो विचार है, न विचार की धारा है, न एकाग्रता है, न चित्त है, जो एकाग्र हो जाए। न चित्त है, जो चंचल हो सके। ध्यान में चित्त ही नहीं है, ध्यान मनोनाश है, ध्यान में मन का ही खो जाना है। ध्यान ही कीमती चीज है। न तो एकाग्रता की कोई कीमत है और न विचारणा की कोई कीमत है। कीमत तो है ध्यान की जहां सब खो जाता है।

सिर्फ शून्य ही रह जाता है। और जहां शून्य है, वहीं सर्व है। शून्य पूर्ण का द्वार है। जब हम पूरे मिट जाते हैं तो हम पूरे हो जाते हैं। जब हममें मिटने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता, तब वही शेष रह जाता है, जो अमिट है और अमृत है।
इसलिए कनसनट्रेशन एक तरह का तनाव है, टेंशन है। जब आप एकाग्र करते हैं चित्त को तो चित्त में तनाव होगा, भार पड़ेगा। एकाग्रता पागल भी कर सकती है। जब आप कनटेंप्लेशन करते हैं, किसी चीज के संबंध में सोचते हैं, सोचते हैं, सोचते हैं, तब भी चित्त पर तनाव पड़ता है। लेकिन जब आप ध्यान करते हैं, तब आप कुछ करते ही नहीं हैं। तनाव का कोई सवाल नहीं है। आप सिर्फ अपने को लेट गो में, समर्पण में छोड़ देते हैं और खो जाते हैं। ध्यान बिल्कुल ही अलग चीज है।
और उन मित्रों ने पूछा है कि हम साकार पर ध्यान करें कि निराकार पर? तो
वह ध्यान को नहीं समझ पाए, जो मैं ध्यान कह रहा हूं। ध्यान का अर्थ है किसी पर नहीं। अगर किसी पर भी हुआ तो वह कनसनट्रेशन हो जाएगा1 वह साकार पर हो, चाहे निराकार पर हो। अगर कोई आब्जेक्ट हुआ तो कनसनट्रेशन हो जाएगा, एकाग्रता हो जाएगी।
ध्यान का मतलब है कोई आब्जेक्ट नहीं, कोई विषय नहीं, कोई विचार नहीं।
न कोई निराकार, न कोई साकार 1 कोई भी नहीं। अगर कोई भी वहां रहा हो यहां मैं भी रहूंगा और वहां कोई रहेगा और दोनों के बीच कोई संबंध रहेगा। ध्यान का मतलब है, दो ही न रहे। अब कोई संबंध न रहा। अब तो असंबंध हो गया। सब चीजें खो गईं। एक ही होना हो गया। तो ध्यान का मतलब किस पर ऐसा कभी न पूछें। ध्यान किस पर यह बात ही पूछना गलत है। एकाग्रता किस पर? यह वाक्य ठीक है, प्रश्न ठीक है। ध्यान किस पर नहीं1 ध्यान का मतलब है, किसी पर भी नहीं। जब आप नो-व्हेयर में होते हैं1 कहीं भी नहीं, किसी पर भी नहीं, तो आप ध्यान में होते हैं।
निराकार पर ध्यान हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिसका आकार नहीं, उस पर ध्यान कैसे करिएगा। हां, जब आप ध्यान में होते हैं, तब आप निराकार में हो जाते हैं। निराकार पर ध्यान नहीं कर सकते हैं आप, लेकिन जब आप ध्यान में होते हैं, तब निराकार ही शेष रह जाता है, सब आकार खो जाते हैं।
साकार है जगत, निराकार है प्रभु।
लेकिन हम जगत से इस भांति चिपटे हैं कि हम प्रभु को बिना आकार में ढाले नहीं पकड़ पाते हैं। तो हम शक्लें बनाते हैं आदमी की, मूर्तियां बनाते हैं, चित्र बनाते हैं, और उन शक्लों को हम समझते हैं कि भगवान है! हम संसार के ही रूप में भगवान को जब तक ढाल नहीं लेते, तब तक हमें तृप्ति नहीं मिलती! हमारे सारे मंदिर, हमारी सारी मूर्तियां भगवान को संसार की शक्ल में उतारने की चेष्टाएं हैं। परमात्मा है निराकार। निराकार का मतलब? निराकार का मतलबः जिससे सब आकार पैदा होते हैं और जिसमें सब आकार लीन
हो जाते हैं। निराकार का यह मतलब है कि आकार से उलटा। निराकार का यह मतलब नहीं है। निराकार का यह मतलब है कि जिससे आकार आते हैं और जिसमें चले जाते हैं। जो सब आकारों का जन्मदाता और सब आकारों का विलीन कर लेने वाला है। वह निराकार ही हो सकता है। जो सभी आकारों को पैदा करे, वह निराकार ही हो सकता है। अगर उसका अपना कोई आकार हो तो सब आकारों को वह पैदा न कर सकेगा। आदमी आदमी को पैदा कर सकता है, क्योंकि उसका एक आकार है। पक्षी पक्षी को पैदा करता है, क्योंकि उसका एक आकार है। पौधा पौधे को पैदा करता है, उसका एक आकार है।
आकार से आकार ही पैदा होता है। लेकिन जो सभी आकारों को पैदा कर सकता है, निश्चित ही उसका अपना कोई आकार नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह पैदा नहीं कर सकेगा। जिससे सब आकार पैदा होते हैं और वापस जिसमें फिर लीन हो जाते हैं, वह निराकार है। उस निराकार का आप ध्यान कैसे करेंगे? आप कैसे सोचेंगे, कैसे विचार करेंगे? उसका न विचार हो सकता है, न सोचना हो सकता है, क्योंकि सब सोचना, सब विचार आकार का होता है। फिर क्या करेंगे? हां, इतना ही हो सकता है कि आप भी निराकार हो जाएं तो आप निराकार से मिल जाएंगे।

निराकार तक जाना हो तो स्वयं को निराकार होने के अनुभव में उतारना पड़ेगा। इसलिए ध्यान निराकार का ध्यान नहीं है। ध्यान से निराकार का ध्यान आ जाता है। जब हम ध्यान में डूबते हैं तो निराकार का बोध होने लगता है कि निराकार है, अरूप है, सर्व है, उसकी हमें प्रतीति होने लगती है। लेकिन खुद को मिटाना होगा, तभी हम उसकी प्रतीति कर सकते हैं। एक बूंद अगर सागर का अनुभव करना चाहे तो सागर में उसे डूब जाना चाहिए तो फिर वह सागर का अनुभव कर लेगी लेकिन एक बूंद अगर बूंद ही रहना चाहे और कहे कि मुझे सागर का अनुभव करना है बूंद रहकर तो सागर के अनुभव का कोई उपाय नहीं है। और बूंद अगर बूंद रह कर सागर की कल्पना भी करे तो कितनी कल्पना करेगी, बेचारी बूंद सागर की कल्पना कितनी करेगी, कितना बड़ा सागर सोचेगी?
अपने से बड़ा हम कुछ भी नहीं सोच सकते। इसलिए हर आदमी अपने को सबसे बड़ा समझता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है, उसका कारण कुल इतना है कि अपने से बड़ा हम सोच ही नहीं सकते। हम ही सोचेंगे न! तो हमसे बड़ा हम कभी भी नहीं सोच सकते। इसलिए हर आदमी अपने को सबसे बड़ा समझे बैठा है! बड़ी दिक्कत में पड़ता है इस बात से, लेकिन समझे बैठा हुआ है। कहता हो, न कहता हो, लेकिन अपने को सबसे बड़ा हर आदमी समझे हुए है!
मैंने सुना है, अरबी में एक मजाक है, और मजाक बड़ा पुराना है। और कहना चाहिए सबसे पहला मजाक है, उसके बाद ही सब मजाक निकले होंगे। और वह मजाक है, परमात्मा ने आदमी के साथ जो किया, मजाक यह है किया कि जब परमात्मा आदमी को बना कर दुनिया में धक्का देने लगता है, तो उसके कान में कह देता है कि तुझसे बड़ा आदमी मैंने कभी नहीं बनाया। और सभी से कह देता है।
और हरेक आदमी यही ख्याल लेकर दुनिया में आता है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। फिर वह इसी को बेचारा सिद्ध करने में लगा रहता है जिंदगी भर, क्योंकि अगर बिना सिद्ध किए कहे कि मुझसे बड़ा कोई नहीं है, कि लोग पूछें कि मकान कहां है, कितना बड़ा मकान है, तो बड़ी मुश्किल हो जाए। धन कितना है पास में? तिजोड़ी कहां है? बैंक बैलेंस क्या है? तो बड़ी मुश्किल हो जाए। तो वह जिंदगी भर इस कोशिश में रहता है कि पहले इंतजाम कर दूं, फिर घोषणा कर दूंगा कि सबसे बड़ा हूं--देखोमकान, देखो धन, देखो पद। वह इस दौड़ में इसीलिए लगता है कि वह जो भीतर भाव बैठा है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं, इसको सिद्ध करने के लिए प्रमाण भी तो चाहिए। ऐसे ही कहिएगा तो कौन मानेगा? तो पहले दिल्ली के सिंहासन पर बैठ जाना जरूरी है, तभी कह सकते हैं कि हां, देखो मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। वह जो सिंहासन पर नहीं बैठा है, वह भी यही जानता है कि मुझसे बड़ा कोई नहीं है, लेकिन उसकी घोषणा नहीं कर सकता, क्योंकि घोषणा करेगा तो लोग कहेंगे, प्रमाण क्या है? जिंदगी भर हम यश, पद और धन की खोज से प्रमाण जुटाते हैं इस बात का कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है।
हम अपने से बड़ा सोच भी नहीं सकते। इसमें कोई कसूर भी नहीं है, यह स्वाभाविक नियम है। हम अपने से बड़ा कैसे सोच सकते हैं? बड़े से बड़ा जो हम सोच सकते हैं, वह हम ही होंगे। बूंद अगर सागर को सोचेगी भी तो कैसे सोचेगी? बस बूंद से बड़ा नहीं सोच सकती। कोई उपाय नहीं है सोचने का। बूंद के पास खोपड़ी भी तो बूंद की ही है। वह उतनी ही सोच पाएगी। वह कहेगी, अच्छा ठीक है। ठीक हमारे बराबर होगा, और क्या?
इसलिए जब हम भगवान को सोचते हैं3ो देखी है, जाकर मंदिर के भगवान की लंबाई-ऊंचाई? नापें तो आदमी की लंबाई-ऊंचाई, नाक-नक्शा सब आदमी का है। वह हमने अपने बराबर सोचा हुआ है। देखें जरा मंदिर में जाकर भगवान की लंबाई-चौड़ाई, वजन वगैरह निकालें, वह ठीक हमारे बराबर, हमारी साइज के हैं।
अगर घोड़े अपना भगवान बनाएं तो घोड़े के साइज का बनाएंगे, गधे बनाएं तो गधे की साइज का बनाएंगे। नीग्रो बनाता है तो चपटी नाक बनाता है, घुंघराले बाल बनाता है। चीनी बनाता है तो दोनों गाल की हड्डियां भगवान की निकली रहती हैं। क्योंकि चीनी करेगा क्या बेचारा। भगवान को बनाएगा तो चीनी शक्ल में ही बना सकता है न। इससे ज्यादा कैसे सोच सकता है? और ऐसा कैसे सोच सकता है कि भगवान किसी और भाषा में बोलता होगा? ब्राह्मण कैसे सोच सकता है कि संस्कृत के अलावा और कोई डिवाइन लैंग्वेज है। कोई ईश्वरीय भाषा हो सकती है? संस्कृत ईश्वरीय भाषा है। ब्राह्मण की खोपड़ी इससे आगे नहीं जा सकती।

वह संस्कृत बोलता है तो भगवान को भी संस्कृत बोलना चाहिए, और कोई उपाय नहीं है! और कोई उपाय नहीं है। हम अपने में ही सोच पा सकते हैं, उससे आगे हम नहीं जा सकते हैं। तो हम सोच तो नहीं सकते निराकार को। हम अपना ही आकार सोच सकते हैं।
फिर ध्यान का क्या मतलब है? ध्यान का मतलब है, अपने को मिटा देना, ताकि निराकार प्रकट हो जाए। निराकार का ध्यान नहीं करना है, ध्यान करने से निराकार प्रकट होता है। वह कांसिक्वेंस है परिणाम है, ध्यान का फल है।

और उन मित्र ने पूछा है कि हमें कैसे पता चलेगा कि हम समाधि को उपलब्ध
हो गए?

पता चल जाएगा, बस समाधि को उपलब्ध हो जाएं। आपको कैसे पता चलता है, जब पैर में कांटा गड़ता है कि पैर में कांटा गड़ गया? आपको कैसे पता चलता है, जब किसी से प्रेम हो जाता है कि प्रेम हो गया? किससे पूछने जाते हैं? किस डाक्टर से जाकर जांच करवाते हैं कि जरा मेरे हृदय की जांच करिए कि प्रेम हुआ कि नहीं हुआ? नहीं, बस आप जान लेते हैं कि प्रेम हो गया। जब कांटा गड़ जाता है तो सारी दुनिया कहे कि प्रमाण लाओ, आप कहते हैं कि प्रमाण की क्या जरूरत है, चुभ रहा है, मैं जानता हूं गड़ गया। जिस दिन समाधि का अनुभव आता है उस दिन किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता है, न कोई तराजू पर तौलना पड़ता है। बस आप जान लेते हैं कि हो गया।
अभी आप कैसे जानते हैं कि आप अशांत हैं? अभी आप कैसे जानते हैं कि आप चिंतित हैं। आप कैसे जानते हैं कि आप दुखी हैं? मुझसे पूछते हैं? बिना पूछे जानते हैं। चिंतित हैं? अभी जिस दिन चिंतित न रह जाएंगे, दुखी न रह जाएंगे, जिस दिन शांत हो जाएंगे, आनंदित हो जाएंगे, उस दिन जान ही लेंगे। इसलिए यह मत पूछें कि हम कैसे जानेंगे कि समाधि मिल गई। बस आप जान लेंगे। परमात्मा मिल जाएगा और आप जान न पाएंगे? किसी और से पूछना जाना पड़ेगा? नहीं, बिल्कुल जान लेंगे। उससे बड़ा कोई अनुभव नहीं है, जब वह आता है तो
सब बहा ले जाता है। जैसे नदी में पूर आ जाता है और किनारे पर सब कचड़ा बहकर चला जाता है। किनारा कैसे जानता होगा कि पूर आ गया? जिस दिन परमात्मा की प्रतीति होती है, सब बह जाता है। किनारा ही नहीं, किनारा भी। सब बह जाता है। सब ताजा और नया हो जाता है। सब आनंदपूर्ण हो जाता है। सारी जिंदगी और हो जाती है। सब अंधेरा खो जाता है। सब दुख, सब पीड़ा चली जाती है। इसको भी पूछना पड़ेगा कि कैसे जानेंगे? नहीं, जान ही लेंगे। कोई उपाय नहीं है कि आप न जान पाएं, जान ही लेंगे। इसलिए उसकी फिक्र न करें कि कैसे जानेंगे। जाएं, और जानें।
एक अंधे आदमी की आंख ठीक हो जाए तो वह अंधा आदमी पूछ सकता है कि जब मेरी आंख ठीक हो जाएगी तो मैं कैसे जानूंगा कि आंख ठीक हो गई? अब यह भी कोई जानना पड़ेगा उसे? आंख ठीक हुई तो जान ही लेगा। क्योंकि आंख ठीक होते ही वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा, जो कभी दिखाई नहीं पड़ा था। आंख ठीक होते ही प्रकाश और रंगों की दुनिया शुरू हो जाएगी, जो पहले कभी भी नहीं थी। आंख ठीक होते ही आकार दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे, जो कभी भी नहीं थे। इसमें कुछ पूछना पड़ेगा, मैं कैसे मानूं कि अंधा पूछेगा कि अब मुझे दिखाई पड़ने लगा है? जिस दिन परमात्मा की तरफ हमारी समाधि की आंख खुलती है, उस दिन हम उस नए को जानते हैं जिसे हमने कभी भी नहीं जाना है। उसे पहचान लेते हैं, जिसे कभी पहचाना नहीं है। वह मंजिल आ जाती है, जो कभी नहीं आई थी। वह उपलब्ध हो जाता है, जिसके आगे फिर कुछ भी उपलब्ध करने को शेष नहीं बचता है। वह हम जान लेंगे, पहचान लेंगे। उसके लिए कोई मापदंड, कोई तराजू, कोई वइटेरियन नहीं है न होने को कोई जरूरत है।

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान में कुछ क्षणों के लिए अदभुत आनंद का अनुभव होता है। ये क्षण लंबे कैसे हो जाएं, यह आनंद और लंबा और स्थायी कैसे हो जाए?

अगर ऐसी आकांक्षा की तो वह जो थोड़े से क्षण अभी होते हैं, वे भी बंद हो जाएंगे। अभी वह एकाध क्षण को जो आनंद मिलता है, अगर ऐसा चाहा कि यह स्थायी कैसे हो जाए, यह सदा कैसे रहने लगे, तो वह क्षण में भी जो आता है, वह भी खो जाएगा। क्योंकि इतने लोभ से भरे हुए चित्त में आनंद का उत्पन्न होना असंभव है। यह लोभ है। एक क्षण को आनंद उपलब्ध होता है, भगवान को धन्यवाद दें और चुप हो जाएं। उससे आगे आकांक्षा मत करना कि ये क्षण फिर आए कल। रोज आए, ठहर जाए, क्योंकि जब भी ऐसा हम कहेंगे कि कल भी आए, रोज आए, ठहर जाए, तो वह क्षण हमारे लाने से नहीं आया था, अनायास आया था। और जब हम इतने तेजी से कहेंगे कि रोज आए, ठहर जाए, लंबा हो जाए, तो सारा एफर्ट शुरू हो जाएगा, फिर वह नहीं आएगा। फिर वह कभी नहीं आएगा।
लेकिन हमने पूरी जिंदगी में ऐसा किया है। अगर आज आप मेरे पास आएं और मैं प्रेम से आपको हृदय से लगा लूं तो आप कहते हैं कि कल भी जब मैं आऊं, तब भी आप इतने ही प्रेम से, हृदय से लगा लें। कल का भी आज ही पक्का कर लेना चाहते हैं! कुछ पक्का नहीं है। आज का हमने कब पक्का किया? अनायास यह घटना घटी है, कल घट सकती है, लेकिन अनायास ही। लेकिन हम पक्का कर लेते हैं। तब प्रेम की घटना बंद हो जाती है। और प्रेम की जगह अभिनय की घटना शुरू हो जाती है। फिर हमें हाथ जोड़ कर नमस्कार करना पड़ता है, क्योंकि कल भी किया था, न करेंगे तो बड़ी मुसीबत होगी। कोई क्या कहेगा। फिर किसी को हृदय से लगाना पड़ता है, प्रेम की बातें करनी पड़ती हैं, क्योंकि कल की थीं, अगर अब न करेंगे तो कोई क्या सोचेगा। तब सब झूठ हो जाता है। झूठ होता चला जाता है। पुनरुक्ति की आकांक्षा ने हमारी सारी जिंदगी को खराब कर दिया है। पुनरुक्ति की आकांक्षा करना ही मत। क्षण आया है, धन्यवाद दे देना परमात्मा को और कभी मत कहना कि दुबारा आओ। आओ तो ठीक है, स्वागत है। न आओ तो स्वागत है। ऐसी चित्त की दशा में ही वह आएगा। ज्यादा आएगा। कभी ठहर भी जा सकता है। लेकिन अगर हमने आकांक्षा की है कि रोज आना चाहिए।
निरंतर मुझे ऐसा लगता है, न मालूम मित्र लिखते हैं कि कितने पहले जो अनुभव हुआ था, वह नहीं होता है। क्योंकि वह इतने जोर से उस अनुभव को लाना चाहते हैं, खींचना चाहते हैं कि उसे लाने की इच्छा तनाव बन जाती है, वे रिलैक्सड नहीं हो पाते हैं। अगर कल आप ध्यान में बैठे थे तो आपको कुछ पता न था कि आनंद आएगा कि न आएगा। आप रिलैक्सड बैठे थे, आ गया था। अब आज आप बैठे हैं और आप पक्का ख्याल रखे हैं कि अब आया, अब आया-अभी तक नहीं आया। तो आप रिलैक्सड नहीं हो पा रहे हैं। तनाव बना हुआ है, वह कैसे आएगा? वह कल आया इसीलिए था कि आप रिलैक्सड हुए थे। आज आप रिलैक्सड नहीं हो रहे हैं, शिथिल नहीं हो रहे हैं, तो कैसे आएगा?
और जिसके मन में आकांक्षा है कुछ आने की, वह कभी शिथिल नहीं हो सकता।
वह तना ही रहेगा तना ही रह जाएगा। इसलिए भूल कर भी ध्यान में आए क्षणों को दोहराने की आकांक्षा मत करना। वे आएंगे, अपने से आएंगे, आते रहेंगे। और न आएं, तो न आने के लिए भी राजी हो जाना। आएं तो भी स्वागत। जिस दिन आप उनके न आने का भी स्वागत कर सकें, उस दिन वे आपके घर आ ही जाएंगे। ठहर ही जाएंगे, फिर वे जाएंगे ही नहीं। न, आने का भी जिस दिन उतना ही स्वीकार हो जाएगा, जितना आने का है, उसी दिन वे ठहर जाएंगे, फिर वे जाएंगे ही नहीं। वे कभी जाते ही नहीं हैं।
आनंद वहीं ठहरता है, जहां आनंद की आकांक्षा भी विलीन हो जाती है। आनंद वहीं रुकता है, जहां आनंद को पाने का ख्याल भी चला जाता है। शांति वहीं आती है, जहां अशांति को भी स्वीकार करने की क्षमता है। यह उलटा दिखाई पड़ता है, लेकिन ऐसा ही है। मन तो यही करता है कि जो सुख मिला, वह बार-बार मिले और बार-बार मिलने की आकांक्षा से तो वह कभी भी नहीं मिलता है, वह मिल ही नहीं सकता है। जीवन में सब महत्वपूर्ण अनायास है। आता है, आता है, लाया नहीं जा सकता है। जिस दिन लाने लग जाएंगे, उसी दिन कठिनाई शुरू हो जाएगी।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या ध्यान ही काफी है? क्या कोई राम-नाम और प्रार्थना जोड़नी उचित नहीं है?

फिर भी नहीं समझ पाए ध्यान को। अभी वे कुछ जोड़ना चाहते हैं। वे समर्पण नहीं समझ पाए। समर्पण का मतलब है, अब और कुछ जोड़ने को नहीं है, कुछ करने को नहीं है। समर्पण का मतलब है, करने वाला ही हमने छोड़ दिया है-कौन राम नाम जपेगा और कौन माला फेरोगे और कौन हाथ जोड़कर प्रार्थना करेगा? समर्पण का मतलब है, समर्पण करने वाला ही नहीं है। हम कर्ता ही नहीं हैं, हमने छोड़ दिया। तो अब आप पूछते हैं, अब और क्या? जैसे कोई पूछे, क्या शून्य हो जाना काफी है? कुछ और करें?
शून्य हो जाने का मतलब है, जहां अब करने को कुछ भी शेष न रहा। समर्पण
का अर्थ है कि अब करने वाला ही मौजूद न रहा। हमने छोड़ दिया अपने को, अब जो होगा, होगा। जैसे मैंने कहा कि नदी में बहें। अब एक आदमी पूछे कि बहना ही काफी है, कि कुछ और करें? जो भी आप करेंगे, बहना रुक जाएगा। आपका सब करना बहने को रोक देगा। अब जैसे मैंने कहा कि चिता में जलें और समाप्त हो जाएं। आप कहें कि ठीक है, जल गए। और भी कुछ करें कि इतना काफी है? अब और करने को क्या बचा? करने का करने वाला कहां बचा? मैंने कहा, सब स्वीकार कर लें, तथाता, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी आप कहते हैं सब स्वीकार कर लिया, और भी कुछ स्वीकार करना है? सब स्वीकार का क्या मतलब हुआ, जब आप कहते हैं, और भी कुछ स्वीकार करना है?
ध्यान का अर्थ हैः समर्पण, और समर्पण कभी भी आधा नहीं होता। आप ऐसा नहीं कह सकते कि मैंने आधा समर्पण किया आधा नहीं। आधा समर्पण होता ही नहीं। जैसा आधा वृत्त नहीं होता, आधा सर्किल नहीं होता। सर्किल होता है तो पूरा होता है, नहीं तो नहीं होता। अगर कोई कहे कि हमने आधा सर्किल बनाया है तो हम उससे कहेंगे कि पागल हो। क्योंकि सर्किल का मतलब होता है कि पूरा गोल घेरा। आधा सर्किल होता ही नहीं। आधा समर्पण भी नहीं होता। आधा प्रेम भी नहीं होता। कोई आदमी कहे कि हम आधा प्रेम करते हैं आपको। तो हम कहेंगे, नहीं करते होंगे, यही कहना उचित है। आधा कहीं प्रेम हुआ है? प्रेम होता है तो पूरा, अन्यथा नहीं।
कभी किसी आदमी को आधा मरा हुआ देखा है? क्योंकि अगर वह आधा मरा हुआ है
तो जिंदा ही होगा किसी न किसी हालत में, जिंदा ही होगा। वह मरा हुआ हो ही नहीं सकता। मरता है तो कोई पूरा मरता है। अन्यथा नहीं मरता है। या तो जिंदा, या मरा, इन दोनों के बीच में और कोई जगह नहीं होती, जो वहां खड़ा हो जाए, कि कहे कि न हम मरे, न हम जिंदा। हम आधे जिंदा, हम आधे मरे, तो आदमी जिंदा ही है, वह जिंदा ही है, मरा नहीं है। समर्पण पूरा है। इसलिए यह मत पूछिए। उन्होंने पूछा है कि क्या ध्यान पर्याप्त है, इनफ है?
समर्पण सदा पर्याप्त है। उसके आगे कुछ भी करने को नहीं बच जाता है। असल में करना छोड़ने का नाम ही समर्पण है कि हमने करना ही छोड़ दिया। कौन अब राम नाम जपे। और किसलिए जपे। राम ने आपका क्या बिगाड़ा है? उनको क्यों परेशान करते हैं? उन्होंने तो कोई भी आपको तकलीफ नहीं दी है, आप उन्हें क्यों तकलीफ देते हैं? वे कभी आपके घर के सामने आकर आपका नाम नहीं चिल्लाते। आप क्यों उनको परेशान कर रहे हैं? राम नाम से क्या लेना-देना है?
नहीं, लेकिन हमें कुछ करने को चाहिए। असल में न करने में हम बड़े घबड़ाते हैं क्योंकि न करने में मिटने का डर है। इसलिए हम कहते हैं, कुछ करने को बता दें-माला फेरें, राम नाम जपें, कुछ करें? करने में हम शेष हो जाते हैं, हम फिर खड़े हो जाते हैं। कर्ता फिर मौजूद हो जाता है। मैं फिर मौजूद हो जाता हूं। फिर हम कह सकते हैं मैं रोज राम नाम कहता हूं, मैं रोज माला फेरता हूं, मैं रोज मंदिर जाता हूं। लेकिन ध्यान रहे, आप किसी से यह नहीं कह सकते कि मैं रोज ध्यान करता हूं। क्योंकि यह वाक्य ही गलत होगा। ध्यान का मतलब ही है कि रोज आप न करने में चले जाते हैं। यह आप दावा नहीं कर सकते कि मैं रोज ध्यान करता हूं, तो समझना कि वह ध्यान को समझा नहीं, क्योंकि ध्यान का मतलब था समर्पण। ध्यान का मतलब था, कर्ता होने का भाव छोड़ देना। वह डूअर, कि मैं कर्ता हूं, वह भाव छोड़ देना है। इसलिए ध्यान पर्याप्त है। उसमें कुछ जोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, सब स्वीकार कर लें, तो फिर क्रांति कैसे आएगी, बदलाहट कैसे आएगी?

निश्चित ही, सब स्वीकार करने से आप क्रांति कर न सकेंगे। बदलाहट कर न सकेंगे। लेकिन क्रांति आ सकती है, बदलाहट आ सकती है। सर्व-स्वीकार से कुछ आप निष्क्रिय नहीं हो जाने वाले हैं, बल्कि पूर्ण सक्रिय हो जाएंगे। जिस व्यक्ति ने सब स्वीकार कर लिया-इसका यह मतलब नहीं है कि अब वह कुछ भी न करेगा। अब इसका मतलब केवल इतना है कि वह जो भी करेगा, वह जानेगा कि परमात्मा ही उससे करवा रहा है, मैं नहीं कर रहा हूं। सर्व-स्वीकार का यह मतलब नहीं है कि अब आप श्वास न लेंगे। परमात्मा ही श्वास लेगा। सर्व-स्वीकार का यह मतलब नहीं है कि क्रांति असंभव हो जाएगी, सर्व स्वीकार का मतलब है कि अब परमात्मा ही क्रांति करेगा, अब आप क्रांति नहीं करेंगे। और जिस दिन परमात्मा क्रांति करेगा, उसी दिन क्रांति हो सकती है। आदमी की की गई क्रांति, क्रांति नहीं होती। रुग्ण, बीमार, परेशान, चिंतित, दुखी आदमी क्या क्रांति करेगा? क्रांति के नाम पर शायद तोड़-फोड़ ही कर देगा और कुछ भी नहीं करेगा। वेध जाहिर कर देगा, और कुछ भी नहीं करेगा।
सर्व-स्वीकार से आती है करुणा। लानी नहीं पड़ती। मैं आपसे नहीं कह रहा
कि करुणा करें। आप क्या करुणा करेंगे? आप कैसे करुणा कर सकते हैं? सर्व-स्वीकार से आती है करुणा, कंपेशन पैदा होता है।
बुद्ध से किसी ने पूछा कि क्या आप बड़े करुणावान हैं? बुद्ध ने कहाः किसी ने तुम्हें गलत खबर दे दी होगी। मैंने तो कभी करुणा नहीं की। उस आदमी ने कहा, आप क्या कहते हैं! हमने तो यही सुना है कि आप महा कारुणिक हैं। आपसे ज्यादा करुणा किसी में भी नहीं है। बुद्ध ने कहा, यह हो सकता है कि मुझमें करुणा हो, लेकिन मैंने करुणा कभी की नहीं। मैं कभी करुणा करने गया ही नहीं। मैं इस झंझट में ही नहीं पड़ा। यह हो सकता है कि करुणा मुझसे निकली हो, लेकिन मैंने कभी नहीं निकाली।
किस पौधे से फूल निकाला गया है? फूल निकलते हैं। और अगर आप पौधे से पूछने जाएंगे कि तुमने बड़ा अच्छा गुलाब का फूल निकाला है! और अगर पौधा कह सके तो वह कहे, आप भी कैसी बात करते हैं, मैंने कभी नहीं निकाला, निकला है। अपने आप निकला है।
जिस दिन कोई सर्व-स्वीकार में समर्पित हो जाता है, करुणा निकलती है, क्रांति निकलती है! क्रांति करनी नहीं, क्रांति को आने देना है। अगर ठीक से कहें तो यह कह सकते हैं कि क्रांति को रोकना नहीं है, क्रांति को आने देना है। सर्व-स्वीकार की अपनी क्रांति है। उस क्रांति का अर्थ वह नहीं है, जो अब तक क्रांतिकारी समझता रहा है। क्रांतिकारी समझता है, हम क्रांति कर रहे हैं। हम बदलाहट ला रहे हैं। और इस हम की वजह से कोई बदलाहट नहीं आ पाती, क्योंकि "हम" ही पुराना रोग था, वह फिर नई शक्ल में खड़ा हो जाता है। क्रांति तो हो जाती है, लेकिन वह "हम" फिर खड़ा हो जाता है। वह वहीं के वहीं खड़ा रहता है, उससे कोई फर्क नहीं हो पाता।
इसलिए मैं जिस क्रांति की बात कर रहा हूं, वह क्रांति नहीं है, जो आप लाएंगे। वह क्रांति है, जो आप अगर समर्पित हो जाएं तो आ सकती है। इन दोनों बातों के भेद को ठीक से समझ लेना।
मेरे एक मित्र हैं, उनको नींद नहीं आती है। उनसे मैंने कहाः आपको नींद
आ सकती है, लेकिन कृपा करके आप लाने की कोशिश मत करें। उन्होंने कहाः अगर मैं न लाऊंगा तो नींद आएगी कैसे? मैंने कहा, आप पूरी ही कोशिश कर लें। आपसे जितना बन सके, उतनी कोशिश कर लें। अच्छा हो, आप मेरे पास ही रुक जाएं। वह आ गए और मेरे पास रुक गए। और तीन दिन रोज सुबह मैं उनसे जाकर पूछता कि ला पाए नींद? वह कहते कि बड़ी मुश्किल हो गई, पहले थोड़ी बहुत आती थी, वह भी मुश्किल हो गई। लाने की कोशिश कर रहा हूं और वह खोती चली जा रही है। मैंने कहा, पूरी ताकत लगा दें, ताकि ठीक से असफलता का पता चल जाए। पूरी ताकत लगा दें, आप जो- जो कर सकते हैं। क्या-क्या करते हैं? उन्होंने कहा, राम-राम भी जपता हूं। हाथ-पैर भी धोता हूं, खड़ा भी होता हूं, करवट भी बदलता हूं, आंखें भी बंद करता हूं, सब कोशिश करता हूं, लेकिन दो रात हो गई, नींद पलक भर को भी नहीं

है। मैंने कहा, और कोशिश कर लें। मैंने कहा, ऐसा न रह जाए मन में कि कुछ कोशिश कम थी, इसलिए नींद नहीं आ पाई। तीन दिन में तो वे बिल्कुल पगला गए। उन्होंने कहा कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला हो गया है। तो मैंने कहा, आज रात कोशिश न करें। अब आज रात कोशिश करें ही मत। अब आज रात आप कृपा करके कुछ भी न करें, पड़े रहें, जो होना होगा हो जाएगा। सुबह मैं गया तो वह काफी खर्राटे ले रहे थे। मैंने उन्हें हिलाया और मैंने कहा, क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि नींद आ गई है।
नींद आती है, लाई नहीं जा सकती। और अगर आपको ख्याल आ गया है कि लाना है
तो आप इनसोमेनिया के मरीज हो ही जाने वाले हैं, अनिद्रा आपको पकड़ ही लेगी। इस समय पृथ्वी पर अनिद्रा से पीड़ित बहुत लोग हैं। उसका सबसे बुनियादी कारण यह है कि वह यह सोचते हैं कि नींद को भी लाना पड़ेगा। बस, फिर नींद खो जाएगी।
क्रांति आएगी, लानी नहीं है। लाई गई क्रांति दो कौड़ी की है। और लाई गई क्रांति हमीं तो लाएंगे न। कन्फ्यूज्ड, भ्रमित, परेशान लोग, हमीं क्रांति लाएंगे। तो हमसे बड़ी क्रांति नहीं होने वाली है। हम सब और गड़बड़ कर देंगे, और सब उपद्रव कर देंगे। नहीं, हम बदल जाएं, फिर उस बदलाहट से क्रांति आती हो, आए। इसलिए ऐसा मत सोचना कि जब मैं कहता हूं, सर्व-स्वीकार, तो मैं यह कह रहा हूं कि जो है, वह वैसा ही रहा आएगा। नहीं, अगर हमने सर्व-स्वीकार किया तो हमारे भीतर परमात्मा सक्रिय हो जाएगा। वह इस सारी पृथ्वी को बदल डालेगा। यह सारी पृथ्वी बदल जाने के लिए तैयार खड़ी है, लेकिन हमारे भीतर से हम परमात्मा को सक्रिय नहीं होने देते हैं।
गरीबी नहीं बचेगी जमीन पर। कहते हैं गरीबी है तो भगवान कैसे है? और मैं कहता हूं कि गरीबी है तो सिर्फ इसलिए कि तुमने भगवान को सक्रिय नहीं होने दिया है। तुम रोके हुए हो, तुम अकड़े हुए हो, तुम कहते हो हम मिटाएंगे गरीबी, हम बनाएंगे, हम यह करेंगे। उससे सब रुका जा रहा है। तुम एक बार सब छोड़ दो और देखो, गरीबी मिट जाएगी, लेकिन भगवान को सक्रिय होने दो। भगवान पर कृपा करो और भगवान को सक्रिय होने दो। हम सब उसके हाथ पकड़ कर उसे रोके हुए हैं, उसे नहीं होने देते हैं कुछ भी, क्योंकि हमको लग रहा है कि हमें करना है।
वह तो अच्छा है कि माताओं को ख्याल नहीं आता कि बच्चों को उन्हें बड़ा करना है। अगर ख्याल आ जाए तो बच्चों की जान निकल जाए। और जिस-जिस मात्रा में उनको ख्याल है कि हमको करना है, उस मात्रा। में बच्चों की जान वे ले लेंगी।
वह तो बड़ी कृपा है कि मालियों को ख्याल नहीं आता कि फूल हमें निकालने हैं। अगर ख्याल आ जाए तो सब फूल खत्म हो जाएं। माली चुपचाप देखते रहते हैं। खाद देते हैं, पानी देते हैं, अवसर बना देते हैं, लेकिन फूलों को निकालते नहीं, फूलों को निकलने देते हैं, वे निकल आते हैं, वे निकल आते हैं अपने आप।
जिंदगी में फूल खिल सकते हैं करुणा के, लेकिन आप नहीं, मैं नहीं, हम हट जाएं, परमात्मा को सक्रिय होने दें।
धार्मिक समाज का अर्थ है वह समाज जिसने परमात्मा को सक्रिय हो जाने दिया है। जिसने अपने को हटा लिया है और परमात्मा को सक्रिय हो जाने दिया है।

एक अंतिम प्रश्न और।
एक मित्र ने पूछा हैः स्थितप्रज्ञ, उपेक्षा और तथाता क्या ये तीनों
एक ही बातें हैं, या अलग-अलग हैं?

उपेक्षा का अर्थ हैः जो है उसमें हमें कोई रस नहीं है, बल्कि जो है उसमें हमें विरस है, वैराग्य है। इसलिए उपेक्षा ठीक-ठीक अर्थों में तथाता नहीं है। तथाता में उपेक्षा भी नहीं है। तथाता का मतलब हैः जो वह है है; न हमें रस है, न हमें विरस है। न हमें राग है, न हमें विराग है। जो है, वह है।

एक आदमी के भीतर कामवासना है, वेध है, घृणा है। एक आदमी को बड़ा रस है अपनी कामवासना में। वह उपेक्षा नहीं कर पता अपनी वासना की। वह बड़ा रसलीन है। वह रागी है। एक आदमी राग के दुख से पीड़ित, परेशान हो गया है। वह कहता है हम बड़ी उपेक्षा में हैं, हम छोड़ना चाहते हैं, हमें विराग हो गया है, हम यह कामवासना से भागना चाहते हैं। वह विरागी है। विरागी का मतलब, उलटा हो गया रागी। जिसने पीठ फेर ली उस तरफ, जहां पहले मुंह था। जहां पहले मुंह करने में मजा आता था, अब उसे वहां पीठ करने में मजा आता है। लेकिन मजा अब भी उसे वही आता है। उसमें फर्क नहीं पड़ा है। मजा उसे अब भी वही आता है।
एक आदमी स्त्री की तरफ भागा जा रहा है, वह रागी है। और एक आदमी स्त्री
से भागा जा रहा है, वह विरागी है। लेकिन दोनों के सेंटर में स्त्री है। एक स्त्री की तरफ, एक स्त्री से, लेकिन दोनों का सेंटर स्त्री है। इसमें कोई फर्क नहीं है।
एक स्त्री पुरुष के पीछे पागल है और अब पुरुषों से ऊब गई है, उपेक्षा
से भर गई है और भागी जा रही है, और कह रही है, सत्संग करेंगे, सत्संग करेंगे। स्त्रियां सत्संग में जाती तब हैं, जब वे पुरुष से ऊब जाएं नहीं तो वे सत्संग में जाती नहीं हैं। जहां वे परेशान हुईं, जिंदगी में ऊबीं कि वे सत्संग में गईं। सत्संगों में सिवाय लस्ट्रेटेड, सब तरफ से ऊब गए, परेशान लोगों के और कोई जाता नहीं। वह वहां इकट्ठे हुए सत्संग में, लेकिन उन दोनों का सेंटर एक है।
उपेक्षा राग के विपरीत है, लेकिन तथाता बहुत और बात है। तथाता का मतलब है, न हमें राग रहा, न हमें विराग रहा। तथाता का मतलब है, हमने वह सेंटर ही बदल दिया। तथाता का मतलब है कि अब हम इसकी बात ही नहीं करते, कि सेक्स के पक्ष में कि विपक्ष में, स्त्री की तरफ, कि स्त्री से भागते हुए, कि गृहस्थ कि संन्यासी, अब हम इसकी बात ही नहीं करते। तथाता का मतलब है कि जो है, वह हमें स्वीकार है। वह स्वीकृति हमारी पूरी है। न हम उसकी तरफ भागते हैं, न हम उसे छोड़ कर भागते हैं। जो हो रहा है, हो रहा है, हम उसके लिए राजी हैं। तथाता बहुत गहरी बात है, उपेक्षा से बहुत गहरी बात है।
और स्थितप्रज्ञ का मतलब है, जो तथाता को उपलब्ध हो गया। तथाता प्रक्रिया है, मार्ग है, साधन है। स्थितप्रज्ञ उपलब्धि है।
स्थितप्रज्ञ का मतलब होता है, जिसकी प्रज्ञा ठहर गई। जैसे कोई दिया जलाएं हम तो उसकी लौ कांपती रहती है। हम एक ऐसे कमरे में दिया जलाएं, जहां सब तरफ के द्वार दरवाजे बंद हों और दिए की लौ कांपती न हो, स्थिर हो गई हो। ऐसी ही जब मनुष्य की प्रज्ञा स्थिर हो जाती है तो कांपती नहीं।
यह दो तरह से स्थिर हो सकती है। एक तो इस तरह से स्थिर हो सकती है कि द्वार दरवाजे हम बंद कर दें, हवा के झोंके न आएं तो लौ ठहर जाए। जो लोग इस तरह से ठहराना चाहते हैं उनके लिए रास्ता है1 वैराग्य, उपेक्षा। लेकिन उनका ठहरा होना बड़ा धोखा है। हवा के न आने से लहर न कांपती हो तो लहर का कोई गुण न हुआ यह। यह फिर हवा की गैर-मौजूदगी हुई। इसलिए जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह भी अपने को ठहरा लेता है, लेकिन उसके ठहराने में बड़ा श्रम है। द्वार-दरवाजे बंद करके ठहरा पाता है, और इसलिए हमेशा डरा भी रहता है कि कोई खिड़की न खुली छूट गई हो। कोई दरवाजा खुला न रह जाए। कहीं हवा का झोंका जोर से न आ जाए। मकान ऐसी जगह बनाता है, जहां हवा न चलती हो। पहाड़ की आड़ों में, गुफाओं में छिप जाता है, जहां कि हवा आती ही न हो। लेकिन हवा से बच कर जो ठहर गया है वह ठहर नहीं गया है, वह सिर्फ हवा के अभाव में जी रहा है--अभाव। वैराग्य से भी कोई स्थितप्रज्ञ की तरफ जा सकता है। तब वह झूठा स्थितप्रज्ञ होगा। झूठा स्थितप्रज्ञ होगा।
और तथाता से भी कोई स्थितप्रज्ञ की तरफ जा सकता है। इसका यह मतलब नहीं
है कि हवाएं अब नहीं आतीं। हवाएं आती हैं, लहर हिलती है और फिर लहर भीतर से जानती है कि हिलना नहीं हुआ। हवाएं आती हैं, ज्योति हिलती है, लेकिन फिर भी ज्योति भीतर से जानती है कि क्या हिला-कुछ भी नहीं हिला। आओ और हिलाओ। क्योंकि जो हिल रहा है, वह रूप है और जो नहीं हिल रहा है, वह भीतर है। बुद्ध एक दिन सुबह आए थे, उनकी इस बात से मैं पूरी करूं यह चर्चा। वे अपने भिक्षुओं के बीच गए एक रूमाल को लेकर। कभी वे किसी चीज को हाथ में

लेकर आते देखे न गए, एक रेशमी रूमाल को लेकर वह उस दिन आए थे। बैठ गए हैं उस मंच पर। उन्होंने उस रूमाल पर पांच गठानें लगा ली। भिक्षु बड़े हैरान हैं कि वे क्या कर रहे हैं! फिर उन्होंने उन भिक्षुओं से पूछा कि भिक्षुओ, यह रूमाल तुमने देखा था अभी थोड़ी देर पहले जब इसमें गांठें न थीं, अब इसमें गांठें हैं। मैं तुमसे पूछता हूं, कुछ फर्क पड़ा या नहीं? रूमाल वही है या दूसरा हो गया है?
एक भिक्षु ने कहाः दूसरा हो गया, क्योंकि उस रूमाल में गांठें न थीं,
इस रूमाल में गांठें हैं। बुद्ध ने पूछा, भिक्षुओ, इनसे राजी हो? अधिकतर भिक्षु राजी हो गए कि यह बात ठीक है कि यह रूमाल वह न रहा, क्योंकि उस रूमाल में गांठें न थीं, इस रूमाल में गांठें हैं। सिर्फ एक भिक्षु हंसता रहा। बुद्ध ने कहाः तुम राजी नहीं हो? उसने कहाः नहीं, मैं राजी नहीं हूं। क्योंकि अगर हम रूमाल के भीतर प्रवेश करके देख सकें तो रूमाल वही का वही है, गांठों से क्या फर्क पड़ता है। कहीं-कहीं घूम गया है, मुड़ गया है, जहां मुड़ा हुआ नहीं था। रूमाल वही का वही है, कोई भी फर्क नहीं पड़ा है। और चाहें तो गांठें खोल लें और रूमाल वही का वही हो जाएगा। रूमाल की आत्मा में कोई भी फर्क नहीं पड़ता है, रूमाल अब भी वही है। गांठें सिर्फ उसके रूप पर बंध गई हैं।
बुद्ध ने कहाः मैं इसे खोलना चाहता हूं। और उन्होंने रूमाल को जोर से खींचा। अनेक लोग खोलने के लिए खींचने लगते हैं। वे गांठें और बंध गईं। क्योंकि खींचने से कभी कोई गांठ खुली है? प्रयत्न से कभी गांठ नहीं खुलती। प्रयत्न खींचना है। बुद्ध ने जोर से खींचा, गांठें और बारीक और पतली हो गईं। बुद्ध ने कहाः भिक्षुओ क्या मेरे और खींचने से गांठें खुल जाएंगी? एक भिक्षु ने कहाः आप बड़ा उलटा कर रहे हैं, खींचने से और बंध जाएंगी। तो बुद्ध ने कहाः फिर मैं क्या करूं, मुझे ये गांठें खेलनी हैं? तो एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि कृपा करके पहले यह देखने की कोशिश करें कि गांठें कैसे बांधी गई हैं। और जिस तरह बांधी गई हों, उसके उलटे लौट जाएं तो गांठें खुल जाएंगी। और आप तो बांधने की दिशा में ही खींचते चले जा रहे हैं! तो गांठें और बांध जाएंगी। बुद्ध ने गांठें खोलीं और पूछा कि भिक्षुओ, यहां रूमाल अब वही है? तो जिन्होंने कहा कि हां गांठ लगने से बदल गया, उन्होंने कहा, हां। रूमाल बीच में बदल गया था, अब वही है। लेकिन वह एक भिक्षु हंसता रहा। और उसने कहा, रूमाल तब भी वही थाः गांठ लगीं, तब भी वही था, और अब भी वही है। और रूमाल राख हो जाए तो भी वही रहेगा, धूल हो जाए तो भी वही रहेगा। रहे तो भी वही रहेगा, न रहे तो भी वही रहेगा। जो भीतर है शाश्वत, वह सदा वही है। तथाता से जो स्थितप्रज्ञ की तरफ जाता है, उसका मतलब यह नहीं है कि उसमें लहरें नहीं आतीं, उसका यह मतलब नहीं है कि वह युद्ध में लड़ने नहीं जाता। उसका यह मतलब नहीं है वह वेध नहीं करता, उसका यह मतलब नहीं है कि वह प्रेम नहीं करता, सब होता है लहर की तरह। लेकिन, भीतर वह अनबंधा गांठ के बाहर ही रह जाता है।
कृष्ण ठीक-ठीक प्रतीक हैं स्थितप्रज्ञ के। इसलिए युद्ध में लड़ भी पाते हैं। प्रेम भी कर पाते हैं, झगड़ा भी कर पाते हैं और फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता। और इसलिए वह अर्जुन को कह सके। अर्जुन घबड़ा गया और पूछने लगा कि अब तो यह मेरा मन घबड़ाता है। ये सब प्रियजन, मित्र हैं, इनको मारूं? तो कृष्ण ने बड़ी हिम्मत की बात कही, जो इस पृथ्वी पर किसी और आदमी ने कभी भी नहीं कही। उन्होंने कहा, तू पागल है अगर तू सोचता है कि तू इन्हें मार सकता है। जो सोचते हैं कि इन्हें हम बचा सकते हैं, वे भी पागल हैं, जो सोचते हैं कि इन्हें हम मार सकते हैं, वे भी पागल हैं। क्योंकि जो मरने वाला है, वह मरेगा हीः जो नहीं मरने वाला है, उसे मारने का कोई उपाय नहीं है। तू मजे से लड़ क्योंकि जो नहीं मरने वाला वह नहीं मरेगा। जो मरने वाला है, वह तेरे बचाने से नहीं बचेगा। जो मरने वाला है, वह मरा ही हुआ है। जो नहीं मरने वाला है, वह नहीं ही मरा हुआ है। तू मजे से लड़।
स्थितप्रज्ञ अगर तथाता से कोई पहुंचेगा तो उसका यह अर्थ है कि जीवन जैसा बाहर है, वह स्वीकार है। लेकिन इन सारी लहरों के बीच में भी भीतर कुछ है, जो लहरों को छूता भी नहीं, स्पर्श भी नहीं करता, अछूता रह जाता है।

एक फकीर से किसी ने पूछा था कि तुमने जीवन किस भांति गुजारा, क्योंकि तुम्हारी आंखों में बड़ी चमक है, तुम्हारे चेहरे पर बड़ी शांति है और तुम्हारे हृदय में बड़ा संगीत है? तुमने जीवन कैसे गुजारा? मरते-मरते उस फकीर ने आखिरी बात कही। उसने कहा, मैं जिंदगी से ऐसे गुजरा जैसे कोई आदमी नदी से गुजरे, पानी उसे छुए, लेकिन फिर भी वह आदमी अनछुआ रह जाए, अनटच्ड रह जाए। जैसे किसी आदमी पर हम जंजीरें बांध दें, हथकड़ियां कस दें, रस्सियां बांध दें, वह आदमी बंध भी हो जाए बाहर से और भीतर से अनबंधा भी रह जाए। उसने कहा बाहर से मैं बंधा भी था और भीतर से अनबंधा था। बाहर से मैं रूप था, भीतर से अरूप था। बाहर से आकार था, भीतर से निराकार था। बाहर से संसार था, भीतर से परमात्मा था।
स्थितप्रज्ञ का अर्थ है भीतर इतनी शांति कि बाहर की कोई अशांति उसे मिटा न पाती हो। वह अछूती रह जाती हो, अस्पर्शित रह जाती हो।
लेकिन अगर कोई उपेक्षा से या वैराग्य से जाएगा तो ऐसी शांति पर नहीं पहुंचेगा। वह ऐसी शांति पर पहुंचेगा, जहां लहर रोक दी गई हवा को रोक कर।
जहां कंपन रोक दिया गया ज्योति का हवा को रोक कर।
लेकिन अगर कोई तथाता से, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी से, जिसको मैंने ध्यान कहा, उससे पहुंचेगा स्थितप्रज्ञ तक, तो जीएगा और जीवन के बाहर रह जाएगा। एक ही साथ संसार में होगा और संसार उसके भीतर नहीं होगा। वह सबके बीच में होगा और सबके बाहर होगा। ऐसा अर्थ है स्थितप्रज्ञ का। ध्यान की यह अंतिम पूर्णाहुति है, ध्यान का यह अंतिम फल है।
ये थोड़े से प्रश्न की मैंने बात की, जो आपकी साधना में सहयोगी हो सके
उस दृष्टि से।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और आशा करता हूं कि ध्यान की प्रक्रिया को जारी रखेंगे, ताकि किसी दिन वह क्षण आ जाए कि संसार में हों और संसार आपके भीतर न रहे। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।